TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180633
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H83 956S Vol II Accession No. H 1735
Author
Title
This book should be returned on or before the date last marked below.

सुलभ साहित्य-माला ★ ★ छठा पुष्प

शरत्-साहित्य

श्रीकान्त

(द्वितीय पर्व)

६

अनुवादकर्त्ता

स्वर्गीय हेमचन्द्र मोदी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक--
नाथूराम प्रेमी.
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

चौथी आवृत्ति

१९४६

मूल्य डेढ़ रुपया।

मुद्रक—
दि ओरियन्ट प्रींटिंग हाउस
नवीवाड़ी, बम्बई २.

निवेदन

(प्रथमावृत्तिसे)

श्रीकान्तका यह द्वितीय पर्व भी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

अबसे कोई २० वर्ष पहले बंगलाके सुप्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारतवर्ष' में यह 'श्रीकान्तेर भ्रमण-काहिनी' के नामसे धारावाहिक रूपमें प्रकाशित हुआ था और उसी समय मैंने इसे पढ़ा था। बिल्कुल अपूर्व चीज थी, पढ़कर मुग्ध हो गया और विचार किया कि हिन्दी-पाठकोंको भी इसका रसास्वादन कराना चाहिए; परन्तु, उस समय वह विचार, इच्छा रहते हुए भी, अनेक कारणोंसे कार्यमें परिणत न हो सका। आज मुझे बड़ा संतोष हो रहा है कि इतने लम्बे समयके बाद भी मेरी उस इच्छाकी पूर्ति हो रही है।

शरद् बाबूकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंमें इसकी गणना है और उपन्यास-साहित्यमें तो यह अपने ढंगका अकेला ही है। विदेशों तक इसकी ख्याति पहुँच गई है और यूरोपकी दो प्रधान भाषाओंमें,— अँग्रेजी और फ्रेंचमें इसके अनुवाद हो चुके हैं जिनका खूब सम्मान हुआ है और शरद्बाबूकी गणना संसारके श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकोंमें की जाने लगी है।

यह अनुवाद मेरे पुत्र आयुष्मान् हेमचन्द्रने किया है। यह कैसा हुआ है, इसका निर्णय तो सहृदय पाठक ही करेंगे; मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि इसके लिए काफी परिश्रम किया गया है और मूलके भावोंकी रक्षामें पूरी सावधानी रक्खी गई है। फिर भी, यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो उसका यह पहला प्रयत्न समझकर पाठक दर-गुजर करेंगे।

५-४-३६ } **नाथूराम प्रेमी**

जाते हुए, कहीं कुछ करते हुए, दुविधा या बाधाका ज़रा भी सम्पर्क नहीं रह गया था।

यह सब बहुत दिनोंकी बातें हैं। वह आनन्द अब नहीं है; परन्तु उस दिन जीवनमें इस एकान्त विश्वासकी निश्चित निर्भरताका स्वाद एक दिनके लिए भी मैं उपभोग कर सका, यही मेरे लिए परम लाभ है। परन्तु, साथ ही, मैंने उसे खो दिया, इसका भी मुझे किसी दिन क्षोभ नहीं हुआ। केवल इस बातका ही बीच-बीचमें खयाल आ जाता है कि जिस शक्तिने उस दिन हृदयके भीतर जाग्रत होकर इतनी जल्दी संसारका समस्त निरानन्द हरण कर लिया था, वह कितनी विराट् शक्ति है! और सोचता हूँ कि उस दिन अपने ही समान अन्य दो अक्षम दुर्बल हाथोंके ऊपर इतना बड़ा गुरु-भार न डालकर यदि मैं समस्त जगद्-ब्रह्माण्डके भारवाही उन हाथोंपर ही अपनी उस दिनकी उस अखण्ड विश्वासकी समस्त निर्भरताको सौंप देना सीखता, तो फिर, आज मुझे चिन्ता ही क्या थी?—किन्तु, अब जाने दो उस बातको।

राजलक्ष्मीको मैंने पहुँचका पत्र लिखा था। उसें पत्रका जवाब बहुत दिनों बाद आया। मेरे अस्वस्थ शरीरके लिए दुःख प्रकाशित करके गृहस्थ बननेके लिए उसने मुझे कई तरहके बड़े-बड़े उपदेश दिये थे और अपने संक्षिप्त पत्रको यह लिखकर खत्म किया था कि यदि वह कामोंके झंझटोंके मारे पत्रादि लिखनेका समय न पा सके, तो भी, मैं बीच-बीचमें अपनी खबर उसे देता रहूँ और उसे अपना ही समझूँ।

तथास्तु। इतने दिनों बाद उसी राजलक्ष्मीकी यह चिट्ठी!

आकाश-कुसुम आकाशमें ही सूख गये और जो दो-एक सूखी पँखुड़ियाँ हवासे झड़ पड़ीं उन्हें बीन करके घर ले जानेके लिए भी मैं जमीन टटोलता नहीं फिरा। आँखोंमेंसे दो-एक बूँद पानी शायद पड़ा भी हो, किन्तु, वह मुझे याद नहीं। फिर भी, यह याद है कि और अधिक दिन मैंने स्वप्न देखते हुए नहीं काटे। तब भी इस तरह और-भी पाँच-छह महीने कट गये।

एक दिन सुबह बाहर जानेकी तैयारी कर रहा था। एकाएक एक अद्भुत पत्र आ पहुँचा। ऊपर औरतोंके-से कच्चे अक्षरोंमें नाम और ठिकाना लिखा था। खोलते ही पत्रके भीतरसे एक छोटा-सा पत्र खट्से जमीनपर गिर पड़ा। उसे उठाकर तथा उसके अक्षर और नाम सहीकी ओर देखकर मैं मानो अपने दोनों नेत्रोंपर भी विश्वास न कर सका। मेरी माँ, जो दस वर्ष

पहले ही देह त्याग कर गई थीं,—उन्हींके श्रीहस्तके ये दस्तखत थे, नाम और सही भी उन्हींकी थी ! पढ़कर देखा, माँने उसमें अपनी 'गंगाजल*'को जितना भी हो सकता है उतना अभय वचन दिया था। बात संभवतः यह थी, कि बारह-तेरह वर्ष पहले इस 'गंगाजल'के यहाँ जब अधिक उम्रमें एक कन्या-रत्नने जन्म ग्रहण किया, तब दुःख, दैन्य और दुश्चिन्ता प्रकट करके शायद माको उसने एक पत्र लिखा होगा और उसीके प्रत्युत्तरमें मेरी स्वर्ग-वासिनी जननीने गंगाजल-दुहिताके विवाहका समस्त दायित्व ग्रहण करके जो पत्र लिखा था वही यह मूल्यवान दस्तावेज थी। तात्कालिक करुणासे पिघलकर माने उपसंहारमें लिखा था कि सुपात्र यदि कहीं न मिले तो फिर उनका खुदका पुत्र तो है ही !—ठीक है, संसारमें सुपात्रका यदि बिल्कुल ही अभाव हो तो फिर मैं तो हूँ ही ! सारी चिट्ठीको ऊपरसे नीचे तक दो बार पढ़कर मैंने देखा कि वह मुन्शियाना ढंगसे लिखी गई है। माँको वकील होना चाहिए था, क्योंकि जितनी भी कल्पनायें की जा सकतीं थीं उतनी तरहसे वे अपने आपको और अपने वंशधरोंको उस दायित्वमें बाँध गई हैं। उससे बचनेके लिए दस्तावेजमें कहीं जरा-सी भी जगह,—जरा-सी भी त्रुटि, नहीं छोड़ी गई है।

वह चाहे जो हो, पर ऐसा तो मुझे नहीं मालूम पड़ा कि 'गंगाजल' इन सुदीर्घ तेरह वर्षों तक इस पक्की दस्तावेजके ही भरोसे निर्भय हो चुपचाप बैठी रही है ! परंतु, उलटे मन ही मन मुझे ऐसा लगा कि बहुत प्रयत्न करने पर भी जब रुपये और निजी मनुष्योंके अभावसे सुपात्र उसके लिए एकबारगी अप्राप्य हो गया, और कुमारी कन्याकी शारीरिक उन्नतिकी ओर दृष्टिपात करनेसे हृदयका रक्त मस्तिष्कमें चढ़नेकी तैयारी करने लगा, तब कहीं जाकर इस हतभाग्य सुपात्रके ऊपर उन्होंने अपना एकमात्र ब्रह्मास्त्र फेंका है।

माँ यदि जीती होतीं तो इस चिट्ठीके लिए आज मैं उनका सिर खा जाता और उनके पैरों पर जोरसे सिर पटककर अपनी ज्वालाको बुझाता, परन्तु यह रास्ता भी मेरे लिए बन्द है।

इसलिए, माँका तो कुछ-भी नहीं कर सका परंतु, अब उनकी गंगाजल-को भी कुछ कर सकता हूँ वा नहीं, यह परखनेके लिए मैं एक दिन रात्रिको स्टेशन पर जा पहुँचा। सारी रात ट्रेनमें काटकर दूसरे दिन जब उनके गाँवके

---

* बंगालमें स्त्रियाँ जिसे अपनी सखी-सहेली बनाती हैं उसे 'गंगाजल' इस प्यारके नामसे संबोधित करती हैं।

मकानपर पहुँचा तब दिन ढल गया था। गंगाजल-माँ पहले तो मुझे पहिचान न सकीं। अन्तमें, परिचय पाकर इन तेरह वर्षोंके बाद भी वे इस तरह रो पड़ीं जिस तरह कि मांकी मृत्युके समय उनका कोई अपना आदमी भी, आखोंके सामने उनकी मृत्यु होते देखकर, न रो सका होता।

वे बोलीं कि लोकदृष्टिसे और धर्मदृष्टिसे, दोनोंही तरह अब मैं तुम्हारी माताके समान हूँ और फिर दायित्व ग्रहण करनेकी प्रथम सीढ़ीके रूपमें उन्होंने मेरी सांसारिक परिस्थितिका बारीकीसे पर्यालोचन करना शुरू कर दिया। बाप कितना छोड़ गये हैं, मांके कौन-कौनसे गहने हैं और वे किसके पास हैं, मै नौकरी क्यों नहीं करता और यदि करूँ तो अंदाजसे क्या महिना पा सकता हूँ, इत्यादि इत्यादि। उनका मुँह देखकर खयाल हुआ कि इस आलोचनाका फल उनके निकट कुछ वैसा संतोषजनक नहीं हुआ। वे बोलीं कि उनका एक रिश्तेदार बर्मामें नौकरी करके 'लाल' हो गया है, अर्थात् अतिशय धनवान् हो गया है। वहां तो राह-घाटमें रुपये बिखरे पड़े हं, केवल समेटने-भरकी देर है! वहां पर जहाजसे उतरते न उतरते ही बंगालियोंको साहब लोग कंधोंपर उठा ले जाते हैं और नौकरीमें लगा देते हैं।—इस तरहकी बहुत-सी बातें कहीं। बादमें, मैंने देखा कि यह गलत धारणा केवल अकेली उन्हींकी नहीं थी। ऐसे बहुत-से लोग इस माया-मरीचिकासे उन्मत्तप्राय होकर सहाय-सम्बल हीन अवस्थामें वहाँ दौड़ गये हैं और मोह भंग होनेके बाद उन्हें वापिस लौटानेमें हम लोगोंको कम क्लेश सहन नहीं करना पड़ा है।—परंतु, वह बात इस समय रहने दो। गंगाजल-माँका बर्मा-वर्णन मुझे तीरकी तरह लगा। 'लाल' होनेकी आशासे नहीं,—मेरे भीतरका जो घुमक्कड़पन कुछ दिनोंसे सोया हुआ था वह अपनी थकावट झाड़ पोंछकर मुहूर्त भरमें ही उठ खड़ा हुआ। जिस समुद्रको इसके पहले केवल दूरसे खड़े-खड़े देखकर ही मुग्ध हो जाता था, अब उस अनन्त जलराशिको भी भेद करके मैं जा सकूँगा,—इस इच्छाने ही मुझे एकबारगी बेचैन कर दिया। तब किसी तरह एक बार छुटकारा पाना ही होगा।

मनुष्य मनुष्यसे जितने प्रकारकी भी जिरह कर सकता है, उनमेंसे किसीभी प्रकारकी जिरहसे गंगाजल-मांने मुझे नहीं छोड़ा। फिर भी, अपनी लड़कीके योग्य पात्रकी दृष्टिसे उन्होंने मुझे रिहाई दे दी,—इस विषयमें मैं एक तरहसे निश्चिन्त ही हो गया। परंतु, रात्रिमें भोजनके समय उनकी भूमिकाका झुकाव देखकर मैं फिर उद्विग्न हो उठा। मैंने देखा, मुझे एकबारगी हाथसे जाने देनेकी

उनकी इच्छा नहीं है। उन्होंने यह कहना शुरू किया कि यदि लड़कीके भागमें न हो, तो धन, घर-बार, शिक्षा-दीक्षा आदि कितना ही क्यों न देखा जाय, सब कुछ निष्फल है। इस सम्बन्धमें नाम-धाम, विवरणादिके साथ बहुत-सी विश्वासयोग्य नज़ीरें देकर उन्होंने इस बातको प्रमाणित भी कर दिखाया। इतना ही नहीं, इसके विरुद्ध ऐसे भी कितने ही लोगोंका नामोल्लेख किया कि जो निराट मूर्ख होते हुए भी केवल स्त्रीके ही सौभाग्यके जोरपर इस समय दिन-रात रुपयोंके ढेरपर बैठे रहते हैं।

मैंने विनयसहित कह दिया कि रुपये-पैसेकी तरफ मेरी आसक्ति तो है, फिर भी, चौबीसों घण्टे उनपर बैठा रहूँ, यह विवेचना मुझे प्रीतिकर नहीं मालूम होती और इसके लिए स्त्रीका सौभाग्य देखनेका कुतूहल भी मुझे नहीं है। किन्तु इसका कोई विशेष फल नहीं हुआ। उन्हें निरस्त न कर सका। क्योंकि, जो स्त्री तेरह वर्षके इतने लम्बे समयके पश्चात् भी एक पत्रको दस्तावेज़के रूपमें पेश कर सकती है, उसे इतने सहजमें नहीं भुलाया जा सकता। वे बार-बार कहने लगीं कि इसे माताके ऋणके रूपमें ही ग्रहण करना उचित है, और जो संतान समर्थ होते हुए भी मातृ-ऋणका परिशोध नहीं करती वह इत्यादि इत्यादि।

जब मै बहुत ही शंकित और विचलित हो उठा, तब बातों ही बातोंमें मुझे मालूम हुआ कि पासके गाँवमें यद्यपि एक सुपात्र है, परन्तु, पाँच-सौ रुपयेसे कममें उसका पाना असंभव है।

एक क्षीण आशाकी रश्मि नज़र आई। महीने भरके बाद जैसे भी हो कोई उपाय कर दूँगा,-यह वचन देकर दूसरे दिन सुबह ही मैंने प्रस्थान कर दिया। परंतु उपाय किस तरह करूँगा,-किसी ओर भी उसका कोई कूल किनारा नज़र नहीं आया।

मेरे ऊपर लादा गया यह भार मेरे लिए कोई सचमुचकी वस्तु नही हो सकता, यह मैं अनेक तरहसे अपने आपको समझाने लगा; परंतु फिर भी, माँको इस प्रतिज्ञाके पाशसे मुक्ति न देकर चुपचाप खिसक जानेकी बात भी किसी तरह मैं नहीं सोच सका।

शायद एक उपाय था,—मैं यह बात प्यारीसे कहूँ। किन्तु, कुछ दिनों तक इस सम्बन्धमें भी मै अपने मनको स्थिर न कर सका। बहुत दिनोंसे मुझे उसकी खबर भी नहीं मिली थी। उस पहुँचकी खबरको छोड़कर मैंने उसे

और कोई चिट्ठी भी नहीं लिखी थी। उसने भी उसके जवाबके सिवाय, दूसरा पत्र नहीं लिखा। इस बातको वह शायद नहीं मानती थी कि चिट्ठी-पत्रीके द्वारा ही दोनोंके बीच मिलापका एक सूत्र रहता है। कमसे कम उसके उस पत्रसे तो मैं यही समझा। फिरभी अचरजकी बात है कि दूसरेकी लड़कीके लिए भिक्षा माँगनेके बहाने एक दिन मैं सचमुच ही पटने जा पहुँचा।

मकानमें प्रवेश करते ही नीचे बैठनेके कमरेके बरामदेमें मैंने देखा कि वर्दी पहने हुए दो दरबान बैठे हैं। वे एकाएक एक साधारणसे अपरिचित आगन्तुकको देखकर कुछ इस तरह देखते रह गये कि मुझे सीधे ऊपर चढ़ जानेमें संकोच मालूम हुआ। इन्हें मैंने पहले नहीं देखा था। प्यारीको पुराने बूढ़े दरबानजीके बदले इन दो और दरबानोंकी क्या आवश्यकता आ पड़ी, यह मैं न सोच सका। जो भी हो, इनकी परवाह किये बगैर ऊपर चला जाऊँ अथवा विनयके साथ इनकी अनुमति माँगूँ,—यह स्थिर करते न करते ही मैंने देखा कि रतन व्यस्त हुआ-सा नीचे आ रहा है। अकस्मात् मुझे देखकर वह पहले तो अवाक् हो गया; बादमें पैरोंकी ओर झुककर प्रणाम करके बोला, "आप कब आये? यहाँ कैसे खड़े हैं?"

"अभी ही आ रहा हूँ, रतन। सब कुशल तो है न?"

रतन सिर हिलाकर बोला, "सब कुशल है, बाबू। ऊपर चलिए,—मैं बरफ खरीदकर अभी आया।" कहकर वह जाने लगा।

"तुम्हारी मालकिन ऊपर ही हैं?"

"हाँ हैं," कहकर वह जल्दीसे बाहर चला गया।

ऊपर चढ़ते ही जो पासका कमरा मिलता है वह बैठकखाना है। भीतर-से एक ऊँची हँसीका शब्द और बहुतसे लोगोंकी आवाज सुनाई दी। मैं ज़रा विस्मित हुआ। परन्तु, दूसरे ही क्षण, द्वारके नजदीक पहुँचकर मैं अवाक् हो गया। पिछली दफे इस कमरेको व्यवहारमें आते नहीं देखा था। इसमें तरह तरहके साज-सामान, टेबल, चेअर आदि अनेक चीजें एक कोनेमें ढेर होकर पड़ी रहती थीं। बहुधा कोई इस कमरेमें आता भी न था। आज देखता हूँ, संपूर्ण कमरेमें बिस्तर है, शुरूसे अन्त तक कार्पेट बिछा हुआ है और उसके ऊपर सफेद जाजम झकझक कर रही है। तकियोंके ऊपर गिलाफ चढ़े हुए हैं और उनके सहारे बैठे हुए कुछ सभ्य पुरुष अचरजसे मेरी ओर देख रहे हैं। उनकी पोशाकमें बंगालियोंकी तरह धोती होने पर भी सिरपरकी बेल-बूटेदार

मसलिनकी टोपीसे बिहारीसे मालूम होते थे। तबलेकी जोड़ीके पास एक हिन्दुस्तानी तबलची था और उसके पासमें ही स्वयं प्यारीबाई थीं। एक तरफ छोटा-सा हारमोनियम रक्खा था। प्यारीके शरीरपर यद्यपि मुजरेकी पोशाक नहीं थी, फिर भी बनाव-सिंगारका अभाव नहीं था। समझ गया कि संगीतकी बैठक जमी हुई है,—थोड़ी देर विश्राम लिया जा रहा है।

मुझे देखते ही प्यारीके चेहरेका समस्त खून मानों कहीं अन्तर्हित हो गया। इसके बाद उसने जबर्दस्ती कुछ हँसकर कहा, "यह क्या, श्रीकान्त बाबू हैं! कब आये?"

"आज ही।"

"आज ही? कब? कहाँ ठहरे हैं?"

क्षण-भरके लिए शायद मैं कुछ हतबुद्धि-सा हो गया; नहीं तो उत्तर देनेमें देर न होती। परन्तु, अपने आपको सम्हालनेमें भी मुझे अधिक देर नहीं लगी। मैंने कहा, "यहाँके सब लोगोंको तुम चीन्हती नहीं हो, इसलिए, नाम सुनकर भी न चीन्ह सकोगी।"

जो महाशय सबसे अधिक बने ठने थे वही शायद इस यज्ञके यजमान थे। बोले, "आइए बाबू जी, बैठिए।" इतना कहकर होठोंको दबाकर जरा वे हँसे। भाव-भंगीसे उन्होंने यह प्रकट किया कि हम दोनोंका संबंध वे ठीक तौरसे भाँप गये हैं! उनका आदरके साथ अभिवादन कर मैंने, जूतेके फीते खोलनेके बहाने, मुँह नीचा करके परिस्थितिको भाँप लेना चाहा। विचार करनेके लिए अधिक समय नहीं था, यह ठीक है, परन्तु, इन थोड़ेसे क्षणोंमें मैंने यह स्थिर कर लिया कि हृदयके भीतर कुछ भी हो, बाहरके व्यवहारमें वह किसी भी तरह प्रकाशित न होना चाहिए। मेरे मुँहकी बात-चीतसे, आँखोंकी चितवनसे, मेरे सारे आचरणके किसी भी छिद्रमेंसे, अन्तरके क्षोभ अथवा अभिमानकी एक बूँद भी बाहर आकर न गिरना चाहिए। क्षण-भर बाद, जब मैं सबके बीचमें जाकर बैठा तब, यद्यपि यह सच है कि अपने मुखकी सूरत अपनी आँखों न देख सका, किन्तु भीतर ही भीतर मैंने अनुभव किया कि अब उसपर अपसन्नताका लेशमात्र भी चिह्न नहीं रह गया है। राजलक्ष्मीकी ओर देखकर मैं हँसते हुए बोला, "बाईजी, यदि शुकदेव मुनिका पता पा जाता तो आज तुम्हारे सामने बिठाकर एक दफा उनके मनकी शक्तिकी जाँच कर लेता! अरे, यह किया क्या है! यह तो रूपका समुद्र ही बहा दिया है!"

प्रशंसा सुनकर प्रमुख बाबू साहब आह्लादसे गलकर सिर हिलाने लगे। वे पुर्निया जिलेके रहनेवाले थे; मैंने देखा, कि बोल न सकनेपर भी बंगला अच्छी तरह समझते हैं। परन्तु प्यारीके कान तक लाल हो उठे।—किन्तु, लाजके मारे नहीं,—गुस्सेके मारे, यह भी समझनेमें कुछ बाकी न रहा। परन्तु, उस ओर भ्रू-क्षेप भी न करके बाबू साहबको उद्देश्य करके मैंने उसी तरह हँसते हुए कहा, "मेरे आनेके कारण यदि आप लोगोंके अमोद-प्रमोदमें थोड़ा-सा भी विघ्न होगा, तो मुझे बहुत दुःख होगा। गाना-बजाना चलने दीजिए।"

बाबूजी इतने प्रसन्न हो उठे कि आवेशमें आकर मेरी पीठपर एक धौल जमाकर बोले, "बहुत अच्छा बाबू।—हाँ प्यारी बीबी, एक बढ़िया-सा गाना चलने दो।"

"सन्ध्याके बाद होगा,—बस अब और नहीं," यह कह कर प्यारी हार-मोनियम दूर खिसकाकर सहसा उठ खड़ी हुई।

इसी समय बाबू साहब मेरा परिचय पानेके उपलक्ष्यसे अपना परिचय देने लगे।—उनका नाम था रामचन्द्रसिंह। वे पुर्निया ज़िलेके एक ज़मींदार हैं, दरभंगा-महाराजा उनके कुटुम्बी हैं, प्यारी बीबीको वे सात-आठ वर्षसे जानते हैं। वे उनके पुर्नियाके मकानपर तीन-चार दफे मुजरा कर आई हैं। वे खुद भी अनेक दफे गाना सुनने यहाँ आये हैं। कभी-कभी दस-दस बारह-बारह दिन तक वे यहीं रहते हैं और तीनेक महीने पहले एक दफे आकर वे एक हफ्ते तक यहाँ रह गये हैं,—वगैरह वगैरह। अब उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ। मेरे जवाब देनेके पहले ही वहाँ प्यारी आ उपस्थित हुई। उसकी ओर देखकर मैंने कहा, "बाईजीसे ही पूछिए न, कि क्यों आया हूँ।"

प्यारीने मेरे मुँहपर एक तीव्र कटाक्ष डाला, परन्तु, जवाब दिया सहज शान्त स्वरमें ही, "ये हमारे देशके आदमी हैं।"

मैंने हँसकर कहा, "बाबूजी, मधु होनेपर मधुमक्खियाँ आकर जुट जाती हैं वे देश-विदेशका बिचार नहीं करतीं।" किन्तु इतना, कहते ही मैंने देखा कि रहस्यको ग्रहण न कर सकनेके कारण पुर्निया ज़िलेके ज़मीनदारने अपने मुँहको गंभीर बना लिया और उनके नौकरने ज्यों ही आकर कहा कि संध्या-पूजाके लिए तैयारी हो गई है त्यों ही उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया। तबलची तथा अन्य दो महाशय उनके साथ ही साथ बाहर चले गये। उनका

मन अकस्मात् क्यों इतना व्याकुल हो गया, सो मैं बिन्दु-विसर्ग कुछ भी नहीं समझा।

रतन आकर बोला' "माँ, बाबूजीके बिछौने कहाँ करूँ ?"

प्यारीने झुँझलाकर कहा, "क्या और कोई कमरा नहीं है रतन? मुझसे पूछे बिना क्या इतनी-सी बुद्धि भी तू नहीं लगा सकता? चला जा यहाँसे !" इतना कह कर रतनके साथ आप भी बाहर चली गई। मैंने खूब अच्छी तरहसे देखा कि मेरे आकस्मिक शुभागमनसे इस मकानका भार-केन्द्र एक सांघातिक ढंगसे विचलित हो गया है। प्यारीने, किन्तु, थोड़ी ही देर बाद लौट आकर और मेरे मुँहकी ओर कुछ देर देखते रहकर कहा, "ऐसे अचानक कैसे आना हो गया ?"

मैंने कहा, "देशका आदमी हूँ, तुम्हें बहुत दिनसे न देख सकनेके कारण व्याकुल हो उठा था, बाईजी !"

प्यारीका मुँह और भी भारी हो गया। मेरे परिहासमें जरा भी योग न देकर उसने पूछा, "आज रातको यहाँ ही रहोगे न ?"

"रहनेको कहोगी तो रह जाऊँगा।"

"मेरे कहने न कहनेसे क्या ! तुम्हें यहाँ शायद कुछ असुविधा हो। जिस कमरेमें तुम सोते थे उसमें तो—"

"बाबू सोते हैं? ठीक है, मै नीचे सो जाऊँगा। तुम्हारे नीचेका कमरा तो बहुत उम्दा है।"

"नीचे सोओगे? कहते क्या हो ! मनमें तुम्हारे जरा भी विकार नहीं,— दो ही दिनमें इतने बड़े परमहंस किस तरह हो गये ?"

मैंने मन ही मन कहा, 'प्यारी, तुमने मुझे अब तक भी नहीं पहिचाना।' फिर मुँहसे कहा, "इसमें मुझे मान-अपमानका ख्याल बिन्दु-भर भी नहीं है। और, कष्टकी बातका यदि खयाल करो, तो वह तो एकबारगी ही फिजूल है। मैं घरसे बाहर निकलनेके समय खाने-सोनेकी चिन्ताओंको दूर रख आता हूँ, यह तो तुम भी जानती हो। बिस्तर अधिक हों तो एक ले आनेके लिए कह दो, नहीं हो, तो फिर उसकी भी दरकार नहीं है,—मुझे अपने कम्बलका सम्बल है।"

प्यारीने सिर हिलाकर कहा, "सो तो मैं जानती हूँ; किन्तु, इससे मनमें किसी तरहका दुःख तो न होगा ?"

मैने हँसकर कहा, "नही, क्योंकि स्टेशनपर पड़े रहनेकी अपेक्षा तो यह बहुत ही अच्छा है।"

प्यारी कुछ देर चुप खड़ी रही: फिर बोली, "यदि मै होती तो भले ही वृक्षके नीचे सो रहती, परंतु इतना अपमान कभी नहीं सहती।"

उसकी उत्तेजनाको देखकर मुझसे हँसे बिना न रह गया। वह मेरे मुँहसे क्या सुनना चाहती है, सो म बड़ी देरसे खूब समझ रहा था। किन्तु शान्त स्वाभाविक स्वरूपसे मैने जवाब दिया, "मै इतना बेवकूफ नहीं हूँ कि इस बातको मनमें आने दूँ कि तुम, जान बूझकर मुझे नीचे सोनेको कहकर, मेरा अपमान कर रही हो। यदि संभव होता तो तुम उस दफेके समान इस दफे भी मेरे सोनेकी व्यवस्था करतीं। जाने दो, इन तुच्छ बातोंको लेकर वाग्वितंडा करनेकी जरूरत नहीं, तुम रतनको भेज दो कि मुझे नीचेका कमरा दिखा आवे मै कम्बल बिछाकर सो रहूँगा। मै बहुत ही थक गया हूँ।"

प्यारीने कहा, "तुम ज्ञानी आदमी हो, तुम ही मेरी ठीक अवस्थाको न जान सकोगे तो और जानेगा कौन? चलो, बच गई।" इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास दबाकर पूछा, "एकाएक आनेका सच्चा कारण तो मै जान ही न सकी कि क्या है?"

मै बोला, "पहला कारण तो तुम नहीं सुन पाओगी: किन्तु, दूसरा सुन सकती हो!"

"पहला क्यों नहीं सुन सकूँगी?"

"अनावश्यक है, इसलिए।"

"अच्छा, दूसरा ही सुनाओ।"

"मैं बरमा जा रहा हूँ। शायद और फिर कभी मिलना न हो सके। कमसे कम यह तो निश्चित है कि बहुत दिनों तक मिलाप न होगा। जानेके पहले एक दफे तुम्हें देखने आया हूँ।"

रतन कमरेमें आकर बोला, "बाबू आपके बिस्तर तैयार हैं, आइए।"

मैंने खुश होकर कहा, "चलो।" प्यारीसे कहा, "मुझे बड़ी नींद आ रही है। घण्टे भर बाद यदि समय मिले तो एक दफे नीचे आ जाना,—मुझे और भी बहुत-सी बातें करनी हैं।" इतना कहकर रतनको साथ लेकर मै बाहर हो गया।

प्यारीके निजके सोनेके कमरेमें ले आकर रतनने मुझे जब शय्या बताई तब

मेरे अचरजकी सीमा न रही। मैं बोला, "मेरे बिस्तर नीचेके कमरेमें करके यहाँ क्यों किये?"

रतनने अचरजके साथ कहा, "नीचेके कमरेमें?"

मैंने कहा, "ऐसी ही बात तो हुई थी।"

वह अवाक् होकर कुछ देर मेरी ओर देखता रहा और अंतमें बोला, "आपके बिस्तर होंगे नीचेके कमरेमें? आप मजाक कर रहे हैं बाबू!" इतना कहकर वह हँसता हुआ जा ही रहा था कि मैंने उसे बुलाकर पूछा, "तुम्हारी मालकिन कहा सोवेंगी?"

रतन बोला, "बंकू बाबूके कमरेमें उनके बिस्तर लगा आया हूँ।" मैंने निकट आकर देखा,—यह राजलक्ष्मीके उस डेढ़ हाथ चौड़े तख़्तेपर बिछाया हुआ बिस्तर नहीं है। एक पलंगपर एक खूब मोटा गद्दा बिछाकर शाही बिस्तर लगाये गये हैं। शीशेके नजदीक एक छोटी-सी टेबलके ऊपर सेजके बीचोंबीच लैम्प जल रहा है। एक किनारे बंगला भाषाकी किताबें हैं और दूसरे किनारे गुलदस्तेमें कुछ बेलाके फूल रक्खे हैं। आँखोंसे देखते ही मैंने अच्छी तरह जान लिया कि इनमेंसे कोई भी चीज नौकरके हाथकी तैयार की हुई नहीं है। जो बहुत प्यार करती है, ये सब चीजें उसीके हाथकी तैयार की हुई हैं। ऊपरकी चादर भी राजलक्ष्मी खुद अपने हाथों बिछा गई है, यह मानो अन्दर ही अन्दर मैंने खूब अनुभव किया।

आज उन लोगोंके सामने अचानक आ जानेके सबब राजलक्ष्मीने, हतबुद्धि हो, पहले चाहे जैसा व्यवहार क्यों न किया हो, पर यह बात मुझसे अज्ञात नहीं रही कि मेरी निर्विकार उदासीनतासे वह मन ही मन शंकित हो उठी थी और यह भी मुझे मालूम हो गया कि मेरे भीतर ईर्षाका प्रकाश देखनेके लिए उत्सुक हो वह इतनी देरसे इतनी तरहसे क्यों बार बार आघात कर रही थी। किन्तु, सब कुछ जानते हुए भी, अपने निष्ठुर स्वभावको ही मर्दानगी समझकर मैंने उसका जरा भी अभिमान नहीं रहने दिया,—उसके प्रत्येक छोटेसे छोटे आघातको सौ गुना करके वापिस लौटा दिया। उसके प्रति किया गया यह अन्याय मेरे मनके भीतर अब सुईकी तरह चुभने लग

मै बिस्तरपर लेट गया किन्तु सो नहीं सका। मैं यह निश्चय जानता था कि एक बार वह आयगी जरूर। इसलिए, उत्सुकताके साथ उस समयकी राह देखने लगा।

थकावटके कारण शायद कुछ सो भी गया था। सहसा आँखें खोलकर देखा कि प्यारी मेरे शरीरपर एक हाथ रक्खे हुए बैठी है। मेरे उठकर बैठते ही वह बोली, "बरमाको गया हुआ मनुष्य फिर लौटकर वापिस नहीं आता, यह बात क्या तुम्हें मालूम है ?"

"नहीं, मुझे नहीं मालूम।"

"फिर ?"

"मुझे लौटना ही होगा, ऐसी तो किसीके सिरकी कसम मुझपर है नहीं।"

बात बहुत ही सामान्य थी। किन्तु, संसारमें यह एक भारी अचरजकी बात है कि मनुष्यकी दुर्बलता कब किस झरोखेसे अपने आपको प्रकट कर बैठेगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इसके पहले कितने ही और इससे भी अधिक बड़े कारण घट गये हैं; परंतु, मैंने कभी अपने आपको इस तरह नहीं पकड़ा जाने दिया। किन्तु, आज उसके मुंहसे निकली हुई इस अत्यंत साधारण बातको भी मैं सहन नहीं कर सका। मुँहसे सहसा यह बात निकल ही गई, "सब लोगोंके मनकी बात तो जानता नहीं राजलक्ष्मी, परंतु एक मनुष्यके मनकी अवश्य जानता हूँ। यदि किसी दिन लौटकर आऊँगा तो केवल तुम्हारे ही लिए। तुम्हारे सिरकी कसमकी मैं कभी अवहेलना नहीं करूँगा।"

प्यारी मेरे पैरोंपर एकबारगी उल्टी हो गिर पड़ी। मैंने इच्छा करके भी पैर पीछे न खींचे; परंतु, दसेक मिनट बीत जानेपर भी जब उसने अपना सिर ऊपर नहीं उठाया तब उसके सिरपर मैंने अपना दाहिना हाथ रक्खा जिसके पड़ते ही वह एक बार सिहरकर काँप उठी। परंतु फिर भी वह उसी तरह पड़ी रही। सिर भी नहीं उठाया, बोली भी नहीं। मैंने कहा, "उठकर बैठो, इस अवस्थामें हमें यदि कोई देखेगा तो भारी अचंभेमें पड़ जाएगा।"

किन्तु, प्यारीने जवाब तक नहीं दिया तब मैंने उसे जोरसे उठाया। उठाते ही मैंने देखा कि उसके नीरव आँसुओंसे वहाँकी सारी चादर बिल्कुल भीग गई है। खींच-तान करनेपर वह रुद्ध कंठसे बोल उठी, "पहले मेरी दो-तीन बातोंका जवाब दो तब मैं उठूँगी।"

"कहो, कौन-सी बातें हैं।"

"पहले तो यह कहो कि उन लोगोंके यहाँ रहनेसे तुमने मेरे संबंधमें कोई बुरा ख़्याल तो नहीं किया ?"

"नहीं।"

प्यारी और कुछ देर चुप रहकर बोली, "किन्तु, मै भली औरत नहीं हूँ, यह तो तुम जानते हो? फिर भी, तुम्हें क्यों संदेह नहीं हुआ?"

सवाल बड़ा ही कठिन था। वह भली स्त्री नहीं है, यह मै जानता हूँ; परंतु वह खराब है, बुरी है, यह ख्याल भी मै मनमें नहीं ला सका। मैं चुप हो रहा।

एकाएक वह अपनी आँखें पोंछकर झटपट उठ बैठी और बोली, "अच्छा, तुमसे पूछती हूँ; पुरुष कितना ही बुरा क्यों न हो, यदि वह भला होना चाहता है तो उसे कोई रोकता नहीं: किन्तु, हम लोगोंकी पारी आनेपर सब मार्ग क्यों बन्द हो जाते हैं? अज्ञानसे, धनाभावसे, एक दिन जो कर बैठी.--चिरकालके लिए मुझे वही क्यों करना पड़ता रहे? हम लोगोंको तुम लोग क्यों भला बनने नहीं देते?"

मैंने कहा "हम लोग तो कभी रोकते नहीं हैं। और यदि हम रोकें, तो भी, संसारमें भले बननेके मार्गमें कोई किसीको अटकाकर नहीं रख सकता।"

प्यारी बड़ी देर तक चुप रहकर मेरे मुँहकी ओर देखकर अंतमें धीरे-धीरे बोली, "बहुत ठीक, तो फिर, तुम भी मुझे नहीं रोक सकोगे।"

मेरे जवाब देनेके पहले ही रतनकी खाँसीका शब्द द्वारके निकट सुन पड़ा

प्यारीने पुकार कर कहा, "क्या है रतन?"

रतनने मुँह आगे निकाल कर कहा, "माँ रात बहुत बीत गई है,--बाबूजीके खानेके लिए ले न आऊं? रसोइया महाराज तो झोंके खाते खाते रसोई-घरमें ही सो गये हैं।"

"अरे, तब तो तुममेंसे किसीने भी अभी तक खाया न होगा!" इतना कह प्यारी घबड़ाकर और लज्जित होकर उठ खड़ी हुई। मेरे लिए खानेको वह अपने ही हाथों हमेशा लाती थी; आज भी लानेके लिए जल्दीसे पैर बढ़ाती हुई चली गई।

खाना समाप्त करके जब मै बिस्तरपर लेटा तब रातका एक बज गया था। प्यारी फिर आकर मेरे पैरोंके पास बैठ गई। बोली, "तुम्हारे लिए अनेकों रातें अकेले जागकर बिताई हैं,--आज तुम्हें भी जागती रक्खूँगी। इतना कहकर मेरी सम्मतिकी राय देखे बगैर ही उसने मेरे पैरकी तरफका तकिया खींच लिया और बाएँ हाथका सहारा लेकर वह लेट गई तथा बोली, "मैने बहुत विचार कर देखा, तुम्हारा इतने दूर देश जाना किसी तरह भी नहीं हो सकता।"

मैने पूछा, "तो फिर, क्या हो सकता है ?---इसी तरह यहाँ, वहाँ भटकते फिरना ?"

प्यारीने इसका जवाब न देकर कहा, "इसके सिवाय किस लिए बरमा जा रहे हो, कहो तो सही ?"

"नौकरी करने, यहाँ-वहाँ भटकते फिरनेके लिए नहीं ।"

मेरी बातको सुनकर प्यारी उत्तेजनाके वश सीधी होकर बैठ गई और बोली "देखो, दूसरेसे जो कहना हो कहना, किंतु मुझे न ठगना। मुझे ठगोगे तो तुम्हारा इहकाल भी नहीं, परकाल भी नहीं बनेगा,--सो जानते हो ?"

"सो तो खूब जानता हूँ, अब क्या करना चाहिए कहो तुम ?"

मेरी स्वीकारोक्तिसे प्यारी प्रसन्न हुई । हँसकर बोली, "स्त्रियाँ चिरकालसे जो कहती आई हैं वही मै कहती हूँ । विवाह करके संसारी बन जाओ,–गृहस्थ-धर्मका पालन करो ।"

मैने प्रश्न किया, "क्या सचमुच ही तुम खुशी होओगी ?"

उसने सिर हिलाकर कानोंके झूले हिलाते हुए उत्साहसे कहा, "निश्चयसे, एक दफे नहीं, सौ दफे । इससे यदि मै सुखी नहीं होऊँगी, तो फिर और कौन होगा, बताओ ?"

मैंने कहा, "सो तो मै नहीं जानता; परंतु, इससे मेरे मनकी एक दुर्भावना चली गई । वास्तवमें, यही खबर देने मैं आया था कि ब्याह किये बगैर मेरी गुजर नहीं ।"

प्यारी एक बार अपने कानोंके स्वर्णालंकार झुलाती हुई महा आनन्दसे बोल उठी, "ऐसा होगा तो मै कालीघाट जाकर पूजा दे आऊंगी । किन्तु, लड़कीको मै ही देखकर पसन्द करूँगी, सो कहे देती हूँ ।"

मैंने कहा, "इसके लिए अब समय नहीं है, लड़की तो स्थिर हो चुकी है ।"

मेरे गम्भीर स्वर पर शायद प्यारीने ध्यान दिया । एकाएक उसके हँसते हुए मुखपर एक मैली-सी छाया पड़ गई; बोली, "ठीक तो है, अच्छा ही हुआ । स्थिर हो गई है तो परम सुखकी बात है ।"

मैने कहा, "सुख-दुख तो मैं समझता नहीं राजलक्ष्मी, जो बात स्थिर हो चुकी है वही तुम्हें बताता हूँ ।"

प्यारी एकाएक गुस्सेसे बोल उठी, "जाओ, चालाकी मत करो, सब बात झूठी है ।"

"एक भी बात मिथ्या नहीं है। चिट्ठी देखते ही समझ जाओगी," इतना कहकर खीसेमेंसे मैंने दो पत्र बाहर निकाले।

"कहाँ है, देखूँ चिट्ठी" इतना कह हाथ बढ़ाकर प्यारीने दोनों हाथोंमें चिट्ठियाँ ले लीं। उन्हें हाथमें लेते ही मानों उसके सारे मुँहपर अँधेरा छा गया। दोनों पत्र हाथमें लिये ही लिये वह बोली, "दूसरेका पत्र पढ़नेकी मुझे जरूरत ही क्या है! बताओ कहाँ स्थिर हुई है?"

"पढ़ देखो।"

"मै दूसरेकी चिट्ठी नहीं पढ़ती।"

"तो फिर दूसरेकी खबर जाननेकी तुम्हें जरूरत भी नहीं है।"

"मैं नहीं जानना चाहती।" इतना कहकर आँखें मींचकर वह लेट गई। किन्तु दोनों चिट्ठियाँ उसकी मुट्ठीमें ही रह गईं। बहुत देर तक वह कुछ न बोली। इसके बाद वह धीरेसे उठी, जाकर लैम्प तेज किया और मेजपर दोनों पत्र रख कर स्थिरतासे बैठी। उनमें जो कुछ लिखा था सो शायद उसने दो तीन दफे पढ़ा। इसके बाद वह उठ आई और उसी तरह फिर लेट गई। बहुत देर तक चुप रहनेके बाद वह बोली "सो गये क्या?"

"नहीं।"

"इस स्थानपर मै तुम्हें किसी तरह ब्याह न करने दूँगी; वह लड़की अच्छी नहीं है, उसे मैने बचपनमें देखा है।"

"माँका पत्र पढ़ा?"

"हाँ, किन्तु काकीके पत्रमें ऐसा कुछ भी नहीं लिखा है कि तुम्हें उसे गलेमें डालना ही पड़ेगा। और चाहे वह अच्छी हो, चाहे न हो, पर उस लड़कीको मै किसी तरह भी घरमें नहीं लाऊँगी।"

"कैसी लड़की घरमें लाना चाहती हो, बता सकती हो?"

"सो मैं इस समय कैसे बताऊँ? विचार करके देखना होगा।"

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद मैं हँसकर बोला, "तुम्हारी पसन्दगी और विवेचनाके ऊपर निर्भर रहा जाय तो मुझे अपना कुमारपन उतारनेके लिए आगे और एक जन्म ग्रहण करना पड़े;—शायद, उसमें भी पूरा न पड़े। जाने दो, यथासमय, न हो तो दूसरा जन्म ग्रहण कर लूँगा। मुझे जल्दी नहीं है। परन्तु, इस लड़कीका तुम उद्धार कर दो। पाँच-सौ रुपये हों तो यह काम हो जायगा, मैं उन्हींके मुँहसे सुन आया हूँ।"

प्यारी उत्साहमें आकर उठ बैठी और बोली, "कल ही मै रुपये भेज दूँगी। काकीकी बात मिथ्या नहीं होने दूँगी।" फिर कुछ देर ठहरकर बोली, "सच कहती हूँ तुमसे, यह लड़की अच्छी नहीं है, इसलिए मुझे आपत्ति है, नही तो—"

"नहीं तो—?"

"नहीं तो और क्या! तुम्हारे लायक लड़की जब ढूढ़ दूँगी, उसी समय इस बातका उत्तर दूँगी, इस समय नहीं।"

सिर हिलाकर मैंने कहा, "तुम फिजूल कोशिश मत करो राजलक्ष्मी, मेरे लायक लड़की तुम किसी दिन भी खोजकर न निकाल सकोगी।"

वह बहुत देर तक चुप बैठी रहकर एकाएक बोल उठी, "अच्छा सो शायद न निकाल सकूँ, परन्तु, तुम बर्मा जाओगे तो मुझे साथ ले चलोगे?"

उसके प्रस्तावको सुनकर मै हँसा। बोला, "मेरे साथ चलनेका तुम्हें साहस होगा?"

प्यारी मेरे मुँहके प्रति तीक्ष्ण दृष्टिपात करके बोली, "साहस! इसे क्या तुम कोई बड़ी कठिन बात समझते हो?"

"मै चाहे जो समझूँ, किन्तु तुम्हारे इस सारे घर-द्वार, माल-असबाब जमीन-जायदाद आदिका क्या होगा?"

प्यारी बोली, "चाहे जो हो। तुम्हे नौकरी करनेके लिए जब इतनी दूर जाना पड़ा,—यह सब रहते हुए भी जब तुम्हारे किसी काम न आया, तब इसे बंकूको दे जाऊँगी।"

इस बातका जवाब मै नहीं दे सका। खुली हुई खिड़कीके बाहर अँधेरेमें देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

उसने फिर कहा, "इतनी दूर न जाओ तो न चले? यह सब क्या किसी भी दिन तुम्हारे किसी काममें नहीं आ सकता?"

मैं बोला, "नहीं, कभी किसी दिन भी नहीं।"

प्यारीने गर्दन हिलाकर कहा, "यह मै जानती हूँ। परन्तु, ले चलोगे तुम मुझे अपने साथ?" इतना कहकर उसने मेरे पैरोंपर फिर अपने हाथ रख दिये। एक दिन जब प्यारीने मकानसे जबर्दस्ती बिदा कर दिया था तब उस दिनका उसका असाधारण धीरज और मनकी ताकत देखकर मै अवाक् हो गया था। आज उसीकी इतनी बड़ी दुर्बलता,—करुण कण्ठकी ऐसी कातर

मिन्नत ! यह सब एक साथ याद करके मेरी छाती फटने लगी। परन्तु, किसी तरह भी राजी न हो सका। बोला, "मैं तुम्हें अपने साथ तो नहीं ले जा सकता, परन्तु, तुम जब बुलाओगी, तभी लौट आऊँगा। मै कहीं भी रहूँ, हमेशा तुम्हारा हीं रहूँगा राजलक्ष्मी !"

"क्या तुम चिरकालतक इस पापिष्टाके ही होकर रहोगे ?"

"हाँ, चिरकाल तक।"

"तब तो फिर, यह कहो कि तुम्हारा कभी विवाह ही न होगा ?"

"हाँ, नहीं होगा। इसका कारण यह है, कि तुम्हारी सम्मतिके बिना तुम्हें दुःख देकर, इस काममें मेरी कभी प्रवृत्ति नही होगी।"

प्यारी अपलक दृष्टिसे कुछ देर तक मेरे मुँहकी ओर देखती रही। इसके बाद उसके दोनों नेत्र आँसुओंसे परिपूर्ण होकर बड़ी-बड़ी बूँदोंके रूपमें टप-टप गिरने लगे। आँखें पोंछकर गाढ़ स्वरमें वह बोली, "इस हतभागिनीके लिए तुम जिन्दगी-भर संन्यासी बने रहोगे ?"

मैंने कहा, "हाँ, बना रहूँगा। तुम्हारे पास जो वस्तु मैंने पाई है, उसके बदले संन्यासी बनकर रहनेमें मेरा कोई नुकसान नहीं है। मै कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरी इस बातपर तुम कभी अविश्वास न करना।"

पल भरके लिए दोनोंकी चार नज़रें हुई और दूसरे ही क्षण वह तकिए-में मुँह छिपाकर उलटी लेट गई। उच्छ्वसित क्रन्दनके आवेगसे उसका सारा शरीर काँप-काँपकर और फूल-फूल कर उचकने लगा।

मैंने मुँह उठाकर देखा, सारा मकान गहरी नींदसे ढका हुआ था। कहीं कोई जाग नहीं रहा था। केवल एक दफे खयाल आया, कि झरोखेके बाहर अँधियारी रात्रि अपने कितने ही उत्सवोंकी प्रिय सहचरी प्यारीके इस हृदयविदारक अभिनयको मानो आज चुपचाप, आँखें खोलकर, अत्यन्त परितृप्तिके साथ देख रही हैं।

२

ऐसी ऐसी अनेक बातें देखी हैं जिन्हें कि जीवन-भर भूला नहीं जा सकता। वे जब कभी याद आ जाती हैं तब उस समयके शब्द तक मानों कानोंमें गूँज उठते हैं। प्यारीके अन्तिम शब्द भी इसी तरहके थे। आज भी मैं मानों उनकी गूँज सुना करता हूँ। वह अपने स्वभावसे ही कितनी

अधिक संयमी थी, इसका परिचय बचपनमें ही उसने बहुत दफे दिया है। और फिर, उसके ऊपर अब इतने दिनोंकी सांसारिक अभिज्ञता है। उस दफे मेरे बिदा होनेके समय किसी तरह भागकर उसने आत्म-रक्षा की थी। परन्तु इस दफे वह किसी तरह भी अपने आपको न सम्हाल सकी, और नौकर-चाकरोंके सामने ही रो पड़ी। रुँधे हुए कण्ठसे वह बोल उठी, "देखो, मैं नासमझ नहीं हूँ। अपने पापोंका भारी दण्ड मुझे भोगना ही पड़ेगा, सो मैं जानती हूँ; किन्तु, फिर भी कहती हूँ, हमारा यह समाज बड़ा निष्ठुर,—बड़ा निर्दय है। इसे भी इसका दण्ड एक न एक दिन भोगना ही पड़ेगा। भगवान् इस पापकी सज़ा देंगे ही देंगे!"

समाजको उसने क्यों इतना बड़ा अभिशाप दिया सो वह जाने और उसके अन्तर्यामी जानें। मैं नहीं जानता, सो बात नहीं है; किन्तु मैं चुप हो रहा। बूढ़ा दरबान गाड़ीका दरवाजा खोलकर मेरे मुँहकी ओर देखने लगा। मैं आगे पैर बढ़ा ही रहा था कि प्यारी आँखोंके आँसुओंमेंसे मेरे मुँहकी ओर देखकर कुछ हँसी; बोली, "कहाँ जा रहे हो? फिर तो शायद दर्शन होंगे नहीं, एक भिक्षा देते जाओगे?"

मैं बोला, "दूँगा, कहो।"

प्यारी बोली, "भगवान न करें,—किन्तु, तुम्हारी जीवन-यात्रा जिस ढँगकी है उससे,—अच्छा, जहाँ भी रहो, ऐसे समयमें खबर दोगे? शरमाओगे तो नहीं?"

"नहीं, शरमाऊँगा नहीं,—खबर ज़रूर दूँगा", इतना कहकर धीरे-धीरे मैं गाड़ीमें जा बैठा। प्यारी पीछे-पीछे आई और उसने अपने आँचलमें मेरे पैरोंकी धूल ले ली।

"अजी सुनते हो?" मैंने मुँह उठाकर देखा कि वह अपने काँपते हुए होठोंको प्राणपणसे काबूमें रखकर कहनेकी कोशिश कर रही है। दोनोंकी नज़र एक होते ही फिर उसकी आँखोंसे झर-झर पानी झर पड़ा। वह अस्पष्ट रुँधे हुए कण्ठसे धीरेसे बोली, "न जाओ इतनी दूर तो?—रहने दो, मत जाओ—"

चुपकेसे मैंने अपनी नज़र उस ओरसे फिरा ली। गाड़ीवानने गाड़ी हाँक दी। चाबुक और चार चकोंके सम्मिलित सपासप और घर-घर शब्दसे शाम-का समय मुखरित हो उठा। किन्तु, इस सबको दबाकर केवल एक रुँधे हुए कण्ठका दबा हुआ रुदन ही मेरे कानोंमें गूँजने लगा।

३

पाँच छः दिन बाद मैं एक दिन भोरके समय, सिर्फ एक लोहेका ट्रंक और एक पतला-सा बिस्तर लेकर कलकत्तेके कोयला-घाटपर जा पहुँचा। गाड़ीसे उतरते न उतरते खाकी कुरती पहिने हुए एक कुलीने दोनों चीजोंको झपट लिया, उन्हें लेकर पलक-भरमें न जाने वह कहाँ अन्तर्धान हो गया और जब तक खोजते-खोजते दुश्चिन्ताके मारे मेरी आँखोंमें आँसू न आ गये तबतक उसका कोई पता ही नहीं चला।

गाड़ीपरसे आते-आते ही मैंने देखा था कि जेटी* और बड़े रास्तेके बीचकी भूमि नाना रंगके पदार्थोंसे लदी हुई है,—लाल, काले, भूरे, गेरुए। ——थोड़ा-सा कुहरा भी छाया हुआ था। ऐसा मालूम हुआ कि बछड़ोंका एक झुण्ड शायद चालान किये जानेके लिए बँधा हुआ है। निकट आकर ध्यानसे देखा तो मालूम हुआ कि चालान तो अवश्य होगा; किन्तु, बछड़ोंका नहीं,—मनुष्योंका। वे लोग बड़ी-बड़ी-सी गठरियाँ लिये, स्त्री-पुत्रोंके हाथ पकड़, सारी रात इसलिए इसी तरह ओसमें पड़े रहे हैं कि सुबह तड़के ही सबसे पहले जहाजमें घुसकर एक अच्छी-सी जगहपर कब्जा कर लेंगे। अतएव, किसके लिए संभव था कि पीछेसे आकर इन्हें पार करके जेटीके द्वार तक पहुँच सके? थोड़ी ही देर बाद यह दल जब जागकर खड़ा हो गया तब मैंने देखा कि काबुलके उत्तरसे कन्याकुमारीके अंत तकका कोई भी प्रदेश अपना प्रतिनिधि इस कोयला-घाटपर भेजना नहीं भूला है।

सभी हैं। काली-काली गंजियाँ पहिने हुए चीनियोंका दल भी बाद नहीं गया है। मैं भी तो डेकका (जिससे नीच और कोई दर्जा नहीं उसका) यात्री था; इसलिए, लोगोंको परास्त करके अपने बैठनेके लिए एक जगह मुझे भी प्राप्त करनी थी। किन्तु इसका खयाल करते ही मेरा सारा शरीर बरफ़-सा ठण्डा हो गया। फिर भी, जब जाना ही है और जहाजको छोड़कर और कोई जानेका रास्ता नहीं है, तब जैसे भी हो इन्हीं लोगोंका अनुकरण करना कर्त्तव्य है,——ऐसा विचार कर मैं अपने मनको जितना ही साहस देने लगा मानो उतना ही वह हिम्मत हारने लगा। जहाज कब आकर किनारेसे लगेगा सो जहाज ही जाने। एकाएक आँख उठाकर देखा, इस बीचमें ही ये चौदह-

*जहाँ जहाज ठहरते हैं वह स्थान।

पन्द्रह सौ लोग भेड़ोंके झुण्डकी तरह कतारें बाँधकर खड़े हो गये हैं। एक हिन्दुस्तानी आदमीसे मैंने पूछा, "भैया, सब लोग अच्छी तरहसे तो बैठे थे,—अब एकाएक कतार बाँधकर क्यों खड़े हो गये ?"

वह बोला, "डगदरी होगी।"

"डगदरी क्या चीज़ होती है, भाई ?"

उस आदमीने पीछेसे आये हुए एक धक्केको सम्हालते हुए कुछ झुँझलाहटसे कहा, "अरे पिलेगका डगदरी।"

बातको समझना और भी कठिन हो गया। पर, समझूँ चाहे न समझूँ—इतने आदमियोंके लिए जो जरूरी है वह मेरे लिए भी होगी। किन्तु, किस कौशलसे अपने आपको इस झुण्डमें घुसेड़ दूँ, यह एक समस्या ही सामने आकर खड़ी हो गई। कहींसे घुसनेके लिए थोड़ी-सी सँधर है या नहीं, यह खोजते-खोजते देखा कि कुछ दूरपर खिदिरपुरके कितने ही मुसलमान संकुचित भावसे खड़े हुए हैं। यह मैंने स्वदेश-विदेश सभी जगह देखा है कि जो काम लज्जित होने जैसा है, उसमें बंगाली लोग अवश्य लज्जित होते हैं। वे भारतकी अन्यान्य जातियोंके समान बिना संकोचके धक्का-मुक्की मारा-मारी नहीं कर सकते। इस तरह खड़े होनेमें जो एक तरहकी हीनता है, उसकी शरमके मारे मानो ये सब अपना सिर नीचा कर लेते हैं। ये लोग रंगूनमें दर्जीका काम करते हैं और अनेक दफे आये-गये हैं। पूछनेपर उन्होंने बताया कि यह सब सावधानी, कहीं यहाँसे बर्म्मामें प्लेग न चली जाय, इसलिए है। डाक्टर परीक्षा करके पास कर दे तभी जहाजपर चढ़ा जा सकता है। अर्थात्, रंगून जानेके लिए जो लोग तैयार हुए हैं, इसकी पहले ही जाँच हो जाना चाहिए कि वे प्लेगके रोगी हैं या नहीं। अंग्रेजी राज्यमें डाक्टरोंका प्रबल प्रताप है। सुना है कसाईखानेके यात्रियोंको भी अन्दर जाकर जिवह होनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए इन लोगोंका मुँह ताकना पड़ता है! किन्तु, परिस्थितिकी दृष्टिसे रंगूनके यात्रियोंके साथ उनकी जो इतनी अधिक समानता है सो उस समय किसने सोची थी!

क्रमशः पिलेगकी डगदरी निकट आ पहुँची। पियादे-सहित डाक्टर साहब दिखाई दिये। उस कतारबन्दीकी अवस्थामें गर्दन टेढ़ी करके देखनेका मौक़ा तो नहीं था; फिर भी, आगे-खड़े हुए साथियोंके प्रति किया गया परीक्षा-पद्धतिका जितना भी प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ, उससे मेरी चिन्ताकी सीमा नहीं

रही। कायर बंगालियोंको छोड़कर ऐसा वहाँ कोई नहीं था जो देहके निम्न भागके उघाड़े जानेपर भयभीत हो, परंतु, अपने सामनेके साहसी वीर पुरुषोंको भी परीक्षाके समय बार बार चौंक उठते देखकर मैं बुरी तरह शंकित हो उठा। सभी जानते हैं कि प्लेगकी बीमारीमें शरीरका स्थान-विशेष सूज आया करता है। डाक्टर साहब जिस प्रकार लीला-मात्रसे और निर्विकार चित्तसे उस सन्देह-मूलक स्थानमें हाथ डालकर खोजिश टटोलने लगे, उससे काठके पुतलोंको भी आपत्ति होती; किन्तु, भारतवासियोंकी सभ्यता सनातन है, इसलिए, जैसे भी हो, एक दफे चौंककर वे स्थिर हो जाते थे। अगर और कोई जाति होती तो डाक्टरका हाथ मरोड़े-तोड़े बिना न रहती। सो, चाहे जो हो, 'पास' होना जब अवश्य कर्तव्य था, तो फिर, और उपाय ही क्या हो सकता था? यथासमय आँखें मींचकर, सारा अंग संकुचित कर,—एक तरहसे हताश ही होकर, डाक्टरके हाथ आत्म-समर्पण कर दिया और 'पास' भी हो गया।

इसके बाद जहाजपर चढ़नेकी पारी थी। किन्तु, डेक-पैसिंजरोंकी यह अधिरोहण-क्रिया किस तरह निष्पन्न होती है—बाहरके लोगोंके लिए उसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है। फिर भी, कल कारखानोंमें जिन्होंने दाँतेवाले चक्रोंकी प्रक्रिया देखी है, उनके लिए इसका समझाना कुछ कुछ संभव हो सकता है। वे जिस तरह आगेके खिंचाव और पीछेके धक्केसे अग्रसर होकर चलते हैं, उसी तरह हमारी यह काबुली-पंजाबी-मारवाड़ी-मद्रासी-मराठा-बंगाली-चीनी-उड़ियागठित सुविपुल सेना केवल पारस्परिक आकर्षण-विकर्षणके वेगसे नीचे ज़मीनसे जहाजके डेकपर बिना जाने ही चढ़ गई और वह गति वहाँपर भी नहीं रुकी। सामनेकी ओर देखा, एक गड्ढेके मुँहपर सीढ़ी लगी हुई है। जहाजके गर्भ-देशमें उतरनेका यही रास्ता था। नालेके अवरुद्ध मुखको खोल देने पर वृष्टिका संचित जल जिस तरह तीव्र वेगसे नीचे गिरता है, ठीक उसी तरह यह दल भी स्थान अधिकृत करनेके लिए जीने-मरनेके ज्ञानसे शून्य होकर नीचे उतरने लगा।

मुझे जहाँ तक याद आता है, मेरी नीचे जानेकी इच्छा नहीं थी। पैरोंसे चलकर भी नहीं उतरा। क्षण भरके लिए मैं बेहोश हो गया था, इसलिए, मेरे इस कथनमें यदि कोई संदेह प्रकट करे, तो शायद कसम खाकर मैं इसे अस्वीकार भी न कर सकूँगा। होशमें आने पर देखा कि गर्भ-गृहके मध्य बहुत

दूरपर एक कोनेमें मैं अकेला खड़ा हूँ। पैरोंकी ओर निगाह दौड़ाई, तो देखता हूँ कि इसी बीचमें, जादू के खेलकी तरह पल-भरमें ही कम्बल बिछाकर और बाक्स-पिटारों आदिसे घेरकर हर किसीने अपने अपने लिए निरापद-स्थान बना लिया है और शान्तिसे बैठकर अपने पड़ोसीका परिचय प्राप्त करना शुरू कर दिया है। इतनी देरके बाद, अब कहीं मेरे उस नम्बरवाले कुलीने आकर दर्शन दिया और कहा, "ट्रंक और बिस्तर ऊपर रख आया हूँ, यदि आप कहें तो नीचे ले आऊं।"

मैंने कहा, "नहीं, बल्कि, किसी तरह यहाँसे उद्धार करके मुझे ही ऊपर ले चल।" क्योंकि, वहाँ इतना-सा स्थान भी मुझे कहीं खाली दिखाई नहीं दिया कि दूसरोंके बिस्तर रौंदे बगैर, तथा उनके साथ हाथापाईकी सम्भावना उत्पन्न किये बगैर, मैं कहीं अपना कदम रख सकूं। वर्षा होनेपर ऊपर पानीमें भीग जाऊं यह अच्छा, किन्तु, यहां एक क्षण-भर भी ठहरना ठीक नहीं। अधिक पैसोंके लोभसे कुली, काफी कोशिश और बहस-मुबाहिसेके बाद, कम्बलों और सतरंजियोंके किनारोंको उलटता-पुलटता हुआ मुझे अपने साथ लिये हुए ऊपर आया और मेरा माल-असबाब दिखाकर बख्शिश लेकर चलता बना। यहाँका भी वही हाल,--बिस्तर बिछानेके लिए, निरुपाय हो, अपने ट्रंकके ऊपर ही बैठनेका इन्तजाम करके मैं एकाग्र चित्तसे माता भागीरथीके दोनों किनारोंकी महिमाका निरीक्षण करने लगा।

स्टीमरने तब तक चलना आरंभ कर दिया था। बहुत देरसे प्यास लग रही थी। इन दो घण्टोंके भीतर जो तूफान सिर परसे गुजर गया उससे जिनकी छाती शुष्क न हो जाय, ऐसे कठिन-हृदय संसारमें बहुत थोड़े ही लोग हैं। किन्तु, आफत यह हुई कि साथमें न तो गिलास था और न लोटा। साथके मुसाफ़िरोंमें यदि कहीं कोई बंगाली हो तो कुछ उपाय हो सकता है, यह सोचकर मैं फिर बाहर निकला। नीचे उतरनेके उस गड्ढेके निकट पहुँचते ही एक तरहका विकट कोलाहल सुन पड़ा। मेरी जानकारी इतनी विस्तृत नहीं है कि उस कोलाहलकी उपयुक्त तुलना कर सकूँ। गोशालामें आग लगा देनेसे एक प्रकारका कोलाहल होनेकी बात कही जाती है जरूर, किन्तु, इसके अनुरूप कोलाहल होनेके लिए जितनी बड़ी गोशालाकी आवश्यकता है, उतनी बड़ी गोशाला महाभारतके युगमें विराट् राजाके यहाँ यदि रही हो तो जुदी बात है,

किन्तु, इस कलिकालमें किसीके यहाँ हो सकती है, इसकी तो कल्पना करना भी कठिन है।

भयपूर्ण हृदयसे दो-एक सीढ़ियाँ उतरकर मैंने झाँका तो देखा कि यात्रियोंने अपना अपना 'नेशनल' (=जातीय) संगीत शुरू कर दिया है। काबुलसे लेकर ब्रह्मपुत्र और कन्याकुमारीसे लेकर चीनकी सीमापर्यन्त जितने भी तरहके सुर-ब्रह्म हैं, जहाजके इस बन्द गर्भके भीतर वाद्ययन्त्रोंके सहयोगसे, उनका ही समवेत रूपसे अनुशीलन हो रहा है! ऐसे महासंगीतको सुननेका सौभाग्य कदाचित् ही संघटित होता है; और संगीत ही ललित कलाओंमें सर्वश्रेष्ठ है, यह बात उस जगह खड़े-खड़े ही मैंने सम्मानके साथ स्वीकार कर ली। किन्तु, सबसे अधिक विस्मयकी बात यह थी कि वहाँ इतने अधिक संगीत-विशारद एक साथ आ जुटे किस तरह?

मैं एकाएक यह स्थिर नहीं कर सका कि मेरा नीचे उतरना उचित है या नहीं। सुना है, अँग्रेजोंके महाकवि शेक्सपियरने कहा है कि संगीतके द्वारा जो मनुष्य मुग्ध नहीं होता वह खून तक कर सकता है। किन्तु केवल मिनट-भर सुन लेनेसे ही जो मनुष्यके खूनको जमा दे ऐसे संगीतकी खबर शायद उन्हें भी नहीं थी। जहाजका गर्भ-गृह वीणापाणिका पीठ-स्थान है या नहीं, सो तो नहीं जानता; परन्तु, यदि न होता तो यह कौन सोच सकता कि काबुली लोग भी गाना गाते हैं!

एक तरफ यह अद्भुत काण्ड हो रहा था और मैं मुँह बाये देख रहा था कि एकाएक देखा,—पासमें ही खड़ा हुआ एक व्यक्ति प्राणपणसे हाथ हिला-हिलाकर मेरी नजर अपनी ओर आकर्षित करनेकी कोशिश कर रहा है। बहुत कष्टसे अनेक लोगोंकी लाल लाल आँखें सिरपर रखकर मैं उस मनुष्यके पास जा उपस्थित हुआ। उसने ब्राह्मण समझकर मुझे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपना परिचय दिया कि मैं रंगूनका विख्यात नन्द मिस्त्री हूँ। पास ही एक विगत-यौवना स्थूल स्त्री बैठी हुई एकटक मेरी ओर देख रही थी। मैं उसके मुँहकी ओर देखकर स्तंभित हो गया। मनुष्यकी इतनी बड़ी बड़ी फुटबाल-सी आँखें और इतनी मोटी जुड़ी हुई भौहें पहले कभी न देखी थीं।

नन्द मिस्त्री उसका परिचय देते हुए बोला, "बाबूजी यह मेरी घरवा—"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि वह फंकार कर गर्ज उठी, "घरवाली!—

ये मेरे सात भाँवरोंके स्वामी कहते हैं घरवाली ! खबरदार, कहे देती हूँ मिस्त्री, जिस-तिसके आगे झूठ बोलकर मुझे बदनाम मत किया करो !—हाँ—!"

मैं तो विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया।

नन्द मिस्त्री कुछ अप्रतिभ-सा होकर बोला, "आहा, नाराज़ क्यों होती हो टगर ? घरवाली और कहते किसे हैं ? बीस साल--"

टगर विकट क्रोधसे बोल उठी, "बीस साल हो गये तो क्या हुआ ! फूटे करम ! जात-वैष्णवकी लड़की होकर मैं कहलाऊँ केवटकी घरवाली ! कैसे, किस तरह ? बीस बरससे तुम्हारे घर पर हूँ जरूर, किन्तु एक दिन भी तुम्हें चौकेमें घुसने दिया है ? यह बात कोई भी नहीं कह सकता। टगर वैष्णवी मर जायगी, पर अपनी जाति नहीं खोएगी, जानते हो ?" इतना कहकर वह जात-वैष्णवकी लड़की अपनी जातिके गर्वसे मेरे मुँहकी ओर देखती हुई अपनी दोनों फुटबालकी-सी आँखें घुमाने लगी।

नन्द मिस्त्री लज्जित होकर बारंबार कहने लगा, "देखा बाबूजी, देखा ? अभी तक इसे जातिका गर्व है ! देखा आपने ! मैं हूँ, इसीसे सह लेता हूँ, और कोई होता—" बीस बरसकी उस घरवालीकी ओर देखकर वह बेचारा अपनी बात पूरी भी न कर सका।

मैं और कुछ न बोला और उससे एक गिलास लेकर वहाँसे चल दिया। ऊपर पहुँचकर उस वैष्णवीकी बातें याद करके मेरी हँसी रोकी न रुकी। किन्तु, क्षण-भर बाद ही सोचा, यह तो एक सामान्य अशिक्षिता स्त्री ठहरी; पर, गाँवोंमें और शहरोंमें भी क्या ऐसे अनेक शिक्षित पुरुष नहीं हैं, जिनके द्वारा ऐसे ही हास्य कार्य अब भी प्रतिदिन हुआ करते हैं, और जो पापके सारे अन्यायोंसे केवल खाना-छूना बचाकर ही परित्राण पा लेते हैं। तब, यह हो सकता है कि इस देशके पुरुषोंका हाल देखकर तो हँसी नहीं आती, आती है सिर्फ़ औरतोंको देखकर !

आज शामसे ही आकाशमें थोड़े थोड़े बादल जमा हो रहे थे। रातको एक बजेके बाद मामूली-सा पानी और हवा भी चली जिससे कुछ देरके लिए जहाज खूब हिला-डुला। दूसरे दिन सुबहसे ही वह शिष्ट शान्त भावसे चलने लगा। जिसे समुद्री बीमारी कहते हैं, मेरा वह उपसर्ग तो शायद छुटपनमें ही नावके ऊपर कट गया था, इसलिए वमन करनेके संकटको मैं एकबारगीही पार कर गया; किन्तु, सपरिवार नन्द मिस्त्रीका क्या हाल हुआ,—किस तरह

रात कटी, यह जाननेके लिए मैं नीचे जा पहुँचा। कलके गायकोंमेंसे अधिकांश उस समय तक भी औंधे पड़े हुए थे। मैंने समझ लिया कि रात्रिके उत्पातके कारण ही ये लोग अभी तक महासंगीतके लिए तैयार नहीं हो सके हैं। नन्द मिस्त्री और उसकी बीस बरसकी घरवाली दोनों गंभीर भावसे बैठे हुए थे। मुझे देख उन्होंने प्रणाम किया। उनके चेहरेके भावसे जान पड़ा कि कुछ देर पहले ही दोनोंमें कुछ कलह-सी ज़रूर हो चुकी है। मैंने पूछा, "रातको कैसा हाल रहा मिस्त्रीजी ?"

नन्द बोला, "अच्छा रहा।"

उसकी घरवाली गरज उठी, "खाक रहा अच्छा! मैयारी मैया, कैसा अद्भुत काण्ड हो गया!"

कुछ उद्विग्न होकर मैंने पूछा, "कैसा काण्ड ?"

नन्द मिस्त्रीने मेरे मुँहकी ओर देखा, फिर जम्हाई ली। चुटकियाँ बजाईं और अन्तमें कहा, "काण्ड ऐसा कुछ नहीं था बाबूजी। कलकत्तेकी गलियोंके मोड़ोंपर साढ़े-बत्तीस तरहका चबेना बेचते हुए आपने किसीको देखा है? यदि देखा हो तो हम लोगोंकी अवस्थाको आप ठीक तौरसे समझ सकेंगे। वह जिस तरह अँगूठेके नीचे दो-तीन अँगुलियोंकी चोट मारकर भुने हुए चावल, दाल, मटर, मसूर, चने, सेमके बीज आदि सबको एकाकार कर देता है, देवताकी कृपासे हम सब भी ठीक उसी तरह गड्डमगड्ड हो गये थे, अभी ही कुछ देर हुई सब कोई अपने-अपने कपड़े पहिचानकर फिर अपनी अपनी जगह आकर बैठे हैं।" इसके बाद वह टगरकी ओर देखकर बोला, "बाबूजी, भाग्यसे असल वैष्णवकी जात नहीं जाती, नहीं तो मेरी टगर—"

टगर भड़के हुए भालूकी तरह गरज उठी, "अब फिर वही!"

"नहीं, तो जाने दो," कहकर नन्द उदासीनतासे दूसरी तरफको देखता हुआ चुप हो गया।

एक काबुली दम्पति, जो कि मलिनताके अवतार थे, सिरसे पैरतक पृथ्वीकी सारी गंदगी लादे हुए अत्यन्त तृप्तिके साथ रोटी खा रहे थे। क्रुद्ध टगर उन हतभागोंके प्रति अपने बड़े-बड़े चक्षुओंसे एक टक होकर अग्नि-वर्षण करने लगी। नन्दने अपनी घरवालीको उद्देश्य करके प्रश्न किया, "तो फिर आज खाना-पीना कुछ न होगा, क्यों ?"

घरवालीने कहा, "मौत और किसे कहते हैं? होगा कैसे, सुनूँ तो?"

मामला न समझ सकनेके कारण मैंने कहा, "अभी तो बड़ी सकार है, कुछ बेला चढ़ जानेपर—"

नन्द मेरे मुँहकी ओर देखकर बोला, "कलकत्तेसे एक हाँड़ीमें बढ़िया रस-गुल्ले लाया था बाबूजी, जहाजपर सवार होने तक कहता रहा, 'आओ टगर, कुछ खा लेवें, आत्माको कष्ट न दें,' परंतु नहीं,—'मैं रंगून ले जाऊँगी।' (टगरके प्रति)—ले, अब ले जा रंगून क्या ले जाती है ?"

टगरने, इस क्रुद्ध अभियोगका स्पष्ट प्रतिवाद न कर, क्षुब्ध अभिमानसे एक दफे मेरी ओर देखा और फिर वह उस हतभागे काबुलीको अपनी नज़रसे पहलेके समान ही दग्ध करने लगी।

मैंने धीरेसे पूछा, "क्या हुआ रसगुल्लोंका ?"

नन्द टगरको लक्ष्य करके कटाक्ष करता हुआ बोला, "उनका क्या हुआ सो नहीं कह सकता। वह देखो न फूटी हाँड़ी, और वह देखो बिछौनेमें गिरा हुआ रस।—इससे ज्यादह कुछ जानना चाहो तो पूछो उस हरामजादेसे।" इतना कहकर टगरकी दृष्टिका अनुसरण कर वह भी कठोर दृष्टिसे उनकी ओर ताकने लगा।

मैंने बड़ी मुश्किलसे हँसी रोकते हुए मुँह नीचा करके कहा, "तो जाने दो, साथमें चिवड़ा तो है !"

नन्द बोला, "उस ओरसे भी छुट्टी मिल गई है। बाबूजीको एक दफे दिखा तो दो, टगर !"

टगरने एक छोटी-सी पोटलीको पैरोंसे ठुकराते हुए कहा, "दिखा दो न तुम्हीं—"

नन्द बोला, "जो भी कहो बाबू, काबुली जात नमकहराम नहीं कही जा सकती। ये लोग जिस तरह रसगुल्ले खा जाते हैं, उसी तरह अपने काबुलदेश-की मोटी रोटियाँ भी तो बाँध देते हैं,—फेंकना नहीं टगर रख छोड़, तेरे ठाकुर-जीके भोगके काममें आ जायँगीं।"

नन्दके इस परिहाससे मैं ज़ोरसे हँस पड़ा, किन्तु दूसरे ही क्षण टगरके मुँहकी ओर देखकर डर गया। क्रोधके मारे उसका सारा मुँह काला हो गया। ऊँचे कण्ठसे वज्र-कर्कश शब्दोंमें जहाजके सब लोगोंको चौंकाकर वह चिल्ला उठी, "जात तक मत जाना भला मिस्त्री,—कहे देती हूँ, अच्छा न होगा, हाँ—"

उसकी चिल्लाहटसे जिन लोगोंने मुँह उठाकर उस ओर देखा, उनकी विस्मित दृष्टिके सामने, शरमके मारे, नन्दका मुँह ज़रा-सा रह गया। टगरको वह बखूबी जानता था। अपनी निरर्गल दिल्लगीके कारण पैदा हुए उसके क्रोधको किसी तरह शांत करनेमें ही कुशल थी। शरमिन्दा होकर वह चटसे बोल उठा, "सिरकी कसम टगर, गुस्सा मत हो, मै तो केवल मज़ाक कर रहा था!"

टगरने वह बात जसे सुनी ही नहीं। पुतलियाँ और भोंहें एक बार बाईं ओर और एक बार दाहिनी ओर घुमाकर और कण्ठके स्वरको और एक पर्दा ऊपर चढ़ाकर वह बोली, "मज़ाक कैसा! जातको लेकर भी क्या कोई मज़ाक किया जाता है! मुसलमानोंकी रोटियोंसे भोग लगाया जायगा? केवटके मुँहमें आग,—ज़रूरत हो, तो तू ही न रख छोड़,—बापको इनका पिण्डदान दे देना!"

डोरी छोड़े हुए धनुष्यकी तरह नन्द चटसे सीधा होकर खड़ा हो गया और उसने टगरका झोंटा पकड़ लिया, "हरामज़ादी, तू बाप तक जाती है।"

टगर कमरका कपड़ा सम्हालती हुई हाँफते-हाँफते बोली, और "हरामज़ादे, तू जात तक जायगा!" इतना कहकर कानोंतक मुँह फाड़कर उसने नन्दकी भुजाके एक हिस्सेमें काट खाया। मुहूर्त्त-भरमें ही नन्द मिस्त्री और टगर वैष्णवीका मल्ल-युद्ध गहरा हो उठा। देखते ही देखते सब लोग घेरकर खड़े हो गये। भीड़ हो गई। समुद्री बीमारीकी तकलीफ़को भूलकर सारे 'हिन्दुस्तानी' * ऊंचे कण्ठसे वाहवाही देने लगे, पंजाबी छिः छिः करने लगे, उड़िया ची ची करने लगे।—एक तरहसे पूरा लंका-काण्ड मच गया। मैं सन्नाटेमें आ गया और मेरा मुँह विवर्ण हो गया। इतनी मामूली-सी बातपर निर्लज्जताका ऐसा नंगा नाच हो सकता है, इसकी मैं कल्पना भी न कर सकता था। और वह भी एक बंगाली स्त्री-पुरुषके द्वारा जहाज-भरके लोगोंके सामने हो रहा है, यह देखकर तो मैं लज्जाके मारे जमीनमें गड़ा जाने लगा। पासमें ही एक जौनपुरी दरबान अत्यन्त संतोषके साथ तमाशा देख रहा था। मेरी ओर लक्ष्य करके बोला, "बाबूजी, बंगालिन तो बहुत अच्छी लड़नेवाली है! हटती ही नहीं।"

---

* हिन्दीभाषाभाषी, यू. पी. के लोग।

मैं उसकी ओर आँख उठाकर देख भी न सका, चुपचाप गर्दन नीची किये किसी तरह भीड़को चीरता हुआ ऊपर भाग गया ।

४

उस दिन फिर मेरा जी न चाहा कि नीचे जाऊं, इसलिए, नन्द और टगरके युद्धका अन्त किस तरह हुआ,—संधि-पत्रमें कौन-कौन-सी शर्तें निश्चित हुईं, सो मैं कुछ नहीं जान पाया । परन्तु, बादमें मैंने देखा कि शर्तें चाहे जो हों, विपत्तिके समय वह 'स्क्रैप आफ् पेपर,' (कागज़का रद्दी टुकड़ा) किसी काम नहीं आता । जब जिसे जरूरत होती है, खिलवाड़की तरह उसे फाड़ फेंकता है और दूसरेका व्यूह-भेद कर डालता है । बीस बरससे ये दोनों यही करते आये हैं तथा और भी बीस बरस तक ऐसा न करते रहेंगे, इसकी शपथ शायद स्वयं विधाता भी नहीं ले सकेंगे ।

सारे दिन तो आकाशमें बादलोंके टुकड़े यहाँसे वहाँ घूमते रहे; परन्तु, अब शामके लगभग एक गहरा काला बादल सारे क्षितिजको ढँककर धीरे धीरे सिर उठाकर, ऊपर आने लगा । मालूम हुआ, कि खलासियोंके मुँह और आँखोंपर मानो घबराहटकी छाया आ पड़ी है । उनके चलने-फिरनेमें भी मानो एक प्रकारके घबराहटके चिह्न नज़र आने लगे हैं जो इसके पहले नहीं थे।

एक बूढ़े-से खलासीको बुलाकर पूछा, " अजी चौधरी, आज रातको भी क्या कलहीके समान आँधी आवेगी ?"

विनयसे चौधरीजी वशमें हो गये । खड़े होकर बोले, " मालिक, नीचे चले जाइए; कप्तानने कहा है, साइक्लोन (=बवण्डर) उठ सकता है ।"

पन्द्रह मिनट बाद ही देखा कि उसका कथन निर्मूल नहीं है । ऊपर जितने भी यात्री थे उन सबको खलासी लोग एक तरहसे ज़बरन 'होल्डर' में उतारने लगे। दो चार लोगोंके आपत्ति करनेपर सेकण्ड आफ़िसरने खुद आकर उन्हें धक्के मारकर उठा दिया और उनके बिस्तर वग़ैरह लातोंसे हटाना शुरू कर दिया । मेरा ट्रंक, बिस्तर आदि तो खलासी लोग झटपट नीचे उठा ले गये; किन्तु, मैं खुद एक तरफ खिसक गया । मैंने सुना कि सबको,—अर्थात् जो हतभागे दस रुपयेसे अधिक किराया नहीं दे सकते थे उन्हें,—उस जहाजके

गर्भ-गृहमें भरके उसका मुँह बंद कर दिया जायगा। उनकी खैरियत के लिए, यही एक उपाय था।

किन्तु, मुझे खुद अपने लिए खैरियतकी यह व्यवस्था किसी तरह पसंद नहीं आई। इसके पहले साइक्लोन नामक वस्तुको समुद्रमें तो क्या, जमीनपर भी नहीं देखा था। कैसा इसका उपद्रव होता है, कैसा इसका स्वरूप है और अमंगल करनेकी कितनी इसकी शक्ति है, मै बिलकुल नहीं जानता था। मन ही मन सोचने लगा कि मेरे भाग्यसे यदि ऐसी वस्तुका आविर्भाव होना सन्निकट ही है, तो फिर उसे बगैर अच्छी तरह देखे नहीं छोड़ूँगा। भाग्यमें जो बदा हो सो हो। और तूफानमें यदि जहाज डूबना ही है, तो, इस तरह प्लेगके चूहे की तरह पिंजरेमें क़ैद होकर और सिर पटक-पटककर खारी पानीमें क्यों मरूँ? इसकी अपेक्षा तो जब तक बने, हाथ-पाँव हिलाकर, लहरोंके हिंडोलेपर झूलते-उतराते हुए एक गोता लगाकर पातालके राजमहलका अतिथि होना अच्छा। किंतु, यह उस समय मुझे मालूम न था कि राजाका जहाज आगे-पीछे लाखों-करोड़ों हिंस्र अनुचरोंके बगैर काले पानीमें एक डग भी नहीं चलता और उन्हें लोगोंका कलेवा कर डालनेमें घन्टी-भरकी भी देर नहीं लगती।

बहुत समयसे थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो रही थी। शामके लगभग हवा और वृष्टि दोनोंका ही वेग बढ़ गया। यह हालत हो गई कि भाग निकलनेकी भी कोई जुगत न रही। जहाँ भी मिले सुविधानुसार एक आश्रय-स्थान खोजे बगैर काम नहीं चल सकता। शामके अँधेरेमें जब मै अपने स्थानपर वापिस आया तब ऊपर का डेक निर्जन हो गया था। मस्तूलके पास उचककर देखा कि ठीक सामने ही बूढ़ा कप्तान हाथमें दूरबीन लिये ब्रिजके ऊपर यहाँसे वहाँ दौड़ रहा है। इस डरसे कि एकाएक उसकी शुभ दृष्टिमें पड़कर फिरसे, इतने कष्टके बाद भी, दुबारा उसी गड़हेमें न घुसना पड़े, एक ऐसी जगह खोजने लगा जहाँ सुभीतेसे बैठ सकूँ। खोजते खोजते आखिर एक जगह मिल गई जिसकी कि मैने पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक किनारे बहुत-सी भेड़ों, मुर्गियों और बत्तखोंके पिंजड़े एकके ऊपर एक गँजे हुए थे। उछलकर मैं उन्हींके ऊपर बैठ गया। जान पड़ा, ऐसी निरापद जगह शायद जहाज भरमें और कहीं नहीं है। किन्तु, तब भी बहुत-सी बातें जानना बाकी थीं।

वृष्टि, हवा अन्धकार और जहाजका झूलना,—ये सभी धीरे धीरे अधिका-

धिक बढ़ने लगे। समुद्रकी लहरोंका आकार देखकर मैंने मन ही मन सोचा, यही है शायद वह साइक्लोन; किंतु, वह सागरके समीप सिर्फ़ गौके खुरके गढ़ेके समान ही था, इस बातको अच्छी तरह हृदयंगम करनेके लिए मुझे और भी थोड़ी देर ठहरना पड़ा।

एकाएक छातीके भीतर तक कँपकँपी पैदा करता हुआ जहाजका भोंपू बज उठा। ऊपरकी ओर ताका तो जान पड़ा, मानो किसी मंत्रके बलसे आकाश का चेहरा ही बदल गया है। वे बादल अब नहीं रहे,—मालूम हुआ कि सब तरफसे छिन्न-विछिन्न होकर जैसे संपूर्ण आकाश हलका होकर कहीं ऊपरकी ओर उड़ा जा रहा है। दूसरे ही क्षण समुद्रके एक प्रान्तसे एक ऐसा विकट शब्द तेजीसे आकर कानोंमें पैठ गया कि मैं नहीं जानता उसकी किसके साथ तुलना करूँ।

लड़कपनमें अँधेरी रातोंमें दादीकी छातीसे लगकर एक कहानी सुना करता था। किसी राजपुत्रने डुबकी लगाकर तालाबके भीतरसे एक चाँदीकी डिबिया निकाली थी और उसमें बन्द सात-सौ राक्षसियोंके प्राणरूप एक सोनेके भौंरेको चुटकीसे मसलकर मार डाला था। फिर वे सात-सौ राक्षसियाँ मृत्यु-यंत्रणासे चीखती चिल्लाती हुई सारी पृथ्वीको पैरोंके बोझसे कुचलतीं चूर्ण-विचूर्ण करतीं दौड़ आई थीं। वैसा ही यह भी कहीं कोई विप्लव-सा हो रहा है, ऐसा जान पड़ा; परंतु, इस दफ़े सात सौ-करोड़ राक्षसियाँ हैं,—वे उन्मत्त भावसे कोलाहल करती हुई इसी ओर दौड़ी आ रही हैं। आ भी पड़ीं,—राक्षसियाँ नहीं, परंतु, तूफानी हवाएँ। तब, मैंने सोचा कि इनकी अपेक्षा तो उन राक्षसियोंका आना ही कहीं अच्छा था।

इस दुर्जय वायुकी शक्तिका वर्णन करना तो बहुत दूरकी बात है, समग्र चेतनासे अनुभव करना भी मानों मनुष्यके सामर्थ्यके बाहर है। संपूर्ण ज्ञान-बुद्धिको लुप्त करके केवल एक ही धारणा मेरे मनके भीतर अस्पष्ट और निस्संदिग्ध रूपसे जागती रह गई, कि, दुनियाकी मियाद एकबारगी खतम होनेमें अब और कितनी-सी देर है! पासमें ही जो एक लोहेका खूँटा था, गलेकी चादरसे मैंने अपने आपको उसीसे बाँध रक्खा था। प्रत्येक क्षण मेरे मनमें यही ख्याल उठने लगा कि बस मुझे यह हवा इस दफे ही खूँटेसे छुड़ा देगी और उड़ा ले जाकर समुद्रमें जा पटकेगी।

एकाएक जान पड़ा कि काला पानी मानो भीतरके धक्कोंसे घरघराता हुआ

क्रम-क्रमसे जहाजके ऊपर चढ़ रहा है। दूरको आँख उठाई तो उस तरफसे दृष्टिको पुनः वापस न लौटा सका। एक दफे जान पड़ा, वह तो कोई पड़ाव है, किन्तु दूसरे ही क्षण जब भ्रम भंग हुआ तब हाथ जोड़कर मैंने कहा, "भगवान्, जैसे तुमने ये दोनों नेत्र दिये थे, वैसे ही आज इन्हें सार्थक भी कर दिया! इतने दिनों तक तो संसारमें सर्वत्र ही आँखें खोले घूमता फिरा हूँ। किन्तु, तुम्हारी इस सृष्टिकी तुलना तो कहीं भी नहीं देखी थी! जहाँ तक दृष्टि पहुँचती हैं एक अचिन्तनीय विराट्काय महातरङ्ग सिरपर चाँदी-सा शुभ्र किरीट धारण किये तेज चालसे आगे बढ़ती हुई आ रही है। जगतमें और भी क्या कोई इतना बड़ा विस्मय है?"

समुद्रमें न जाने कितने लोग आया-जाया करते हैं; मैं खुद भी तो कितनी ही दफे इस रास्ते गया-आया हूँ; किन्तु, ऐसा दृश्य तो पहले कभी कहीं नहीं देखा था। इसके सिवाय, जिस मनुष्यने आँखों नहीं देखा, उसे समझाकर यह बताना कल्पनाके बापके लिए भी संभव नहीं कि पानीकी लहर किसी तरह इतनी बड़ी हो सकती है!

मन ही मन बोला, हे तरंग-सम्राट्! तुम्हारी टक्करसे हमारा जो कुछ होगा, उसे तो हम जानते ही हैं, किन्तु, अब भी तो तुम्हें यहाँ तक आ पहुँचनेमें आखिर आध मिनटकी देर है, तब कमसे कम उतने समय तक तो मैं अच्छी तरह जी-भरकर तुम्हारे कलेवरको देख लूँ।

यह भाव किसी वस्तुकी सुविपुल ऊँचाई और उससे भी अधिक विस्तार देखकर ही इस तरह मनमें उत्पन्न नहीं हुआ करता; क्योंकि, यदि ऐसा हो तो इसके लिए हिमालयका कोई भी अंग-प्रत्यंग यथेष्ट है। किन्तु जो यह विराट् व्यापार सजीवके समान दौड़ा आ रहा है, उसकी अपरिमेय शक्तिकी अनुभूतिने ही मुझे अभिभूत कर डाला।

किन्तु, समुद्र-जलके टकरानेसे जो एक तरहकी ज्वाला-सी बार-बार चमक उठती है वह ज्वाला विचित्र रेखाओंमें यदि इसके सिरपर न खेलती होती, तो गंभीर कृष्ण जल-राशिकी विपुलताको मैं इस अंधकारमें शायद उस तरह न देख पाता। इस समय जितनी भी दूर तक मेरी दृष्टि जाती है उतनी ही दूर तक इस आलोक-मालाने मानो छोटे छोटे प्रदीपोंको जलाकर इस भयंकर सौन्दर्यका चेहरा मेरी आँखोंके सामने खोल दिया है।

जहाजका भोंपू असीम वायु-वेगसे थरथर काँपता हुआ लगातार बजने लगा।

और भयार्त्त खलासियोंका दल अल्लाहके कानों तक अपना आकुल आवेदन पहुँचा देनेके लिए गला फाड़ फाड़कर एक साथ चिल्लाने लगा।

जिसके शुभागमनके निमित्त इतना भय, इतनी चीख़-पुकार,--इतना उद्‌योग-आयोजन हो रहा था, वह महातरंग आख़िर आ पहुँची। एक प्रकाण्ड प्रकारकी उलट-पलटके बीच हरवल्लभके समान मुझे भी पहले जान पड़ा कि निश्चयसे ही हम डूब गये हैं; इसलिए, दुर्गाका नाम जपनेसे अब और क्या हो सकता है! आसपास, ऊपर-नीचे चारों ओर काला जल ही जल है! जहाजसमेत सब लोग पातालके राजमहलमें निमंत्रण खाने जा रहे हैं, इसमें अब कोई संदेह नहीं रहा। इस समय चिन्ता केवल यही है कि खाना-पीना आदि वहाँ न जाने किस किस्मका होगा।

किन्तु, क़रीब मिनट-भर बाद ही दिखाई दिया,--नहीं, डूबे नहीं हैं, जहाजसमेत हम सब केवल जलके ऊपर उतरा रहे हैं। इसके सिवाय लहरके ऊपर लहर आना भी ख़तम नहीं हुआ है, इसलिए हम लोगोंका हिंडोला झूलना भी समाप्त नहीं हुआ है। इतनी देरके बाद अब पता लगा कि क्यों कप्तान-साहबने लोगोंको जानवरोंके समान गढ़ेमें डालकर ताला लगवा दिया है। डेकके ऊपरसे बीच-बीचमें मानो जलकी धारा बह जाने लगी। मेरे नीचेकी बत्तखें और मुर्गियाँ कितनी ही दफे फड़फड़ाकर और भेड़ें कई बार 'मैंमैं' करके भव-लीला समाप्त कर गईं। सिर्फ़ मैं ही उनके ऊपर आश्रय ग्रहण किये, लोहेके खूँटेको जोरसे पकड़े हुए, अपनी भव-लीला सुरक्षित बनाये रहा।

किन्तु, इसी समय एक और प्रकारकी आफत आ जुटी। केवल जलके छींटे ही मेरे शरीरमें सुईकी तरह छिद रहे हों सो बात नहीं,--समस्त कपड़े और धोतीके भीग जानेसे और प्रचण्ड वायुसे इतनी ठंड लगने लगी कि दाँत कटकट बजने लगे। ख़याल आया, कि हाल जलमें डूबनेसे तो किसी तरह बच भी सकता हूँ, किन्तु, निमोनियाके हाथसे किस तरह परित्राण पाऊँगा? और, यह तो मैंने निःसंशय अनुभव किया कि इसी तरह यदि और भी कुछ देर बैठा रहूँगा तो परित्राण पाना सचमुच ही असंभव हो जायगा। इसलिए, जिस तरह भी हो, इस स्थानका परित्याग करके किसी ऐसी जगह आश्रय लेना चाहिए जहाँ कि जलके छींटे बर्छीके फलकी तरह शरीरमें न चुभें। एक बार सोचा कि भेड़ोंके पिंजरेमें घुस जाऊँ तो कैसा हो! किन्तु, वह भी कितना सुरक्षित है?

उसके भीतर यदि खारे जलकी धारा प्रवेश कर जाय तो ठीक 'मे-मे' करके न सही पर 'माँ-माँ' करके अन्तमें अवश्य ही इह-लीला समाप्त करनी पड़ेगी।

सिर्फ़ एक उपाय है। जहाज जब पार्श्व-परिवर्तन करता है तब भागने का कुछ मौक़ा मिल जाता है; इसलिए, उस समय यदि कहीं जाकर घुस सकूँ तो शायद जान बच जाय। जो सोचा, वही किया। किन्तु पींजरोंपरसे नीचे उतरकर, तीन बार दौड़कर और तीन बार बैठकर, किसी तरह जब मैं सेकण्ड क्लासके केबिनके द्वार पर पहुँचा, तब देखा, द्वार बन्द है। लोहेके किवाड़ोंने हजार धक्कामुक्की करने पर भी रास्ता नहीं दिया। इसलिए, वही रास्ता फिर उसी तरह तय करके मैं फर्स्ट क्लासके दरवाजेपर आ उपस्थित हुआ। इस दफे भाग्य देवताने सुप्रसन्न होकर एक निराले कमरेमें आश्रय दे दिया; और और ज़रा भी दुविधा न करके मैं किवाड़ बंद करके पलंग पर जा सोया।

रातके बारह बजेके भीतर तूफान तो थम गया, किन्तु समुद्रका गुस्सा दूसरे दिन भोर तक भी शांत न हुआ।

मेरे सामानका और साथी मुसाफिरोंका क्या हाल हुआ, और, खास तौरसे सपत्नीक मिर्ज़ाजीने किस तरह रात बिताई, यह जाननेके लिए सुबह मैं नीचे उतर गया। कल नन्द मिर्ज़ीने ज़रा दिल्लगी करते हुए कहा था कि, 'बाबूजी, साढ़े-बत्तीस प्रकारके चबेनेके समान हम लोग आपसमें गड्डमगड्ड हो गये थे और अभी ही कुछ देर हुई, सब कोई अपनी अपनी जगह आकर बैठे हैं।' आजका गड्डमगड्ड साढ़े-बत्तीस प्रकारमें गिना जा सकता है या नहीं, सो मुझे नहीं मालूम; किन्तु, इस समय तक कोई भी अपने निजी स्थान पर लौटकर न आने पाया था, यह मैंने अपनी आँखों देखा।

उन लोगोंकी अवस्था देखने पर सचमुच ही रुलाई आने लगी। इन तीन-चार-सौ यात्रियोंमेंसे किसीके समर्थ रहनेकी बातें तो दूर,—शायद, अक्षत भी कोई नहीं बचा था।

औरतें सिलपर जिस तरह लोढ़ेसे मसाला बाँटती हैं, कलका साइक्लोन इन तीन-चार-सौ लोगोंका ठीक उसी तरह सारी रात मसाला बाँटता रहा। सारे माल-असबाबके सहित,--बक्स-पेटियों आदिके सहित ये सब लोग रात-भर जहाजके इस किनारेसे उस किनारे तक लुढ़कते फिरे हैं। वमन तथा अन्य दो क्रियाएँ इतनी अधिक की गई हैं कि दुर्गन्धके मारे खड़ा होना भी भारी हो

रहा है और इस समय डाक्टर बाबू जहाजके मेहतर और खलासियोंको साथ लिये इन लोगोंका 'पंकोद्धार' करनेकी व्यवस्था कर रहे हैं।

डाक्टर बाबू ऊपरसे नीचे तक मेरा बार-बार निरीक्षण करके शायद मुझे सेकण्ड क्लास मुसाफिर समझ बैठे थे, फिर भी, अत्यन्त आश्चर्यके साथ बोले, "महाशय तो खूब ताजे दिख रहे हैं; जान पड़ता है कि आराम करनेके लिए कोई हैमॉक (Hammock=जहाज पर रहनेवाला एक तरहका एक झूलन-खटोला) पा गये थे, क्यों न?"

"हैमॉक कहाँसे पाता महाशय, पाया था एक भेड़ोंका पींजरा। इसीलिए तरो-ताजा दीख रहा हूं।"

डाक्टर बाबू मुँह फाड़कर मेरी ओर ताकते रह गये। मैं बोला, "डाक्टर बाबू, यह अधम भी इसी नरक-कुण्डका यात्री है। किन्तु, कमज़ोर होनेके सबब यहाँ घुस न सका,—शुरूसे ही डेकके ऊपर रहा आया। कल साइक्लोन की खबर पाकर कुछ देर भेड़ोंके पींजरोंके ऊपर बैठकर, और रातको फर्स्ट क्लासके एक कमरेमें अनधिकार प्रवेश करके आत्म-रक्षा कर सका हूँ। क्या कहते हैं आप, मैंने कुछ अनुचित तो नहीं किया?"

सारा इतिहास सुनकर डाक्टर बाबू इतने प्रसन्न हुए कि उसी क्षण उन्होंने मुझे अपने निजी कमरेमें बाकी दो दिन काटनेके लिए सादर निमंत्रण दे दिया। अवश्य ही उस निमन्त्रणको मैं स्वीकार नहीं कर सका,—केवल एक चेयर मैंने उनसे ले ली।

दोपहरको भूखकी मारसे मुर्देकी तरह चेयरपर पड़ा हुआ ब्रह्माण्डकी समस्त खाद्य-वस्तुओंका ध्यान कर रहा था,—कहाँ जाकर क्या कौशल करूँ कि कुछ खानेको मिल जाय। इसी समय, जब कि मैं इस दुश्चिन्तामें डूबा हुआ था, खिदिरपुरके मुसलमान दर्जियोंमेंसे एकने आकर कहा, "बाबू साहब, एक बंगाली औरत आपको बुला रही है।"

"औरत?" समझा कि टगर होगी। क्यों बुला रही है सो भी अनुमान कर लेना मेरे लिए कठिन नहीं था। निश्चय ही मिस्त्रीके साथ स्वामी और स्त्रीके स्वत्व सिद्ध करनेके व्यापारमें फिर मत-भेद उपस्थित हो गया है। किन्तु, मेरी जरूरत क्यों आ पड़ी? Trial by ordeal (अग्नि-परीक्षा) के सिवाय बाहरके किसी आदमीने आकर किसी दिन इसकी मीमांसा करदी हो, यह सोचना भी कठिन है।

मैंने कहा, "घण्टे-भर बाद आऊँगा, कह देना।"

उस मनुष्यने कुण्ठित होकर कहा, "नहीं बाबू साहब, बड़ी मिन्नत करके बुला रही है—"

"मिन्नत करके!" किन्तु इगर तो मिन्नत करनेवाली औरत नहीं है! पूछा, "उसके साथका मर्द क्या कर रहा है?"

वह बोला, "उसीकी बीमारीके कारण तो आपको बुला रही है।"

बीमार होना बिल्कुल ही अचरजकी बात नहीं थी, इसलिए, मैं उठ खड़ा हुआ। वह मुझे अपने साथ नीचे ले गया। काफी दूर पर एक कोनेमें कुंडली किये हुए मोटे मोटे रस्से रक्खे हुए थे। उन्हींकी आड़में एक बाईस-तेईस वर्षकी बंगाली स्त्री बैठी थी। पहले कभी उसपर मेरी नजर नहीं पड़ी थी। पासमें ही एक मैली सतरंजीके ऊपर करीब क़रीब इसी उम्रका एक अत्यंत क्षीणकाय युवक मुर्देकी तरह आँखें मूँदकर पड़ा हुआ है,—वही बीमार है।

मेरे निकट आते ही उस औरतने धीरे-धीरे अपने सिरका वस्त्र आगे खींच लिया, किन्तु मैं उसका मुँह देख चुका था।

वह मुख सुन्दर कहा जाय तो बहस उठ सकती है, किन्तु फिर भी, उपेक्षा करने योग्य नहीं था। ऊँचा कपाल स्त्रियोंकी सौन्दर्य तालिकामें कोई स्थान नहीं रखता, यह मुझे मालूम है: फिर भी, इस तरुणीके चौड़े मस्तक पर बुद्धि और विचार-शक्तिकी एक ऐसी छाप लगी हुई देखी जिसे मैंने कदाचित ही देखा है। मेरी अन्नदा जीजीका कपाल भी प्रशस्त था। इसका भी बहुत-कुछ उसी तरह का था। माँगमें सिन्दूर झलक रहा था, हाथमें लोहेकी चूड़ियाँ× और शंखके वलयोंको छोड़कर और कोई अलङ्कार नहीं था। आँगमें एक सीधी-सादी रंगीन साड़ी थी।

परिचय न होनेपर भी इतने स्वाभाविक ढंगसे उसने बात की कि मैं विस्मित हो गया। वह बोली, "आपके साथ डाक्टर बाबूका तो परिचय है, क्या एक दफे आप बुला सकते हैं?"

मैंने कहा, "आज ही उनसे परिचय हुआ है। फिर भी, जान पड़ता है, डाक्टर बाबू भले आदमी हैं।—किन्तु, उन्हें क्यों बुलाती हो?"

वह बोली, "यदि बुलानेपर विजिट देनी पड़ती हो, तो फिर जरूरत नहीं

× सधवाका चिह्न।

है; न होगा, यों ही थोड़ा कष्ट करके ऊपर चले चलेंगे। " इतना कहकर उसने उस रोगी आदमीको दिखा दिया।

मैंने सोचकर कहा, " जहाजके डाक्टरको शायद कुछ भी देना नहीं होता। किन्तु, इन्हें हो क्या गया है ? "

मैंने सोचा था कि रोगी इनका पति है: किन्तु, बातचीतसे कुछ संदेह हुआ। उस मनुष्यके मुँहके ऊपर कुछ झुककर उसने पूछा, " घरसे चलते समयसे ही तुम्हें पेटकी बीमारी थी न ? "

उस मनुष्यने सिर हिला दिया, तब इसने सिर ऊपर उठाकर कहा, " हाँ, इन्हें पेटकी बीमारी देशमें ही हुई थी, किन्तु, कलसे बुखार आ गया इस समय देखती हूँ कि बुखार तेज हो आया है, कुछ दवाई दिये बिना काम न चलेगा। "

मैंने भी स्वयं हाथ डालकर उसके शरीरका ताप देखा, वास्तवमें बुखार खूब तेज़ था। डाक्टरको बुलाने मैं ऊपर चला गया।

डाक्टर बाबू नीचे आये, रोग-परीक्षा करके और दवाईका पुरजा देकर बोले, "चलो श्रीकांत बाबू, कमरेमें चलकर कुछ गप-शप करें।"

डाक्टर बाबू खूब रंगीले थे। अपने कमरेमें ले जाकर बोले, " चाह पीते हैं ?"

मैंने कहा, " हाँ, पीता हूँ।"

" और बिस्कुट ? "

" सो भी खाता हूँ ?"

" अच्छा।"

खाना-पीना समाप्त होनेके बाद दोनों आमने-सामने कुर्सियोंपर बैठ गये। डाक्टर बाबू बोले, " आप कैसे जा भिड़ उस औरतसे ? "

मैंने कहा, " उसने ही मुझे बुला भेजा था।"

डाक्टर बाबू इस तरह सिर हिलाकर कि मानो सब कुछ जानते हों, बोले— " बुलाना ही चाहिए,—शादी-वादी की है या नहीं ?'

मैंने कहा, " नहीं।"

डाक्टर बाबू बोले, " तो बस, भिड़ जाओ, ऐसी कुछ बुरी नहीं है। उस आदमीका चेहरा देखा, उसपर टाईफाइडके लक्षण नजर आते हैं। कुछ भी हो, वह अधिक दिन न टिकेगा, यह निश्चित है। इस बीच उसपर नज़र बनाये रखना। वहीं और कोई साला न भिड़ जाय।"

मैं अवाक् होकर बोला "आप यह सब कह क्या रहे हैं, डाक्टर बाबू ?"

डाक्टर बाबू ज़रा भी अप्रतिभ हुए बिना बोले, "अच्छा, वह छोकरा ही उसे घरसे निकाल लाया है या उसीको वह बाहर निकाल लायी है,—तुम्हें क्या मालूम होता है, श्रीकान्त बाबू ?—खूब फारवर्ड है। बात-चीत तो बहुत अच्छी करती है।"

मैंने कहा, "इस तरहका ख्याल आपके मनमें क्यों आया ?"

डाक्टर बाबू बोले, "हरएक ट्रिपमें तो देखता हूँ कि एक न एक है ही। पिछली दफे भी बेलघरकी एक ऐसी ही जोड़ी थी ! एक बार बरमामें जाकर कदम तो रक्खो, तब देखोगे कि मेरी बात सच है या नहीं।"

उनकी बरमाकी बात बहुत-कुछ सच है, यह मैंने बादमें अवश्य देखा; किन्तु, उस समय तो ऊपरसे नीचे तक मेरा सारा मन अरुचिसे तीखा हो उठा। डाक्टर बाबूसे बिदा लेकर नन्द मिस्त्रीकी खबर लेने मैं नीचे गया। घरवाली सहित मिस्त्रीजी उस समय फलहारीकी तैयारी कर रहे थे। नमस्कार करनेके बाद सबसे पहले उसने यह प्रश्न किया, "यह औरत कौन है, बाबू ?—"

टगर सिरदर्दके कारण अपने सिरपर एक कपड़ा पगड़ीकी तरह बाँध रही थी। एकदम फुसकार कर बोल उठी, "यह जाननेकी तुम्हें क्या गरज़ पड़ी है, बताओ तो सही ?"

मिस्त्रीने मुझे मध्यस्थ मानकर कहा, "देखो महाशय, इस औरतकी ओछी तबियत ? कौन बंगाली औरत रंगून जा रही है, यह पूछना भी जैसे पाप हो !"

टगर अपना सिर-दर्द भूल गई और पगड़ीको फेंककर मेरी ओर ताकने लगी। उसने अपने दोनों गोल गोल आँखें फाड़कर कहा, "महाशय, टगर वैष्णवीके हाथके नीचेसे इन सरीखे न जाने कितने मिस्त्री आदमी बनकर निकल गये हैं,—अब भी क्या यह मेरी आँखोंमें धूल झोंक सकते हैं ?—अरे, तुम डाक्टर हो कि वैद्य, जो मैं ज़रा-सा पानी लेने गई, कि इतनी ही देरमें, चटसे दौड़कर वहाँ देखने जा पहुँचे ? क्यों, कौन है वह ?—यह अच्छा नहीं होगा, सो कहे देती हूँ, मिस्त्री ! यदि दुबारा फिर कभी वहाँ जाते देखूँगी तो फिर एक दिन या तो तुम ही हो या मैं ही।"

नन्द मिस्त्रीने गर्म होकर कहा, "तेरा क्या मैं पालतू बन्दर हूँ जो तू जिस

तरफ साँकल पकड़कर ले जायगी उसी तरफ जाऊँगा ? मेरी इच्छा होगी तो फिर जाकर उस बेचारेको देखने जाऊंगा ? तेरे मनमें आवे सो कर ।" इतना कहकर उसने फलाहारमें चित्त लगाया।

टगरने भी सिर्फ़ 'अच्छा' कहकर अपनी पगड़ी बाँधना शुरू कर दिया। मैं भी वहांसे चल दिया। चलते चलते मैं सोचता गया,—इसी तरह इन दोनोंने बीस बरस काट दिये हैं। अनेक दफे हाथ जलाकर टगर इतना सीखी है कि जहाँपर सत्यका बंधन नहीं है वहाँ रासको ज़रा भी ढीला करना अच्छा नहीं होता। ठगाना ही पड़ता है। या तो रात-दिन सतर्क बने रहकर ज़ोर-ज़बरदस्तीसे अपना दखल जमाये रखना पड़ेगा, नहीं तो, जवानीकी तरह नन्द मिस्त्री भी एक दिन अनजानमें खिसक जायगा।

किन्तु, जिसको लक्ष्य करके टगरके मनमें यह विद्वेष उत्पन्न हुआ और डाक्टर बाबूने कुत्सित तीव्र कटाक्ष किया, वह है कौन ? टगरने कहा था,—कार्य करते हुए मैंने अपने बाल पकाये हैं। ऐसी औरत है कहाँ जो मेरी आँखोंमें धूल झोंक सके ? डाक्टर बाबूने अपना मन्तव्य जाहिर किया था कि ऐसी घटनाएं नित्य ही देखते रहनेके कारण उनकी आँखोंमें दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो गई है।—इसमें यदि भूल हो, तो वे ऐसी आँखोंको निकाल फेंकनेके लिए तैयार हैं।

ऐसा ही होता है। दूसरेका विचार करते समय किसी मनुष्यको कभी यह कहते नहीं सुना कि वह अन्तर्यामी नहीं है, अथवा कहीं भी उसका कोई भ्रम या प्रमाद हो सकता है। सभी कहते हैं कि मनुष्यको चीन्हनेमें हम बेजोड़ हैं और इस विषयमें हम एक पक्के जौहरी हैं। फिर भी, संसारमें मैं नहीं जानता कि कभी किसीने अपने खुदके भी मनको ठीक तरहसे पहिचाना हो। मगर हाँ, मेरे समान जिसने भी कहीं कोई कठिन चोट खाई है, उसे अवश्य ही सावधान होना पड़ा है। यह बात उसे मन ही मन मंजूर करनी ही पड़ती है कि संसारमें जब अन्नदा जीजी सरीखी स्त्रियाँ भी हैं, तब बुद्धिके अहंकारसे दूसरेको हीन और नासमझ समझकर खुद बुद्धिमान बननेकी अपेक्षा, सब-कुछ अच्छी तरह जानते हुए भी, नासमझ बननेमें ही एक तरहसे अधिक बुद्धिमानी है। इसलिए, इन दो परम विज्ञ स्त्री-पुरुषोंके उपदेशको मैं अभ्रान्त न मान सका।— किन्तु डाक्टर बाबूने जो कहा था

कि अत्यन्त 'फारवर्ड' है,' सो ठीक मालूम हुआ। और, केवल यही बात मुझे रह-रहकर चुभने लगी।

बहुत रात गये मैं फिर बुलाया गया। इस दफे इस औरतका मुझे परिचय प्राप्त हुआ। नाम था अभया। उत्तरराढ़ी कायस्थ है, घर है बालूचरके निकट। जो व्यक्ति बीमार पड़ा है वह गाँवके रिश्तेसे भाई होता है, नाम है उसका रोहिणी सिंह। "दवासे रोहिणी बाबूको काफी लाभ पहुँचा है," इस तरह कहना आरंभ करके थोड़े ही समयमें अभयाने मुझे अपना आत्मीय बना लिया। किन्तु मुझे यह तो स्वीकार करना ही चाहिए कि मेरे मनमें, अनिच्छा होते हुए भी, एक कठोर समालोचनाका भाव बराबर जाग्रत हो गया था। फिर भी, इस स्त्रीकी सारी बातचीत और आलोचनाके दम्यान कहीं भी मैं जरा-सी भी असङ्गति या अनुचित प्रगल्भता नहीं पकड़ पाया।

अभयामें मनुष्यको वश करनेकी अद्भुत शक्ति है। इस बीचमें ही उसने मेरा केवल नाम-धाम ही नहीं जान लिया, वरन् 'मैं उसके लापता पतिको, जिस तरह हो सके, खोज दूँगा', यह वचन भी उसने मेरे मुँहसे निकलवा लिया। उसका पति आठ वर्ष पहले बर्मामें नौकरीके लिए आया था। दो वर्षतक उसकी चिट्ठी-पत्री आती रही थी: किन्तु, इन छह वर्षोंसे उसका कोई पता नहीं है। देशमें कुटुम्ब-कबीलेका और कोई नहीं है। माँ थीं; परन्तु वे भी क़रीब महीने-भर पहले गुज़र गईं। बापके घर अभिभावकहीन होकर रहना असंभव हो जानेसे रोहिणी भाईको राजी कर बर्मा आई है।

कुछ देर चुप रहकर एकाएक वह बोल उठी, "अच्छा, इतनी-सी भी कोशिश न करके यदि किसी तरह देशमें ही पड़ी रहती तो क्या यह मेरे हकमें अच्छा होता? इसके सिवाय इस उम्रमें बदनामी मोल लेते कितनी-सी देर लगती है?"

मैंने पूछा, "क्या आप जानती हैं कि इतने दिन तक क्यों आपकी उन्होंने कुछ खबर नहीं ली?"

"नहीं, कुछ नहीं जानती।"

"इसके पहले वे कहाँ थे, सो मालूम है?"

"जानती हूँ। रंगूनमें ही थे, बर्मा रेलवेमें काम करते थे; किन्तु, कितनी ही चिट्ठियाँ दीं, कभी कोई उत्तर नहीं मिला। और, कभी कोई चिट्ठी लौटकर वापिस भी नहीं आई।"

प्रत्येक पत्र अभयाके पतिको मिला है, यह तो निश्चित था। किन्तु, क्यों उसने जवाब नहीं दिया, इसका संभाव्य कारण हाल ही मैंने डाक्टर बाबूके निकट सुना था। बहुत-से बंगाली वहाँ जाकर किसी ब्रह्मदेशकी सुन्दरीको घर बिठाकर नई गिरस्ती बसा लेते हैं और उनमें ऐसे अनेक हैं जो सारी जिन्दगी फिर लौटकर देश नहीं गये।

मुझे चुप देखकर अभयाने पूछा, "वे जीवित नहीं हैं, यही क्या आपको जान पड़ता है?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "बल्कि, ठीक इससे उलटा। वे जीवित हैं, यह तो मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ"

चटसे अभयाने मेरे पैर छूकर प्रणाम किया और कहा, "आपके मुँहमें फूल-चन्दन पड़ें, श्रीकान्त बाबू, मैं और कुछ नहीं चाहती। वे जीवित हैं, बस इतना ही मेरे लिए काफी है।"

मैं फिर मौन हो रहा। अभया खुद भी कुछ देर मौन रहकर बोली, "आप क्या सोच रहे हैं, सो मैं जानती हूँ।"

"जानती हो?"

"जानती नहीं तो? आप पुरुष होकर जिसका खयाल कर रहे हैं, स्त्री होकर भी क्या मुझे वह भय नहीं होगा? सो होने दो, मुझे उसका डर नहीं है,—मैं अपनी सौतके साथ मजेसे गिरस्ती चला सकती हूँ।"

फिर भी मैं चुप ही बना रहा। किन्तु, मेरे मनकी बातका अनुमान करनेमें इस बुद्धिमती स्त्रीको जरा-सा भी बिलम्ब नहीं हुआ। बोली, "आप सोच रहे हैं कि मेरे गिरिस्ती चलानेके लिए राजी होनेसे ही तो काम नहीं चलेगा; मेरी सौतको भी तो राजी होना चाहिए?—यही न सोच रहे हैं?"

दर-असल मैं अवाक् हो गया और बोला, "ठीक है, यदि ऐसा ही हो तो क्या करेंगी?"

इस दफे अभयाकी दोनों आँखें छलछला उठीं। वह मेरे मुँहकी ओर अपनी सजल दृष्टि निबद्ध करके बोली, "ऐसी विपत्तिमें आप मुझे जरा-सी सहायता न करेंगे, श्रीकान्त बाबू, मेरे रोहिणी भइया बड़े सीधे-सादे भोले आदमी हैं, इसलिए, उस समय तो इनके द्वारा मेरा कोई उपकार न होगा।"

राजी होकर मैंने कहा, "बन पड़ेगा तो जरूर सहायता करूँगा; किन्तु

इन सब कामोंमें बाहरके लोगोंके द्वारा प्रायः काम होता तो कुछ नहीं, उल्टा बिगड़ ही जाता है।"

"यह बात सच है," कहकर अभया चुपचाप कुछ सोचने लगी।

दूसरे दिन ग्यारह-बारह बजेके बीच जहाज रंगून पहुँचने वाला था; किन्तु भोर होनेके पहलेसे ही सब लोगोंकी आँखों और चेहरोंपर भय और चंचलताके चिह्न नजर आने लगे। चारों ओरसे एक अस्फुट शब्द कानोंमें आने लगा, 'केरेंटिन,केरेंटिन।' पता लगानेसे मालूम हुआ कि ठीक शब्द 'कारेंटाइन' (Quarantine) है। उस समय बर्माकी सरकार प्लेगके डरसे अत्यन्त सावधान थी। शहरसे आठ-दस मील दूर पर रेतमें कँटेदार तारोंसे थोड़ा-सा स्थान घेरकर उसमें बहुत-सी झोपड़ियाँ खड़ी कर दी गई थीं,—इसमें ही डेकके समस्त यात्रियोंको बिना कुछ विचार किये उतार दिया जाता था। यहाँपर दस दिन ठहरनेके बाद उन्हें शहरमें जाने दिया जाता था। हाँ, यदि किसीका कोई आत्मीय शहरमें होता और वह पोर्ट हेल्थ ऑफिसरके पास जाकर किसी कौशलसे 'छोड़पत्र' जुटा सकता तो बात जुदी थी।

डाक्टर बाबू मुझे अपने कमरेमें बुलाकर बोले, "श्रीकान्त बाबू, एक 'छोड़-पत्र' जुटाये वगैर आपका यहाँ आना उचित नहीं हुआ; कारेंटाइनमें ले जाकर वे लोग मनुष्यको इतना कष्ट देते हैं कि कसाईखानेके गाय-बैल भेड़ आदि जानवरोंको भी उतना कष्ट नहीं सहना पड़ता। साधारण आदमी तो उसे किसी तरह सह लेते हैं, मर्मान्तिक कष्ट तो केवल भले आदमियोंको ही पड़ता है। एक तो यहाँ कोई मजूर नहीं मिलता,—अपना सब माल-असबाब अपने ही कंधोंपर लादकर एक सीधी जर्जर सीढ़ीपरसे चढ़ना-उतरना होता है, और उतनी दूर ले जाना पड़ता है। इसके बाद, सारा माल-असबाब वहाँ खोलकर बिखेर दिया जाता है और स्टीममें उबालकर बर्बाद कर दिया जाता है। और महाशय, ऐसी कड़ी धूपमें तो कष्टका कोई पार ही नहीं रहता।"

अत्यन्त भयभीत होकर मैंने कहा, "इसका कोई प्रतिकार नहीं है क्या डाक्टर बाबू?'

उन्होंने सिर हिलाकर कहा, "नहीं,-हाँ, जब डाक्टर साहब जहाजके ऊपर चढ़ आवेंगे तब म उनसे कह देखूँगा। उनका क्लर्क यदि आपकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेनेको राजी होगा तो—"

किन्तु उनकी बात अच्छी तरह पूरी न होने पाई थी कि बाहर एक ऐसा

कारड घटित हुआ जिसकी याद करके मैं खुद भी लाजके मारे मर जाता हूँ। कुछ गोलमाल सुनकर दोनों जनें कमरेसे बाहर निकले। देखा कि जहाजका सेकरड आफिसर छह-सात खलासियोंको बेधड़क चाहे जिस तरह लातें मार रहा है; और, उसके बूटकी ठोकरें खाकर वे जहाँ बन पड़ता है वहाँ भाग रहे हैं। यह अँग्रेज युवक अत्यन्त उद्धत था, इसलिए डाक्टर बाबूके साथ इसकी पहले भी कहा-सुनी हो चुकी थी, और आज फिर एक झपट हो गई।

डाक्टर गुस्सा होकर बोले, "तुम्हारा इस तरहका काम अत्यन्त निन्दनीय है, किसी दिन इसके लिए तुम्हें दुःख उठाना पड़ेगा, यह मैं कहे देता हूँ।"

वह पलटकर खड़ा हो गया और बोला "क्यों ?"

डाक्टर बाबू बोले, "इस तरह लातें मारना बड़ा भारी अन्याय है।"

उसने जवाब दिया, "मार खाये बिना क्या चोर सीधे होते हैं ?"

डाक्टर बाबू कुछ 'स्वदेशी ख्याल' के आदमी थे: वे उत्तेजित होकर कहने लगे, "ये लोग जानवर नहीं हैं, गरीब मनुष्य हैं। हमारे देशी आदमी नम्र और शान्त होनेके कारण कप्तान साहबके पास जाकर तुम्हारी शिकायत नहीं करते: और इसीलिए, तुम अत्याचार करनेका साहस करते हो!"

एकाएक साहबका मुँह अकृत्रिम हँसीसे भर गया। डाक्टरका हाथ खींचकर उसने उँगलीसे दिखाते हुए कहा, Look Doctor, there's your countrv-men, you ought to be prcud of them? (देखो डाक्टर, वह देखो तुम्हारे देशके आदमी, तुम्हें अवश्य ही इनपर फ़क्र होना चाहिए।)

मैंने नज़र उठाकर देखा, कुछ ऊँचे पीपोंकी आड़में खड़े होकर वे खींसे बाहर निकाल कर हँस रहे हैं और शरीरकी धूल झाड़ रहे हैं। साहब थोड़ा-सा हँसकर, डाक्टर बाबूके मुँहपर दोनों हाथोंके अँगूठे हिलाकर, दाएँ-बाएँ झूमता सीटी देता हुआ चल दिया। विजयका गर्व जैसे उसके सारे शरीरसे फूट पड़ने लगा।

डाक्टर बाबूका मुँह लज्जासे, क्षोभसे और अपमानसे काला हो गया। तेजीसे कदम आगे रखते हुए क्रुद्ध स्वरसे वे बोल उठे, "बेहया सालो, खींसें बाहर निकालकर हँस रहे हो!"

इस दफे, इतनी देर बाद, देशी लोगोंका आत्म-सम्मान शायद लौट आया। सब लोगोंने एक साथ हँसना बन्द करके तेजीसे जवाब दिया, "तुम

डाक्टर बाबू, 'साला' कहनेवाले कौन होते हो ? किसीका कर्ज खाकर तो हम लोग नहीं हँसते ?"

"ज़बर्दस्तीसे डाक्टर बाबूको खींचकर उनके कमरेमें वापस ले आया। कुर्सीपर धम्मसे गिरते हुए उनके मुँहसे सिर्फ 'ऊः—!' निकला।

और कोई दूसरी बात उनके मुँहसे बाहिर निकलना भी असंभव था। ग्यारह बजेके लगभग क्वॉरेंटाइनके पास एक छोटा-सा स्टीमर आकर जहाज-से सटकर खड़ा हो गया। समस्त डेकके यात्रियोंको यही उस भयानक स्थान-में ले जायगा। माल-असबाब बाँधने-छोरनेकी धूम मच गई।—मुझे जल्दी नहीं थी; क्योंकि, डाक्टर बाबूका आदमी अभी ही कह गया था कि मुझे वहाँ नहीं जाना पड़ेगा। निश्चित होकर यात्रियों और खलासियोंकी चिल्लाहट और दौड़-धूप कुछ अन्यमनस्क-सा होकर देख रहा था। हठात् पीछेसे एक शब्द सुन पड़ा, पलटकर देखा कि अभया खड़ी है। आश्चर्यके साथ पूछा, "आप यहाँ कैसे ?"

अभया बोली, "क्यों, क्या आप अपनी चीज-वस्त बाधेंगे नहीं ?"

मैंने कहा, "नहीं, मुझे अभी काफी देर है, मुझे वहाँ नहीं जाना पड़ेगा। एकदम शहरमें जाकर उतरूँगा।"

अभया बोली, "नहीं, शीघ्र सामान ठीक कर लीजिए।"

मैंने कहा, "मुझे अब भी बहुत समय है।"

अभयाने प्रबल वेगसे सिर हिलाकर कहा, "नहीं, सो नहीं हो सकता। मुझे छोड़कर आप किसी तरह नहीं जाने पायेंगे।"

मैं अवाक् होकर बोला, "यह क्या ? मेरा तो वहाँ जाना नहीं हो सकेगा।"

अभया बोली, "तो फिर, मेरा भी नहीं हो सकेगा। मैं पानीमें भले ही फाँद पड़ूँ, परन्तु, निराश्रय होकर उस जगह किसी तरह नहीं जाऊँगी। वहाँकी सब बातें सुन चुकी हूँ।" यह कहते कहते उसकी आँखें छलछला आईं। मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठा रहा।—यह कौन है जो मुझे इस तरह धीरे धीरे ज़ोर डालकर अपने जीवनके साथ जकड़ रही है ?

वह आँचलसे आँखें पोंछकर बोली, "मुझे अकेली छोड़कर चले जावेंगे ? मैं नहीं सोच सकती कि आप इतने निष्ठुर हो सकते हैं। उठिए, नीचे चलिए। आप न होंगे तो उस बीमार आदमीको साथ लेकर मैं अकेली औरत-जात क्या करूँगी, आप ही बताइए ?"

अपना माल-असबाब लेकर जब मैं छोटे स्टीमरपर चढ़ा तब डाक्टर बाबू ऊपरके डेकपर खड़े थे। हठात् मुझे इस अवस्थामें देखकर वे हाथ हिलाते हुए चिल्लाकर कहने लगे, "नहीं नहीं, आपको न जाना होगा। लौट आइए, लौट आइए,—आपके लिए हुक्म हो गया है, आप—"

मैंने भी हाथ हिलाते हुए चिल्लाकर कहा, "असंख्य धन्यवाद, किन्तु एक और हुक्मसे मुझे जाना पड़ रहा है।"

सहसा उनकी दृष्टि अभया और रोहिणीपर जा पड़ी। वे मुस्कराते हुए बोले, "तब मुझे बेकार ही कष्ट दिया?"

"उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

"नहीं नहीं, उसकी जरूरत नहीं, मैं पहलेसे ही जानता था, गुड बाई।" यह कहकर डाक्टर बाबू हँसते चेहरेसे चले गये।

५

'कॉरंटाइन' नामक जेलखानेमें भेजनेका कानून केवल 'कुलियों' के लिए है,—शरीफोंके लिए नहीं; और, जो जहाजका किराया दस रुपयेसे अधिक नहीं देता वही 'कुली' है। चायके बगीचोंका कायदा क्या कहता है सो नहीं मालूम; पर जहाजी कानून तो यही है। और, अधिकारी या अफसर प्रत्यक्ष ज्ञानसे क्या जानते हैं, यह तो वे ही जानें; किन्तु, आफिशियल इससे अधिक जाननेकी रीति नहीं है। इसलिए, इस यात्रामें हम सब 'कुली' थे। और, साहब लोग यह भी समझते हैं कि कुलीकी जीवन-यात्राके लिए माल-असबाब ऐसा कुछ अधिक नहीं हो सकता,—और न होना उचित ही है, कि जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक कंधेपर रखकर वह न ले जा सकता हो। इसलिए, उतरनेके घाटपर केरिंगिटन-यात्रियोंका माल असबाब ले जानेके लिए यदि कोई व्यवस्था नहीं है तो इसके लिए क्षुब्ध होनेका कोई कारण नहीं। यह सब सच है; फिर भी, यह केवल हमारे ही भाग्यका दोष समझिए कि हम तीन प्राणी, सिरके ऊपर प्रचण्ड सूर्य और पैरोंके नीचे उससे भी अधिक उग्र बालुका-राशिसे जलते हुए, एक अपरिचित नदीके किनारे बड़े बड़े गट्ठर सामने रखकर किंकर्त्तव्यमूढ़ भावसे एक दूसरेका मुँह देखते हुए खड़े हुए हैं। साथके यात्रियोंका परिचय पहले ही दे चुका हूँ। वे लोग

अपने लोटे-कम्बल पीठपर रखकर, और अपेक्षाकृत अधिक बोझ अपनी गृह-लक्ष्मियोंके सिरपर लादकर, मज़ेसे गन्तव्य स्थान पर चले गये।

देखते देखते रोहिणी भइया बिस्तरोंके एक बंडलपर काँपते काँपते धमसे बैठ गये। बुखार, पेटका दर्द और भारी थकावट,—इन सब कारणोंके एकत्र होनेसे उनकी अवस्था ऐसी थी कि उनके लिए, चलना तो बहुत दूरकी बात है, बैठना भी असंभव हो गया। लेट जानेमें ही उनकी रक्षा थी। अभया ठहरी औरत-जात। बचा सिर्फ मैं और मेरी तथा पराई छोटी-मोटी गठरियाँ। मेरी दशा एकबारगी सोचकर देखने योग्य थी। एक तो, अकारण ही एक अज्ञात अप्रीतिकर स्थानमें जा रहा था; दूसरे, एक कंधेपर तो एक अज्ञात। निरुपाय स्त्रीका बोझ था और दूसरे कंधेपर झूल रहा था उतना ही अपरिचित एक बीमार पुरुष और ऊपरसे घातेमें थी गठरियाँ। इन सबके बीच मैं अत्यन्त उग्र प्यासको लिये, जो कि सारे गलेको सुखाये देती थी, एक अज्ञात जगहमें किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ा था। मेरे इस चित्रकी कल्पना करके बतौर पाठकके लोगोंको खूब आनंद आ सकता है,—कुछ सहृदय पाठक, शायद, मेरी इस निःस्वार्थ परोपकार-वृत्तिकी प्रशंसा भी कर सकते हैं; किन्तु, मुझे यह कहते जरा भी शर्म नहीं कि उस समय इस हतभागीका मन झुँझलाहट और पश्चात्तापसे एकबारगी परिपूर्ण हो रहा था। अपने आपको सैकड़ों धिक्कार देता हुआ मन ही मन कह रहा था, कि इतना बड़ा गधा त्रिलोकमें क्या और भी कोई होगा! किन्तु, बड़े अचरजकी बात है, कि यद्यपि यह परिचय मेरे शरीरपर लिखा हुआ नहीं था, फिर भी, जहाज-भरके इतने लोगोंके बीचमें भार-वहन करनेके लिए अभयाने मुझे ही क्यों और किस तरह एकदमसे पहिचानकर छाँट लिया?

किन्तु, मेरा विस्मय दूर हुआ उसकी हँसीसे। उसने मुँह उठाकर जरा-सा हँस दिया। उसके हँसी-भरे चेहरेको देखकर मुझे केवल विस्मय ही नहीं हुआ,—उसके भयानक दुखकी छाया भी इस दफे मुझे दिख गई। किन्तु सबसे अधिक अचरज तो मुझे उस ग्रामीण स्त्रीकी बात सुनकर हुआ। कहाँ तो लज्जा और कृतज्ञतासे धरतीमें गड़कर उसे भिक्षा माँगना चाहिए था, और कहाँ उसने हँसकर कहा, "कहीं यह खयाल न कर बैठना, कि खूब ठगाये गये! अनायास ही जा सकते थे फिर भी गये नहीं, इसीका नाम है दान। पर, मैं यह कहे रखती हूँ कि इतना बड़ा दान करनेका सुयोग जीवनमें, शायद, कम

ही मिलेगा। किन्तु, जाने दो इन बातोंको। माल-असबाब इसी जगह पड़ा रहने दो, और चलो, देखें, इन्हें कहीं छायामें सुलाया जा सकता है या नहीं।"

आखिर, गट्ठर-गठरियोंकी ममता छोड़कर मैं रोहिणी भइयाको पीठपर लादकर केरिंगिटनकी ओर रवाना हुआ। अभयाने केवल एक छोटा-सा हाथ-बक्स लेकर मेरा अनुसरण किया और सामान वहाँ ही पड़ा रहा। अवश्य ही वह सब खोया नहीं गया,—कोई दो घण्टे बाद उसे ले आनेका प्रबंध हो गया।

अधिकांश स्थानोंमें देखा जाता है कि सचमुचकी विपत्ति काल्पनिक विपत्तिकी अपेक्षा अधिक सहज और सह्य होती है। पहलेसे ही इस बातका ख्याल रखनेसे अनेक दुश्चिन्ताओंके हाथसे छुटकारा मिल सकता है। इसलिए, यद्यपि कुछ कुछ क्लेश और असुविधायें निश्चयसे मुझे भोगनी पड़ीं, फिर भी, यह बात तो स्वीकार करनी ही पड़ती है कि हम लोगोंके केरिंगिटनकी म्यादके दिन एक तरहसे आरामसे ही कट गये। इसके सिवाय, पैसा खरच कर सकनेपर यमराजके घर भी जब ससुराल जैसा आदर प्राप्त किया जा सकता है। तब तो यह केरिंगिटन ही थी!

जहाजके डाक्टर बाबूने कहा था कि यह स्त्री खूब 'फारवर्ड' है, किन्तु, जरूरतके समय यह स्त्री कहाँ तक 'फारवर्ड' हो सकती है, इसकी शायद उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी। रोहिणी बाबूको जब पीठपरसे मैंने उतार दिया तब अभया बोली, "बस, अब आपको और कुछ भी नहीं करना होगा श्रीकान्त बाबू, आप विश्राम करें, और जो कुछ करनेका है मैं कर लूँगी।"

विश्रामकी मुझे वास्तवमें जरूरत थी,—दोनों पैर थकावटके कारण टूटे जाते थे; फिर भी मैंने अचरजके साथ पूछा, "आप क्या करेंगी?"

अभयाने जवाब दिया, "काम क्या कुछ कम है? चीजें-बस्तें लानी होंगी, एक अच्छा-सा कमरा तलाश करके आप दोनोंके लिए बिस्तर तैयार कर देने होंग, रसोई करके जो कुछ हो दोनोंको खिला देना होगा,—तब जाकर मुझे छुट्टी मिलेगी, और तब ही तो थोड़ा-सा बैठकर मैं आराम कर सकूँगी।—नहीं नहीं, मेरे सिरकी कसम, उठिएगा नहीं, मैं अभी अभी सब ठीक-ठाक किये देती हूँ।" फिर थोड़ा-सा हँसकर कहा, "सोचते होओगे कि औरत होकर यह अकेली सब प्रबन्ध किस तरह करेगी, यही न? पर क्यों न कर सकूँगी? अच्छा, आपको ही खोज निकालनेवाला कौन था?—मैं ही थी न, के और कोई?" इतना कहकर उसने छोटे बाक्सको खोला और उसमेंसे

कुछ रुपये निकालकर आँचलमें बाँध लिये तथा केरेगिटनके आफिसकी ओर चल दी।

वह कुछ कर सके चाहे न कर सके, किसी तरह बैठनेको मिल जानेसे मेरी तो जान बच गई। आध घण्टेके भीतर ही एक चपरासी मुझे बुलाने आया। रोहिणीको साथ लेकर उसके साथ गया। देखा, रहनेका कमरा तो अच्छा ही है। मेम डाक्टरिन साहिबा खुद खड़े होकर नौकरसे सब साफ करा रही है, जरूरी चीजें आ पहुँची हैं और दो खाटोंपर दो आदमियोंके लिए बिस्तर तक बिछा दिये गये हैं। एक ओर नई हाँडियाँ, चावल, दाल, आलू, घी, मैदा, लकड़ी आदि सब मौजूद हैं। मद्रासी डाक्टरिनके साथ अभया टूटी-फूटी हिन्दीमें बातचीत कर रही है। मुझे देखते ही बोली, "तब तक आप थोड़ी नींद न ले लो, मै सिरपर दो घड़ा जल डालकर इस वक्तके लिए चावल-दाल मिलाकर थोड़ी-सी खिचड़ी राँधे देती हूँ। उस वक्तके लिए फिर देखा जायगा।" इतना कहकर गमछा-कपड़ा लेकर मेम साहिबाको सलाम कर, एक खलासीको साथ लेकर वह नहाने चली गई।—इस तरह, उसकी संरक्षतामें हम लोगोंके दिन अच्छी तरहसे कट गये, यह कहनेमें मै निश्चयसे जरा भी अत्युक्ति नहीं कर रहा हूँ।

इस अभयामें मैं दो बातें अन्त तक लक्ष्य कर रहा था। ऐसी अवस्थामें ऐसे स्त्री-पुरुषमें जिनमें परस्पर कोई रिश्ता नहीं होता है, घनिष्ठता स्वतः ही बड़ी तेज़ीसे बढ़ने लगती है। किन्तु इसका उसने कभी मौका ही नहीं दिया। उसके व्यवहारमें ऐसा कुछ था जो प्रत्येक क्षण याद दिला दिया करता था कि हम लोग केवल यात्री हैं जो एक जगह ठहर गये हैं,—किसीके साथ किसीका सचमुचका कोई सम्बन्ध नहीं हैं; दो दिन बाद शायद जीवन-भर फिर कहीं किसीकी किसीसे मुलाकात ही न हो। दूसरी बात यह थी कि ऐसा आनन्दयुक्त परिश्रम भी मैने कहीं नहीं देखा। दिन-भर वह हम लोगोंकी सेवामें लगी रहती और काम खुद ही करना चाहती। सहायता करनेकी कोशिश करते ही वह हँसकर कहती, "यह तो सब मेरा खुदका कार्य है। नहीं तो, रोहिणी भइयाको ही क्या जरूरत थी कि वे इतना कष्ट उठाते, और आपको ही क्या पड़ी थी इस जेलखानेमें आनेकी? मेरे लिए ही तो आप लोगोंको इतनी सब तकलीफें उठानी पड़ी हैं।"

अक्सर ऐसा होता है कि खाने-पीनेके बाद थोड़ी-सी गप शप चल रही होती

और आफिसकी घड़ीमें दो बज जाते। बस वह एकदम खड़ी हो जाती और कहने लगती, "जाती हूँ आप लोगोंके लिए चाय तैयार कर लाऊँ,—दो बज गये।" मन ही मन मैं कहता,—तुम्हारा पति चाहे कितना ही पापी क्यों न हो, मनुष्य तो जरूर होगा। यदि कभी उसे पा लोगी, तो वह तुम्हारा मूल्य अवश्य समझेगा।

इसके बाद एक दिन मियाद खतम हुई। रोहिणी भी अच्छा हो गया। हम लोग भी सरकारी 'छोड़-पत्र' पाकर गट्ठर-गठरियाँ बाँध रंगूनको चल पड़े। निश्चय किया था कि शहरके मुसाफ़िरखानेमें दो-एक दिनके लिए ठहर कर, और इन लोगोंके लिए ठहरनेका कोई स्थान ठीक करके, मैं अपने स्थान पर चला जाऊँगा; और फिर जहाँ-कहीं भी रहूँगा वहाँसे उसके पतिका पता मालूम करके उसे समाचार भेजनेकी भर-सक कोशिश करूँगा।

शहरमें जिस दिन हम लोगोने कदम रक्खे वह बर्मा-वासियोंका एक त्योहारका दिन था। और, त्योहार तो उनके लगे ही रहते हैं। दलके दल स्त्री-पुरुष रेशमी पोशाक पहने अपने मंदिरोंको जा रहे हैं। स्त्री-स्वातंत्र्यका देश है; इस लिए, वहाँके आनन्द-उत्सवमें स्त्रियोंकी संख्या भी अधिक होती है। बूढ़ी-युवती बालिका,—सब उम्रकी स्त्रियाँ अपूर्व पोशाक-परिच्छदमें सज्जित होकर हँसती-बोलतीं-गातीं सारे रास्तेको मुखरित करती हुई चली जा रही हैं। उनमें अधिकाँशका रंग खूब गोरा है। मेघकी तरह घने बालोंका बोझा सौमेंसे नब्बे स्त्रियोंका घुटनोके नीचे तक लटकता है। जूड़ेमें फूल, कानोंमें फूल और गलेमें फूलोंकी माला। घूँघटकी झंझट नहीं, पुरुषोंको देखकर तेजीसे जानेकी व्यग्रतासे ठोकर खाकर गिरनेका अन्देशा नहीं, दुविधा या लाजका लेश नहीं,—मानो झरनेके मुक्त प्रवाहके समान स्वच्छन्द बे-रोक गतिसे बही जा रही हैं। पहली ही दृष्टिसे एकदम मुग्ध हो गया। अपने यहाँकी तुलनामें मन ही मन उनकी अशेष प्रशंसा करके बोला, यही तो होना चाहिए! इसके बिना जीवन ही क्या है! उनका सौभाग्य सहसा मानो ईर्षाके समान मेरे हृदयमें छिद गया। मैंने कहा, चारों दिशाओंमें ये जिस आनन्दकी सृष्टि करती जा रही है, वह क्या अवहेलाकी वस्तु है? रमणियोंको इतनी स्वाधीनता देकर इस देशके पुरुष क्या ठगे गये हैं? और, हम लोग क्या उनको नीचेसे ऊपर तक जकड़ रखकर और उनके जीवनको लँगड़ा बनाकर लाभमें रहे हैं? हमारी स्त्रियाँ भी यदि किसी ऐसे ही दिन,—

एकाएक गोलमाल सुनकर मैंने लौटकर जो कुछ देखा वह आज भी मेरे मनपर साफ साफ अंकित है। झगड़ा हो रहा था घोड़ागाड़ीके किरायेके संबंधमें। गाड़ीवान हमारे यहाँका हिन्दुस्तानी मुसलमान था। वह कह रहा था कि आठ आने किराया तय हुआ है और तीन भले घरकी बरमी स्त्रियाँ गाड़ीपरसे उतरकर एक साथ चिल्लाकर कह रही थीं कि नहीं, पाँच आना हुआ है। दो-तीन मिनट कहा-सुनी होनेके बाद ही बस, 'बलं बलं बाहुबलं।' रास्तेके किनारे एक आदमी मोटे मोटे गन्नोंके टुकड़े करके बेच रहा था। अकस्मात् तीनोंने झपटकर उसके तीन टुकड़े उठा लिये और एक साथ गाड़ीवानपर आक्रमण कर दिया। ओह! वह कैसी बेधड़क मार थी। बेचारा स्त्रियोंके शरीरपर हाथ भी नहीं लगा सकता था,—आत्म-रक्षा करनेके लिए यदि एकको अटकाता था तो दूसरीकी चोट सिरपर पड़ती, उनको अटकाता तो तीसरीकी चोट आ पड़ती। चारों ओर लोग जमा हो गये,—किन्तु केवल तमाशा देखने। उस अभागेका कहाँ गया टोपी-साफा और कहाँ गया हाथका चाबुक! और अधिक न सह सकनेके कारण आखिर वह मैदान छोड़कर 'पुलिस! पुलिस! सिपाही! सिपाही!' चिल्लाता हुआ भाग खड़ा हुआ।

मैं हाल ही बंगालसे आ रहा था और सो भी देहातसे। कलकत्तेमें स्त्री-स्वाधीनता है,—कानोंसे अवश्य सुनी है, पर आँखों नहीं देखी। किन्तु, क्या स्वाधीनता प्राप्त करके भले घरकी 'अबलाएँ' भी एक जवान मर्दपर खुले आम सड़कपर आक्रमण करके लट्ठबाज़ी कर सकती हैं!—क्रमशः उनके इतनी अधिक 'सबला' हो उठनेकी संभावना मेरी कल्पनाके भी परेकी वस्तु थीं। बहुत देर तक हत-बुद्धिकी तरह खड़े रहनेके बाद मैंने अपने कार्यके लिए प्रस्थान किया। मन ही मन कहने लगा कि स्त्री-स्वाधीनता भली है या बुरी, समाजके आनन्दकी मात्रा इससे घटेगी या बढ़ेगी,—यह विचार तो किसी और दिन करूँगा; किन्तु, आज अपनी आँखों जो कुछ देखा उससे तो मेरा सारा चित्त एकदम उद्भ्रान्त हो गया।

६

अभया और रोहिणीको उनके नये वास-स्थानमें,—नई घर-गिरिस्तीमें, प्रतिष्ठित करके जिस दिन मैं अपने निजके लिए आश्रय खोजने

रंगूनके राज-मार्गपर निकल पड़ा, उस दिन यह मैं नहीं कहना चाहता कि उन दोनोंके पारस्परिक संबंधके विषयमें मेरे मनमें बिल्कुल किसी तरहकी ग्लानि छू भी नहीं गई थी। किन्तु, इस अपवित्र विचारको दूर करनेमें भी मुझे अधिक देर नहीं लगी। क्योंकि, दो खास उम्रके स्त्री-पुरुषोंको किसी खास अवस्थामें देखने-मात्रसे ही उनके बीचमें किसी संबंध-विशेषकी कल्पना कर लेना कितनी भारी भ्रांति है, यह शिक्षा मुझे पहले ही मिल चुकी थी। और भविष्यत्की जटिल समस्याको भी भविष्यत्के ही हाथमें सौंप देनेमें मुझे किसी तरहकी हिचक नहीं होती, इसलिए, केवल अपना ही भार अपने कंधेपर लादकर उस दिन प्रभातके समय उनके नये वास-स्थानसे बाहर निकला।

आजकलकी तरह उस समय किसी भी नये बंगालीके बरमामें कदम रखते ही पुलिसके प्रकट और अप्रकट कर्मचारियोंका दल उनसे सवालपर सवाल करके, उनपर व्यंग कसके और अपमान करके, तथा बिना कसूर थानेमें खींच ले जाकर और डर दिखाकर हद दर्जेकी तकलीफ नहीं देता था। मनमें किसी तरहका पाप न हो, तो उन दिनों प्रत्येक परिचित-अपरिचितको निर्भयतासे घूमने-फिरनेका अधिकार था और आजकलकी तरह अपने आपको निर्दोष प्रमाणित करनेका अत्यंत गुरु भार भी नवागत बंगवासीके कंधेपर नहीं लादा गया था। इसलिए, मुझे खूब याद है कि स्वच्छन्द चित्तसे किसी आश्रय-स्थानकी खोज में उस दिन सुबहसे दो-पहर तक राह राह खूब घूमता फिरा। राहमें एक बंगाली से भेंट हुई। वह मज़दूरके सिरपर तरकारीका बोझा लिये हुए पसीना पोंछते पोंछते तेजीसे चला जा रहा था: मैंने पूछा, "महाशय, नन्द मिस्त्रीका घर कहाँ है, क्या आप बतला सकते हैं?"

वह आदमी रुककर खड़ा हो गया, "कौन नंद? क्या आप रिबिट-घरके नंद पागड़ीको खोज रहे हैं?"

मैंने कहा, "सो तो जानता नहीं महाशय, कि वे किस घरके हैं। उन्हों केवल यही परिचय दिया था कि वे रंगूनके विख्यात नन्द मिस्त्री हैं।"

उस आदमीने एक प्रकारका असम्मान-सूचक मुँहका भाव बनाकर कहा, "ओः,—मिस्तिरी! ऐसे तो सभी अपनेको मिस्तिरी कहलवाते हैं महाशय, पर मिस्तिरी होना सहज नहीं है। मर्कट साहबने जब मुझसे कहा था कि, हरिपद, तुमको छोड़कर मिस्तिरी होने लायक आदमी मुझे और कोई नहीं दीख पड़ता, तब क्या आप जानते हैं कि बड़े साहबके समीप कितनी अनिश्चित

अर्जियाँ पड़ी हुई थीं ?—करीब एक सौके । आरी और वसूलेका जोर हो, तो अर्जियोंकी जरूरत ही क्या है ? काटकर जो जोड़ दे सकता हूँ ! किन्तु महाशय, आप जानते हैं—"

मैंने देखा, अनजानमें ही मैंने इस आदमीके ऐसी जगहपर चोट पहुँचा दी है जिसकी मीमांसा होना कठिन है । इसलिए, चटसे मैंने रुकावट डालकर कहा, "फिर, नन्द नामके किसी भी आदमीको आप नहीं जानते ?"

"यह आपने खूब कहा ! चालीस वर्षसे रंगूनमें रह रहा हूँ, मैं जानता किसे नहीं ? नन्द क्या एक है ? तीन तीन नन्द हैं ! आपने नन्द मिस्तरी कहा न ?—कहाँसे आ रहे हैं आप ? शायद बंगालसे, न ?—ओह, तब कहो न कि टगरके मर्दको पूछ रहे हैं ?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "हाँ,—हाँ,—ज़रूर वही !"

वह बोला, "तो फिर यह कहिए । परिचय पाये बगैर पहिचानूँ कैसे ? आइए मेरे साथ । तक़दीरके ज़ोरसे नन्द कमा खा रहा है महाशय, नहीं तो नन्द पागड़ी भी क्या कोई मिस्तरी है ? महाशय, आप कौन है ?"

यह सुनकर कि मैं ब्राह्मण हूँ, उस आदमीने रास्तेपर ही झुककर मुझे प्रणाम किया । बोला, "वह आपकी नौकरी लगा देगा ? साहबसे कहकर आपकी तजबीज लगवा सकता है जरूर; किन्तु; दो महीनेकी तनख्वाह उसे पहिले ही घूसमें देनी होगी । दे सकेंगे क्या ? दे सकें तो अठारह-बीस आने रोजकी नौकरी लगा सकता है । इससे अधिककी नहीं ।"

मैंने उसे बताया कि फिलहाल तो मैं नौकरीकी उम्मेदवारीमें नहीं जा रहा हूँ,—थोड़े आश्रयकी तजवीज पानेकी गरजसे ही बाहर निकला हूँ; और, इसकी आशा नन्द मिस्त्रीने मुझे जहाजपर दिलाई थी ।

यह सुनकर हरिपद मिस्त्रीने आश्चर्यसे पूछा, "महाशय आप भले आदमी हैं, तो फिर, भले आदमियोंके 'मेस' में क्यों नहीं जाते ?"

मैंने कहा, "मेस कहाँ है, सो तो जानता ही नहीं ।"

उसे भी नहीं मालूम, यह उसने स्वीकार किया । किन्तु, उसे ढूंढ खोज करके बतानेकी आशा देकर वह बोला, "किन्तु, इस समय तो नन्दसे मुलाकात हो न सकेगी; वह कामपर गया है, टगर साँकल दिये सो रही है और पुकार कर उसकी नींद भंग करनेमें खैर नहीं !"

यह तो खूब जानता था । इसलिए रास्तेके बीच मुझे यहाँ वहाँ करते

देखकर उसने हिम्मत देकर कहा, "न गये वहाँ तो क्या! दादा ठाकुरका बढ़िया होटल सामने ही है। वहाँ स्नान-भोजन करके नींद ले लीजिए, उस बेला फिर देखा जायगा।"

हरिपदके साथ बातें करते करते जब मैं दादा ठाकुरके होटलमें पहुँचा तब होटलके डाइनिंग रूममें (=भोजनके कमरेमें) करीब पन्द्रह आदमी भोजन करने बैठे थे।

अँग्रेजीमें दो शब्द हैं 'इन्स्टिंक्ट' और 'प्रेज्युडिस', किंतु, हमारे यहाँ, केवल एक ही शब्द है 'संस्कार'। यह समझना कठिन नहीं है कि एक जो है सो दूसरा नहीं। अर्थात् दोनों शब्द अंग्रेजीमें भिन्न-भिन्न भाववाची हैं। किन्तु दादा ठाकुरके उक्त होटलके संपर्कमें आकर यह बात आज पहले ही पहल मुझे मालूम हुई कि हम लोगोंका जाति-भेद, खान-पान आदि वस्तुएँ 'इन्स्टिंक्ट' के हिसाबसे 'संस्कार' नहीं हैं. और यदि यह 'संस्कार' हों भी तो कितने तुच्छ हैं,—इनके बंधनसे मुक्त होना कितना सहज है, यह सब प्रत्यक्ष देखकर मैं आश्चर्यसे चकित हो गया। हमारे देशमें यह जो असंख्य जाति-भेदकी शृङ्खला है, इसे दोनों पैरोंमें पहनकर झनझनाते हुए विचरण करनेमें कितना गौरव और मंगल है, इसकी आलोचना तो उस समय रहने दूँगा: किन्तु यह बात मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ कि जो लोग इसे अपने छोटे-छोटे-से गाँवोंमें बिल्कुल बेखटके जमे हुए पुरखोंसे चला आता हुआ संस्कार बताकर स्थिर रखे हुए हैं, और इसके शासन-जालको तोड़नेकी दुरूहताके सम्बन्धमें जिन्हें लेशमात्र भी अविश्वास नहीं है, उन लोगोंने इस बड़े भारी भ्रमको जान बूझकर ही पाल रक्खा है। वास्तवमें, जिस देशमें खाने-पीनेमें छुआछूतका विचार प्रचलित नहीं है उस देशमें कदम रखते ही यह अच्छी तरह देखा जाता है कि यह छप्पन पुस्तोंकी खाने-पीनेमें छुआछूत रखनेकी संकल न जाने कैसे रातोंरात खुलकर अलग हो जाती है। विलायत जानेसे जाति चली जाती है, इसका एक मुख्य कारण यह बतलाया जाता है कि वहाँ निषिद्ध मांस खाना पड़ता है। यहाँ तक कि जो लोग अपने देशमें भी कभी मांस नहीं खाते, उनकी भी चली जाती है; कारण, जिन्होंने जाति मारनेका इजारा ले रक्खा है वे पंच लोग कहते हैं कि वहाँ मांस न खानेपर भी समझ लेना चाहिए कि 'खाया ही है'।

और उनका यह कहना निहायत ग़लत भी नहीं है। बर्मा तो तीन-चार

दिनका ही रास्ता है; फिर भी मैंने देखा है कि पन्द्रह आने बंगाली भले आदमी, जिनमें शायद ब्राह्मण ही अधिक होंगे,—क्योंकि इस युगमें उन्हींके लोभने सबको मात कर दिया है,—जहाजके होटलमें ही सस्ते दामोंमें पेट भर लेते हैं तब कहीं सूखी जमीनपर पदार्पण करते हैं। उस होटलमें मुसलमान और गोआनीज़ बावर्ची क्या राँधकर 'सर्व' करते हैं, यह सवाल अप्रिय हो सकता है; किन्तु, वे लोग हविष्यान्न पकाकर केलेके पत्तेमें नहीं परोसते होंगे, यह अनुमान करना तो भाटपाड़ेके भट्टाचार्योंके लिए भी शायद कठिन नहीं है,—फिर, मैं तो ठहरा साथका मुसाफिर। जो लोग कमसे कम यह सब नहीं खाना चाहते वे भी हार मानकर अन्तमें चाह-रोटी, फल-फूलादि तो खाते ही हैं। मैंने देखा है कि एकदम निषिद्ध मांससे लेकर मर्त्तमान और रंभा (केलेकी दो जातियाँ) तक सब-कुछ एकमें ही गड्डमगड्ड करके जहाजके कोल्ड-रूममें रक्खा जाता है और यह काम किसीकी नज़रसे छुपाकर करनेकी पद्धति भी मैंने जहाजके नियम-कानूनोंमें नहीं देखी। हाँ, फिर भी, आरामकी बात यह है कि बर्मा-जानेवाले यात्रीकी जाति जानेका कानून, शायद, किसी तरह शास्त्रकारोंकी 'सिविल कोड' की नज़र बचा गया है। नहीं तो, शायद फिर एक छोटी-मोटी ब्राह्मण-सभाकी जरूरत होती!—जाने दो, भले लोगोंकी बात आज यहीं तक रहे।

होटलमें जो लोग पंक्तिबद्ध होकर भोजन करने बैठे थे वे भले आदमी नहीं थे,—कमसे कम हम लोग उन्हें 'भला' नहीं मानते। सब लोग कारीगर थे, साढ़े दस बजेकी छुट्टीमें भोजन करने आये थे। शहरके इस हिस्सेमें एक बड़ा मैदान है जिसके तीन तरफ नाना आकार और प्रकारके कारखाने हैं, और इस बस्तीके बीच एक तरफको दादा ठाकुरका यह होटल है। यह एक विचित्र बस्ती है। एक कतारमें, एकसे एक सटी हुई, जीर्ण काठकी छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं। इनमें चीनी, बर्मा, मद्रासी, उड़िया, तैलंगी, चटगाँवके हिन्दू और मुसलिमान आदि सभी रहते हैं; और, रहते हैं हमारी जातिके बङ्गाली भी। इनके समीप मैंने पहले ही पहल यह सीखा है कि किसीको भी छोटी जातिका कहकर घृणा करके उसे दूर रखनेकी बुरी आदतका परित्याग करना कोई बड़ा कठिन काम नहीं है। जो नहीं करते वे अशक्यताके कारण न करते हों सो बात नहीं है; किन्तु, जिस कारण वे नहीं करते उसे प्रकाशित कर देनेसे झगड़ा बढ़ खड़ा होगा।

दादा ठाकुरने आकर यत्नपूर्वक मेरा स्वागत किया और एक छोटा-सा कमरा दिखाकर कहा, " जितने दिन आपकी इच्छा हो इस कमरेमें रहें और हमारे यहाँ भोजन करें। नौकरी-चाकरी लगनेके बाद दाम चुका देना। "

मैंने कहा, " मुझे तो आप पहिचानते नहीं हैं, एक महीने रहकर और खा-पीकर बिना दाम दिये भी तो चला जा सकता हूँ। "

दादा ठाकुरने अपना कपाल दिखाते हुए हँसकर कहा, "इसे तो आप साथमें ले नहीं जा सकते महाशय ? "

मैंने कहा, " जी नहीं, उसपर मुझे जरा भी लोभ नहीं है। "

दादा ठाकुर सिर हिलाते हिलाते इस दफे परम गंभीर भाव बनाकर बोले, " देखिए, तकदीर भी है महाशय ! इसके सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं, यही मैं सब लोगोंसे कहा करता हूँ। "

वास्तवमें यह केवल उनका जबानी जमाखर्च नहीं था। इस सत्यपर वे स्वयं किस कदर अकपटरूपसे विश्वास करते थे यह हाथोंहाथ प्रमाणित करनेके लिए, चार-पाँच महीनेके बाद, एक दिन वे प्रातःकाल बहुतोंकी धरोहर,—रुपये-पैसे, अँगूठी, घड़ी इत्यादि साथ लेकर केवल उनके निराट कपालोंको बर्मामें उस शून्य होटलके मेजपर जोरसे पटकनेके लिए छोड़कर अपने देश चले गये !

जो भी हो, उस समय दादा ठाकुरकी बात सुननेमें बुरी नहीं लगी और मैं भी उनका एक नया मवक्किल बनकर एक टूटा-सा कमरा दखल करके बैठ गया। रातको एक कच्ची उम्रकी बंगालिन दासी मेरे कमरेमें आसन बिछाकर भोजनके लिए जगह करने आई। पासमें ही डाइनिंग रूममेंसे लोगोंके भोजनका शोर सुनाई दे रहा था। मैंने पूछा, "मुझे भी वहाँ ही न कराके यहाँ भोजन कराने क्यों लाई ? "

वह बोली, "वे लोग तो हलके दर्जेके लोहा काटने-पीटनेवाले मजदूर हैं बाबू, उनके साथ आपको कैसे खिलाया जा सकता है ? "

अर्थात् वे थे ' वर्कमेन' और मैं था 'भला आदमी'; मैंने हँसकर कहा, "मुझे भी यहाँ क्या क्या काटना-पीटना पड़ेगा सो तो अब भी निश्चित नहीं हुआ है। जो भी हो, आज खिलाती हो तो खिला जाओ, किंतु, कलसे मुझे भी उन्हींके साथ उसी कमरेमें खिलाना।"

दासी बोली, "आप बाम्हन हैं, आपको वहाँ खानेकी ज़रूरत नहीं।"

"क्यों ? वे सब बंगाली तो हैं ? '

दासीने गलेको ज़रा धीमा करके कहा, "बंगाली जरूर हैं, किंतु उनमें एक डोम भी है।"

डोम! देशमें यह जाति अस्पृश्य-अछूत है। छू जानेपर स्नान करना 'कम्पलसरी' (=अनिवार्य) है या नहीं सो तो नहीं मालूम; किन्तु यह जानता हूँ कि कपड़े बदलकर गंगाजल सिरपर छिड़कना पड़ता है। अत्यन्त अचरजसे मैंने पूछा, "और सब ?"

दासी बोली, "और सब अच्छी जातिके हैं। कायथ हैं, कैवर्त (=केवट) हैं, अहीर हैं, लुहार—"

"ये लोग कोई आपत्ति नहीं करते ?"

दासी अब कुछ हँसकर बोली, "इस परदेशमें सात समुंदर पार आकर क्या इतनी बम्हनी चल सकती है बाबू ? वे कहते हैं, देश लौटकर गंगा-स्नान करके एक अंग-प्रायश्चित्त कर लेंगे।"

"भले ही कर लें किन्तु, मुझे मालूम है कि जो दो-चार आदमी बीच-बीचमें देश जाते हैं वे चलते-चलाते कलकत्तेकी गंगामें एकाध दफे गंगा-स्नान तो शायद कर लेते हों; किन्तु, अंग-प्रायश्चित्त कभी कोई नहीं करता। परदेशकी आव-हवाके प्रभावसे ये लोग उसपर विश्वास नहीं रखते।"

देखा कि होटलमें सिर्फ दो हुक्के हैं। एक तो ब्राह्मणके लिए, दूसरा जो ब्राह्मण नहीं हैं उनके लिए। भोजनादिके बाद कैवर्तके हाथसे डोम और डोमके हाथसे लुहार महाशयने हाथ बढ़ाकर हुक्का ग्रहण किया और स्वच्छंदतासे पिया। दुविधाका लेश भी नहीं। दो दिन बाद उस लुहारके साथ बात-चीत करते हुए मैंने पूछा, "अच्छा, इस तरह तुम्हारी जाति नहीं जाती ?"

लुहार बोला, "जाती क्यों नहीं महाशय, जाती तो है ही !"

"तब ?"

"उसने पहिले डोम कहकर अपना परिचय थोड़े ही दिया था; कहा था कि मैं कैवर्त हूँ। इसके बाद ही सब मालूम पड़ा।"

"तब तुम लोगोंने कुछ नहीं कहा ?"

"कहते और क्या महाशय, काम तो बहुत ही बुरा हुआ, यह तो मंजूर करना ही पड़ता है। लेकिन कहीं उसे शर्मिन्दगी न उठानी पड़े, यह सोचकर सबने जान-बूझकर मामलेको दबा दिया।"

"किन्तु देशमें होते तो क्या होता ?"

वह आदमी जैसे सिहर उठा। बोला, "तो, क्या फिर किसीकी रक्षा हो सकती थी?" इसके बाद ज़रा-सा चुप रहकर वह खुद ही बोलने लगा, "किन्तु आप जानते हैं बाबू, मैं बाम्हनोंकी बात नहीं कहता,—वे ठहरे वर्णोंके गुरु, उनकी बात ही अलहदा है। नहीं तो, बाकी और सब जात समान हैं। चाहे तेली, माली, तमोली, अहीर, नाई, बढ़ई, लुहार, कुम्हार और गंधी इन नौ शाखाओंके हिन्दू हों, चाहे हाड़ी-डोम आदि हों,—किसीके शरीरपर कुछ लिखा तो नहीं है: सभी भगवानके बनाये हैं, सब एक हैं, सभी पेटकी ज्वालासे जलकर परदेशमें आये हैं और लोहा पीट रहे हैं। और सोचिए तो बाबू, हरि मोडल डोम है तो क्या हुआ? शराब पीता नहीं, गाँजा छूता नहीं,—अचार विचारको देखकर कौन कह सकता है कि वह अच्छी जातका नहीं है,—डोमका लड़का है? और लक्ष्मण,—वह तो भले कायथका लड़का है, पर उसके आचार-विचारको देखो न एक बार, बच्चू दो दो बार जेल जाते जाते बचे हैं। हम सब नहीं होते तो अब तक जेलमें पड़े-पड़े मेहतरके हाथकी रोटियाँ खाते होते।"

न तो मुझे लक्ष्मणके संबंधमें ही किसी तरहका कुतूहल हुआ और न हरि मोडलने अपने डोमत्वको छिपाकर कितना बड़ा अन्याय किया इसकी मीमांसा करनेकी ही मेरी प्रवृत्ति हुई। मैं सिर्फ यही सोचने लगा कि जिस देशमें भले आदमी तक जासूस लगाकर अपने जन्मके पड़ौसीके छिद्र ढूँढ़कर और उसके पितृ-श्रद्धाको बिगाड़कर आत्म-तुष्टि लाभ करते हैं, उसी देशके अशिक्षित, नीच जातीय होनेपर भी इन लोगोंने एक अपरिचित बंगालीका इतना बड़ा भयंकर अपराध भी माफ कर दिया! और,—केवल इतना ही नहीं, पीछेसे इस परदेशमें कहीं उसे लज्जित और हीन होकर न रहना पड़े, इस आशंकासे उस प्रसंगको उठाया तक नहीं! यह सब असंभव कार्य किस तरह संभव हुआ विदेशी आदमी भले ही न समझ सकें, परंतु, हम तो समझ सकते हैं कि हृदयकी कितनी विशालता और मनकी कितनी बड़ी उदारता इसके लिए आवश्यक है! यह केवल उनके देश छोड़कर विदेश आनेका फल है, इसमें कोई संदेह नहीं है। खयाल हुआ कि इसी शिक्षाकी हमारे देशको इस समय सबसे अधिक ज़रूरत है। सारी जिन्दगी अपने छोटेसे गाँवमें ही बैठकर बिता देनेसे बढ़कर मनुष्योंको सब विषयोंमें छोटा संकुचित कर देनेवाला बड़ा शत्रु और कोई नहीं है। खैर, जाने दो इस बातको।

इन लोगोंके साथ मै बहुत दिनोंतक रहा। किन्तु, जब तक उन्हें यह न मालूम हुआ कि मै पढ़ा-लिखा हूँ, केवल तब तक ही मुझे इनके साथ घनिष्ठतासे मिलने-जुलनेका सुयोग मिलता रहा,—उनके सब तरहके सुख-दुखोंमें मैं भी हिस्सेदार बनता रहा, किन्तु जिस क्षण ही उन्हें मालूम हुआ कि मै भला आदमी हूँ और मुझे अँग्रेजी आती है, उसी क्षणसे उन्होंने मुझे गैर समझना शुरू कर दिया। अँग्रेजी जाननेवाले शिक्षित भले आदमियोंके समीप ये लोग आपद्-विपदके समय जाते जरूर हैं, उनसे सलाह-मशविरा भी करते हैं,—यह भी सच है, परन्तु, ये लोग न तो उनपर विश्वास ही करते हैं और न उन्हें अपना आदमी ही समझते हैं। देशके इस कुसंस्कारको वे आज भी दूर नहीं कर पाये हैं कि मै उन्हें छोटा समझकर मन ही मन घृणा नहीं करता हूँ, —पीछे पीछे उनका उपहास नहीं करता हूँ। केवल इसी कारण मेरे कितने सत्संकल्प इन लोगोंके बीच विफल हो गये हैं, मै समझता हूँ, उनकी कोई सीमा नहीं।—किन्तु खैर, आज इस बातको जाने दो।

मैने देखा कि बंगाली स्त्रियोंकी संख्या भी इस ओर कुछ कम नहीं है। यद्यपि उनके कुलोंका परिचय न देना ही अच्छा है; किन्तु, आज वे किसी और दूसरे ही रूपमें परिवर्तित होकर एकदम शुद्ध गृहस्थोंकी धर्मपत्नियाँ बन गई हैं। पुरुषोंके मनोंमें तो शायद आज भी 'जाति' की पुरानी स्मृति बाकी बनी हुई है, किन्तु, स्त्रियाँ तो न कभी देश आती हैं और न देशके साथ कोई संपर्क ही रखती हैं। उनके बच्चे-बच्चियोंसे पूछा जाय तो वे यही कहते हैं कि 'हम बंगाली हैं,'—अर्थात मुसलमान, क्रिस्तान, बर्मा आदि नहीं हैं,—बंगाली हिन्दू हैं। आपसमें विवाहादि आदान-प्रदान स्वच्छन्दतासे होता है, —केवल 'बंगाली' होना ही यथेष्ट है, और चटगाँवके किसी बंगाली ब्राह्मण-द्वारा मंत्र पढ़ा कर दोनोंके हाथ मिलाकर एक कर दिया जाना ही बस है। विधवा हो जानेपर विधवा-विवाहका रिवाज नहीं है,—सो शायद इसलिए कि पुरोहित मंत्र पढ़नेको राजी नहीं होता। परंतु, वैधव्य भी ये पसंद नहीं करतीं और फिर एक नई गृहस्थी बसा लेती हैं। उनके लड़के-बच्चे होते हैं और वे भी कहते हैं कि 'हम बंगाली हैं,' तथा उनके विवाहमें वही पुरोहित आकर वैदिक मंत्र पढ़ाकर विवाह करा जाते हैं,—इस दफे उन्हें तिल भर भी आपत्ति नहीं होती। पतिके द्वारा अत्यन्त दुःख-यंत्रणा पानेपर ये दूसरेका आश्रय भी ग्रहण करती हैं जरूर, किंतु, यह अत्यन्त लज्जाकी बात समझी

जाती है औ इसके लिए दुःख-यंत्रणाका परिमाण भी अत्यधिक होना चाहिए। परंतु फिर भी, ये वास्तवमें हिन्दू हैं और दुर्गा-पूजासे शुरू करके षष्ठी महाकाली आदि कोई भी पूजा नहीं छोड़तीं।

७

रास्तेमें जिन लोगोंके सुख-दुःखमें हिस्सा बँटाता हुआ मैं इस परदेशमें आकर उपस्थित हुआ था, घटना-चक्रसे वे तो रह गये शहरके एक छोरपर और मुझे आश्रय मिला शहरके दूसरे छोरपर। इसलिए, इन पन्द्रह-सोलह दिनोंके बीच उस ओर जा न सका। इसके सिवाय, सारे दिन नौकरीकी उम्मेदवारीमें घूमते घूमते इतना थक जाता था कि शामके कुछ पहले वास-स्थान पर लौटनेपर इतनी शक्ति ही नहीं बचती थी कि मैं कहीं भी बाहर जाऊँ। क्रम क्रमसे जैसे जैसे दिन बीतने लगे मेरे मनमें यह धारणा होने लगी कि इस सुदूर परदेशमें आने पर भी नौकरी प्राप्त करना मेरे लिए ठीक उतना ही कठिन है जितना कि देशमें था।

अभयाकी बात याद आई। जिस आदमीपर भरोसा करके वह घर छोड़कर अपना पति खोजने आई है, पता न लगने पर उस आदमीका क्या हाल होगा। घर छोड़कर बाहर आनेका मार्ग काफी खुला होने पर भी लौटनेका मार्ग ठीक उतना ही प्रशस्त बना रहेगा, इतनी बड़ी आशाकी कल्पना करनेका साहस बंगाल देशकी आब-हवामें पले होनेके कारण मुझमें नहीं है। उन्होंने अधिक दिनों तक अपना निर्वाह कर सकने लायक धन-बल संग्रह करके पैर नहीं बढ़ाया है, इसका अनुमान करना भी मेरे लिए कठिन नहीं है। बाकी बचा केवल एक रास्ता जो कि पन्द्रह आने बंगालियोंका एकमात्र सहारा है,—अर्थात्, महीने पन्द्रह दिनके बाद पराई नौकरी करके मरण-पर्यन्त किसी तरह शरीरमें हाड़-मांस बनाये रहकर जीते रहना। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि रोहिणी बाबूके लिए भी इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं था, किन्तु, रंगूनके इस बाजारमें केवल अपना ही पेट भरने लायक नौकरी जुटानेमें जब मेरा यह हाल है तब एक स्त्रीको अपने कंधेपर लादे हुए अभयाके उस बेचारे बिना ढंग-ढौलके गुमसुम 'भइया' का क्या हाल होगा इसकी कल्पना करके मैं भयभीत हो उठा। मैंने स्थिर किया कि जैसे बने, कल एक दफे जाकर उनकी खबर जरूर लूँगा।

दूसरे दिन शामके समय करीब दो कोस ज़मीन खूँदकर उनके वास-स्थानपर पहुँचा और देखा कि बाहरके बरामदेमें एक छोटेसे मोढ़ेपर रोहिणी भइया बैठे हुए हैं। उनका मुख-मण्डल बादल छाये हुए 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' की तरह गुरु गंभीर हो रहा है। बोले, "ओह श्रीकान्त बाबू!—आप अच्छे तो हैं?"

मैं बोला, "जी, अच्छा ही हूँ।"

"जाइए, भीतर जाकर बैठिए।"

मैंने डरते हुए पूछा, "आप लोग तो सब अच्छे हैं?"

"हूँ,—भीतर जाइए न, वे घरमें ही हैं।"

"अच्छा जाता हूँ,—आप भी आइए न?"

"नहीं, मैं यहींपर कुछ देर आराम करूँगा। परिश्रम करते-करते एक तरहसे मेरी हत्या ही हुई जाती है,—दो घड़ी पैर फैलाकर कुछ बैठ ही लूँ।" वे परिश्रमकी अधिकतासे मरे हुएसे हो गये हैं, उनके चेहरेपरसे यह प्रकाशित न होते हुए भी मैं मन ही मन कुछ उद्विग्न हो उठा। रोहिणी भइयाके भीतर भी इतनी गम्भीरता इतने दिनसे प्रच्छन्न रूपमें वास कर रही है, अपनी आँखों देखे बिना यह विश्वास करना कठिन था। किन्तु मामला क्या है?—मैं खुद भी तो रास्ते रास्तेकी धूल छानकर ऊब उठा हूँ। मेरे यह रोहिणी भइया भी क्या—

किवाड़ोंकी आड़मेंसे अभयाने अपना हँसता हुआ चेहरा बाहर निकालकर गुपचुप इशारा करके मुझे भीतर बुलाया। दुबिधामें पड़कर मैंने कहा, "चलिए न रोहिणी भइया, भीतर चलकर गप-शप करें।"

रोहिणी भइयाने जवाब दिया, "गप-शप!—इस समय मर जाऊँ तो जान बचे, यह जानते हो श्रीकान्त बाबू?"

"नहीं जानता," यह मुझे स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने जवाबमें केवल एक प्रचण्ड उसास छोड़ी और कहा, "दो दिन बाद ही मालूम हो जायगा।"

अभयाके दुबारा गुप-चुप बुलानेपर बाहर अधिक देर बहस न करके मैंने अन्दर प्रवेश किया। भीतर रसोई-घरके सिवाय दो और कमरे सोनेके हैं। सामनेका कमरा ही बड़ा है और उसीमें रोहिणी बाबू सोते हैं। एक ओर रस्सीकी खाटपर उनके बिस्तर हैं। अन्दर घुसते ही देखा: फर्शके ऊपर आसन बिछा है, एक ओर रकाबीमें पूरी-तरकारी, थोड़ा-सा हलुआ और एक

गिलास जल रक्खा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि ज्योतिषसे पता लगाकर यह आयोजन दोपहरसे ही कुछ मेरे लिए तैयार नहीं किया गया है, इसलिए क्षणभरमें ही मैं समझ गया कि कुछ लड़ाई झगड़ा चल रहा था। इसी लिए रोहिणी भइयाका मुँह बादलोंसे ढका हुआ है, इसीलिए वे मर जाऊँ तो जान बचनेकी बात कर रहे हैं। मैं चुपचाप खाटपर जाकर बैठ गया। अभयाने थोड़ी-सी दूर खड़े होकर पूछा, "आप अच्छे तो हैं? इतने दिनों बाद शायद गरीबोंका खयाल आया है?"

भोजनके थालको दिखाकर मैंने कहा, "मेरी बात पीछे होगी। किन्तु यह क्या है?"

अभया हँसी और कुछ देर चुप रहकर बोली, "यह कुछ नहीं है, आप कैसे हैं सो कहिए।'

"कैसा हूँ सो मैं खुद नहीं जानता, दूसरेको किस तरह बताऊँ?" फिर कुछ सोचकर बोला, "जब तक कोई नौकरी न मिल जाय तब तक इस प्रश्नका जवाब देना कठिन है। रोहिणी बाबू कहते थे—" मेरे मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई। रोहिणी भइया अपनी फटी चट्टियोंसे अस्वाभाविक फटर फटर शब्द करते हुए भीतर घुस आये और किसीकी ओर भी दृष्टिपात किये बगैर उन्होंने पानीका गिलास उठा लिया। एक ही साँसमें उन्होंने उसे आधा खाली कर दिया। बाकी दो-तीन घूँटमें जबर्दस्ती पीकर शून्य गिलास काठकी मेजपर रख दिया, और वे यह कहते कहते बाहर चल दिये, "जाने दो, खाली पानी पीकर ही पेट भर लूँ। मेरा यहाँपर और कौन बैठा है जो भूख लगनेपर खानेको देगा!"

मैंने अवाक् होकर अभयाकी ओर ताका। पल-भरके लिए उसका मुँह सुर्ख हो गया; किन्तु, उसी क्षण उसने अपने आपको सँभाल लिया और हँसकर कहा, "भूख लगने पर जलके गिलासकी अपेक्षा भोजनका थाल ही मनुष्यको पहले दीखता है।"

रोहिणीने यह बात कानोंपर ही नहीं दी, और वे बाहर चल दिये; किन्तु, आधा मिनट खत्म होनेके पहले ही वापिस लौट आये और किवाड़ोंके सामने खड़े होकर मुझे संबोधन कर बोले, "सारे दिन आफिसमें मेहनत करनेके बाद भूखके मारे सिर चक्कर खा रहा था श्रीकान्त बाबू, इसीलिए उस समय आपसे बात न कर सका, कुछ ख़याल न करिएगा।"

मैंने कहा, "नहीं।"

उन्होंने फिर कहा, " आप जहाँ ठहरे हैं वहाँ मेरे लिए भी जरा-सा बन्दोबस्त कर सकते हैं?"

उनके मुँहकी भाव-भंगीको देखकर मै हँस पड़ा; बोला, "किन्तु वहाँपर पूड़ियो और मोहन-भोगका डौल नहीं है।"

रोहिणी भइया बोले, "जरूरत ही क्या है! भूखके समय कोई यदि जरा-सा गुड़ और जल दे देवे तो वही अमृत है। यहाँ तो वह भी कौन देता है?"

मैंने जाननेकी इच्छासे अभयाकी ओर दृष्टि डाली। तुरन्त ही वह धीरेसे बोली "सिर दर्द करता था इसलिए बेवक्त सो गई थी, और इसी कारण भोजन बनानेमें आज जरा-सी देर हो गई श्रीकान्त बाबू।"

मैंने आश्चर्यके साथ कहा, "बस, यही अपराध है?"

अभयाने उसी तरह शान्त भावसे कहा, "यह क्या कोई तुच्छ अपराध है श्रीकान्त बाबू?"

"तुच्छ नहीं तो और क्या है?"

अभया बोली, "आपके समीप तुच्छ हो सकता है, किन्तु जो महाशय अपनी इस फिजूलकी गले-पड़ूको खाने देते हैं वे कैसे माफ़ करेंगे? मेरा सिर दर्द करे तो उनका काम कैसे चल सकता है?"

रोहिणी बाबू एकदम तड़क कर गर्ज उठे और बोले, "तुम गले-पड़ू हो मैंने यह कब कहा?"

अभया बोली, "कहोगे क्यों, हजार तरहसे दिखा तो रहे हो?"

रोहिणी भइया बोले, "दिखा रहा हूँ! ओह, तुम्हारे मनमें जलेबी जैसा पेंच है! यह तुमने मुझसे कब कहा था कि सिर-दर्द कर रहा है?"

अभयाने कहा, "कहनेसे लाभ ही क्या था? क्या तुम विश्वास करते?"

रोहिणी भइया मेरी ओर पलटकर ऊँचे कण्ठसे बोल उठे, "सुनिए श्रीकान्त बाबू, ये सब बातें सुन रखिए। इन्हींके लिए मैंने देशका त्याग किया,---घर लौटनेका रास्ता बन्द हो गया,---अब इनके मुँहकी बात सुनिए। ओह—"

अभयाने भी इस दफे गुस्सेसे जवाब दिया, "मेरा जो होना होगा हो जायगा, तुम्हारी जब इच्छा हो देश लौट जाओ! मेरे लिए तुम क्यों इतना कष्ट सहोगे? तुम्हारी कौन होती हूँ मैं? इस तरह ताना कसनेकी अपेक्षा--"

उसकी बात पूरी भी न होने पाई थी कि रोहिणी भइया करीब करीब

चीत्कार कर उठे, "सुनिए श्रीकान्त बाबू, दो रोटी पका देनेके लिए,—ये बातें आप जरा सुन रखिए। अच्छा, आजसे कभी तुमने यदि मेरे लिए रसोई-घरमें पैर रक्खा तो तुम्हें बहुत ही बड़ी—बल्कि मै होटलमें—" कहते कहते उनका गला रुलाईसे भर आया, वे धोतीका छोर मुँहपर लगाकर तेजीसे कदम रखते हुए मकानके बाहर हो गये। अभयाने अपना उतरा हुआ चेहरा नीचे झुका लिया,—न जाने आँखोंके आँसू छिपानेके लिए या यों ही; किन्तु मै तो एकदम काठ हो गया। कुछ दिनोंसे दोनोंके बीच अनबन हो रही है, यह तो आँखोंसे ही देख लिया; किन्तु, इसका गहरा हेतु दृष्टिसे बिल्कुल परे होने पर भी वह क्षुधा और भोजन बनानेकी त्रुटिसे बहुत बहुत दूर है, यह समझनेमें मुझे जरा-सा भी विलम्ब नहीं लगा। तो फिर, क्या पति खोजनेकी बात भी—

मैं उठकर खड़ा हो गया। इस नीरवताको भंग करनेमें मुझे खुद भी जैसे संकोच होने लगा। कुछ इधर उधर करके अन्तमें मैने कहा, "मुझे बहुत दूर जाना है,—इस समय तो अब चलता हूँ।"

अभयाने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "अब कब आइएगा?"

"बहुत दूर—!"

"तो फिर जरा ठहर जाइए" कहकर अभया बाहर चली गई। पाँच-छह मिनट बाद लौटकर आई और मेरे हाथमें एक टुकड़ा कागज देकर बोली, "जिस कामके लिए मै आई हूँ वह सब इसमें लिख दिया है। पढ़कर जो ठीक जँचे सो कीजिएगा। मैं आपसे कुछ अधिक कहना नहीं चाहती।" इतना कहकर गलेमें आँचल डालकर आज उसने मुझे प्रणाम किया और फिर उठकर पूछा, "आपका ठिकाना क्या है?"

सवालका जवाब देकर मैं उस छोटेसे कागजको मुट्ठीमें छिपाकर धीरे धीरे निकल आया। बरामदेके बाहरका वह मोढ़ा इस समय शून्य था। रोहिणी भइयाको भी मै आसपास कहीं न देख सका। डेरे पर पहुँचने तक मै अपना कुतूहल दमन न कर सका। पासमें ही रास्तेके बगलमें एक छोटी-सी चायकी दुकान देखकर उसमें घुस गया और लैम्पके उजालेमें मैने उस पत्रको अपनी आँखोंके सम्मुख खोलकर रख लिया। पेंसिलकी लिखावट थी किंतु ठीक पुरुषके-से हस्ताक्षर थे। सबसे पहले उसने अपने पतिका नाम और उसका पुराना ठिकाना देकर नीचे लिखा था, "आज आप जो अपने मनमें धारणा लिये जा रहे हैं सो मैं जानती हूँ; और विपत्तिके समय मुझे आपका

कितना भरोसा है सो भी आप जानते हैं। इसीलिए मैंने आपका ठिकाना पूछ लिया है।"

अभयाके इस लेखको मैंने बार बार पढ़ा परंतु उससे इन कुछ थोड़ी-सी बातोंके सिवाय और किसी भी अतिरिक्त बातका अन्दाज़ा नहीं लगा सका। आज इन लोगोंका परस्परका व्यवहार अपनी नजरसे देखकर कोई बाहरी आदमी जो भी सोच सकता है उसका अनुमान करना अभया सरीखी बुद्धि-मती रमणीके लिए बिल्कुल ही कठिन नहीं है। किन्तु फिर भी वह अंदाज़ सही है या ग़लत, इस सम्बन्धमें बिन्दु-मात्र भी उसने इशारा नहीं किया। उसके पतिका नाम और ठिकाना तो मैंने पहले ही सुना है, पर विपत्तिके समय वह उसकी खोज करना चाहती है या नहीं, अथवा और कौन-सी विपत्ति अवश्यंभावी समझकर उसने मेरा पता ले लिया है,—आदि किसी बातका आभास तक भी मैं उस लेखमें खोजकर बाहर न निकाल सका। बातचीतसे अनुमान होता है कि रोहिणी किसी दफ्तरमें नौकरी पा गया है। किस तरह पा गया है सो भी मुझे मालूम नहीं हुआ। पर हाँ, खाने-पीनेकी दुश्चिन्ता कमसे कम मेरी तरह उन्हें नहीं है,—पूड़ियाँ भी खानेको मिल जाती हैं। फिर भी, अभयाने किस किस्मकी विपत्तिकी संभावनाके लिए मुझे तैयार कर रक्खा है और ऐसा करनेसे उसने क्या लाभ सोच रक्खा है, सो अभया ही जाने।

बाहर निकालकर रास्ते-भर मैं केवल इन्हीं लोगोंके विषयमें सोचता सोचता डेरेपर पहुँचा। कुछ भी स्थिर नही कर सका। लेकिन यही निश्चय किया कि अभयाका पति कोई भी क्यों न हो, और चाहे जहाँ चाहे जिस तरह क्यों न हो, स्त्रीकी विशेष अनुमति वगैर उसे खोज निकालनेका कुतूहल मुझे रोक ही रखना होगा।

दूसरे दिनसे मैं फिर अपनी नौकरीकी उम्मीदवारीमें लग गया; किन्तु हजारों चिन्ताओंमें भी अभयाकी चिन्ताको मनके भीतरसे झाड़कर नहीं फेंक सका।

किन्तु, चिन्ता चाहे जितनी ही क्यों न करूँ, दिनके बाद दिन समान भावसे लुढ़कने लगे। इधर भाग्यवादी दादा ठाकुरका प्रफुल्ल चेहरा धीरे धीरे मेघाच्छन्न होने लगा। भोजनमें तरकारियाँ भी पहले परिमाणमें और फिर संख्यामें धीरे धीरे विरल होने लगीं। किन्तु, नौकरीने मेरे संबंधमें जरा भी अपना मत-परिवर्तन नहीं किया। जैसी नज़रसे उसने पहले दिन देखा था,

महीने भरसे अधिक बीतनेके बाद भी ठीक उसी नजरसे वह देखती रही। तब न जाने किसके ऊपर मैं क्रमशः उत्कंठित और विरक्त होने लगा। किन्तु, उस समय तक मैं यह नहीं जानता था कि जब तक नौकरी करनेकी पूरी जरूरत न हो तब तक वह दर्शन नहीं देती। यह ज्ञान एक दिन एकाएक रास्तेमें रोहिणी बाबूको देखकर प्राप्त हुआ। वे बाजारमें रास्तेके किनारे शाक-सब्जी खरीद रहे थे। मैं चुपचाप उनके निकट खड़ा होकर देखता रहा। यद्यपि उनके शरीरपरके कपड़े, जूते आदि जीर्णताकी प्रायः चरम सीमाको पहुँच चुके हैं—भयंकर कड़ी धूपमें सिरपर एक छतरी तक नहीं है, किन्तु, खाद्य पदार्थ वे बड़े आदमियोंकी तरह खरीद रहे हैं।—इस कार्यमें ढूँढ़-खोज और जाँच-परखकी भी कोई हद नहीं है। झंझट और जहमत चाहे जितनी क्यों न उठानी पड़े, अच्छी चीज़ खरीदनेकी ओर उनके प्राण लगे हुए हैं। पलक मारते सारा व्यापार मेरी नज़रके सामने तैर आया। इस खरीद-बिक्रीके भीतरसे उनका व्यग्र व्याकुल प्रेम कहाँ जाकर पहुँच रहा है, यह मानो मैं सूर्यके प्रकाशके समान सुस्पष्ट देख सका। क्यों यह सब लेकर उन्हें अपने मकानपर पहुँचना ही चाहिए और क्यों उन्हें इन सब चीजोंका मूल्य देनेके लिए नौकरी खोजनी ही पड़ी, इस समस्याकी मीमांसा करनेमें ज़रा-सी देर न लगी। आज मैं साफ साफ समझ गया कि क्यों इन मनुष्योंके जंगलमें उन्होंने अपना रास्ता पा लिया है और क्यों मैं अभी तक असफल रहा हूँ।

यह दुबला-पतला आदमी रंगूनके राजमार्गपर एक बड़ी-सी गठरी हाथमें लिए हुए सैकड़ों जगह फटे हुए मैले कपड़े पहने घरकी ओर जा रहा है, आड़मेंसे मैंने उसके परतृप्त मुखकी ओर नजर की। अपनी ओर नजर करनेका मानो उसे अवकाश ही नहीं है। जिस वस्तुसे उसका हृदय परिपूर्ण हो रहा है उससे उसके निकट कपड़े-लत्तोंका दैन्य मानों एकबारगी अकिंचित्कर हो गया है। और मैं अपने कपड़ोंके साधारणसे मैलेपनके ही कारण मानो प्रत्येक कदमपर शर्मके मारे सिकुड़कर जड़ हुआ जाता हूँ। रास्तेपरसे चलनेवाले बिल्कुल अपरिचित व्यक्तिकी भी अपने ऊपर नजर पड़ते देख शर्मके मारे मरा जाता हूँ!

रोहिणी भइया चले गये। मैंने उन्हें नहीं पुकारा और दूसरे क्षण ही वे लोगोंके बीच अदृश्य हो गये। क्यों, सो मुझे मालूम नहीं, पर इस बार आँसुओंके मारे मेरी दोनों आँखें धुँधली हो गईं। चादरके छोरसे उन्हें पोंछते

हुए रास्तेके किनारे धीरे धीरे मैं अपने डेरेपर लौट आया और बार बार मन ही मन कहने लगा, इस प्रेमसे बढ़कर शक्ति, इस प्रेमसे बढ़कर शिक्षक संसारमें शायद और कोई नहीं। ऐसी कोई बड़ी बात नहीं जिसे यह न कर सके।

फिर भी, बहुत युगोंका संचित अंध संस्कार मेरे कानोंमें चुप-चाप कहने लगा,--यह शुभ नहीं है, यह पवित्र नहीं है,--अन्ततक इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

डेरेपर पहुँचते ही एक बड़ा लिफाफा मिला। खोलकर देखा, नौकरीकी दरख़्वास्त मंजूर हो गई है। सागौनकी लकड़ीका एक बड़ा भारी व्यापारी अनेक लोगोंके आवेदन-पत्र होते हुए भी मुझ गरीबपर ही प्रसन्न हुआ है। भगवान् उसका भला करें।

नौकरी नामक वस्तुसे पुराना परिचय न था इसलिए, उसे पाकर भी मनमें संदेह बना रहा कि बहुत दिनोंतक बनी रहेगी या नहीं। मेरे जो साहब हुए थे वे सच्चे साहब (अंग्रेज) होकर भी, देखा कि, बंगला भाषा खूब जानते हैं, क्योंकि, कलकत्तेके आफिससे बदलकर बर्मा आये थे।

दो हफ्तेकी नौकरीके उपरान्त ही उन्होंने बुलाकर कहा, " श्रीकान्त बाबू, तुम इस टेबलपर आकर काम करो, तनख्वाह भी इससे करीब ढाई गुनी पाओगे।"

मैंने प्रकट रूपसे तथा मन ही मन भी साहबको लाखों आशीर्वाद देते हुए उस हड्डी-पसली निकली हुई टेबलको छोड़कर एकदम हरी बनात मढ़ी हुई टेबलपर दख़ल जमा लिया। मनुष्यका जब भला होना होता है तब इसी तरह होता है,—हम लोगोंकी होटलके दादा ठाकुरने बिल्कुल ही मिथ्या नहीं कहा है।

किरायेकी गाड़ीपर चढ़कर यह खुशखबरी अभयाको देने गया। रोहिणी भइया आफिससे लौटकर जल-पान करने बैठे थे; किन्तु, आज उन्हें केवल पानी पीकर अपनी भूख मिटाते हुए नहीं देखा। बल्कि, आज जिस तरह वे अपनी भूख पूरी कर रहे थे, उस तरह पूरी करते संसारमें और चाहे जिसे आपत्ति हो, मुझे तो नहीं थी। अतएव यह कहना फिजूल है कि अभयाके भोजनके प्रस्तावपर मैंने अपनी असम्मति नहीं प्रकट की। खाना-पीना शेष होते ही रोहिणी भइया कोट पहिरने लगे। अभया ने खिन्न कण्ठसे कहा, "तुमसे

मैं बराबर कहती आती हूँ रोहिणी भइया, कि यह शरीर लेकर इतना परिश्रम मत किया करो, क्या तुम किसी तरह भी न सुनोगे ? अच्छा हम लोग क्या करेंगे अधिक रुपयोंका ? दिन तो हमारे अच्छी तरह कट ही रहे हैं।"

रोहिणी भइयाके चक्षुओंसे मानों स्नेह झरने लगा। वे कुछ हँसकर बोले, "अच्छा, अच्छा, सो ठीक। एक रसोइया तक तो रख नहीं सकता, चूल्हेके नजदीक दोनों बेला पचते पचते तुम्हारी तो देह सूख गई है।" वे इतना कहकर, पान खाकर, जल्दी जल्दी कदम रखते हुए बाहर चल दिये।

अभया एक छोटी साँस दबाकर, ज़बरन जरा हँसकर बोली, "देखिए तो श्रीकान्त बाबू, इनका अन्याय ! सारे दिन जी-तोड़ मेहनत करनेके बाद घर आकर कुछ आराम करें, सो तो नहीं, अब रातको भी नौ बजे तक लड़कोंको पढ़ाने बाहर चले गये हैं। मैं इतना कहती हूँ, पर किसी तरह सुनते ही नहीं। दो आदमियोंकी रसोईके लिए रसोइया रखनेकी, कहो तो, ज़रूरत ही क्या है ? है न यह सब इनकी ज्यादती ?" इतना कह कर उसने एक ओरको आँखें फेर लीं।

मैं धीरेसे कुछ हँस दिया। 'ना' या 'हाँ' जवाब देना मेरे लिए संभव नहीं था,—मेरे बिधाताके लिए भी संभव था या नहीं, इसमें भी संदेह है।

अभया उठकर गई और एक पत्र लाकर उसने मेरे हाथपर रख दिया। कुछ दिन हुए वह बर्मा रेलवे कंपनीके आफिससे आया था। बड़े साहबने दुःख प्रकाशित करते हुए लिखा था कि अभयाका पति करीब दो वर्ष पहले किसी बहुत बड़े अपराधके कारण कम्पनीकी नोकरीसे बर्खास्त कर दिया गया है, तबसे वह कहाँ चला गया सो वे नहीं जानते।

हम दोनों ही बहुत देर तक सन्न होकर बैठे रहे। अन्तमें अभयाने ही मौन तोड़ा, "अब आप क्या सलाह देते हैं ?"

मैंने धीरेसे कहा, "मैं क्या सलाह दूँ ?"

अभया सिर हिलाकर बोली, "नहीं, सो नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति-में आपको ही कर्तव्य स्थिर कर देना होगा। इस पत्रके मिलनेके बादसे ही मैं बड़ी आशासे आपकी राह देख रही हूँ।"

मैंने मन ही मन कहा, बहुत खूब ! मेरी राय लेकर ही घरसे बाहर निकली थीं न, जो मेरी सलाहके लिए राह जोह रही हो !

बहुत देरतक चुप रहकर पूछा, "घर लौट जानेके सम्बन्धमें आपका क्या मत है?"

अभया बोली, "कुछ भी नहीं। आप कहें तो जा सकती हूँ, किन्तु मेरा तो वहाँ कोई है नहीं।"

"रोहिणी बाबू क्या कहते हैं?"

"वे कहते हैं कि नहीं लौटेंगे। कमसे कमसे कम दस बरस तक तो वे उस ओर मुँह भी नहीं फिरायँगे।"

बहुत देर तक चुप रहकर मैंने कहा, "वे क्या आपका बोझा बराबर सँभाले रह सकेंगे?"

अभया बोली, "पराये मनकी बात, कहिए किस तरह जानूँ? इसके सिवाय वे खुद भी किस तरह जान सकते हैं?" इतना कहकर क्षण-भर वह चुप रही, फिर बोली, "एक बात और है। मेरे लिए वे जरा भी जिम्मेदार नहीं हैं। दोष कहो, भूल कहो, जो कुछ है सो मेरी है।"

गाड़ीवानने बाहरसे पुकारा, "बाबू, और कितनी देर लगेगी?"

जैसे मेरी जान बच गई। इस अवस्था-संकटके भीतरसे सहसा परित्राण पानेका कोई उपाय मुझे खोजे नहीं मिल रहा था। यह सच है कि विश्वास करनेको मेरा दिल नहीं चाहता था कि अभया वास्तवमें ही अपार सागरमें गिरकर गोते खा रही है, किन्तु, मैंने स्त्रियोंकी इतने तरहकी उलटी-सुलटी अवस्थाएँ देखी हैं कि बाहरसे इन आँखोंपर विश्वास कर लेना कितना बड़ा अन्याय है, सो मैं निःसंशय रूपसे समझता था।

गाड़ीवानका एक दफे और बुलाना था कि मैं क्षण-भर भी विलम्ब किए बगैर उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं शीघ्र ही और एक दिन आऊँगा।" इतना कहकर मैं नेर्जीसे बाहर हो गया। अभया और कुछ न बोली। निश्चल मूर्तिकी तरह जमीनकी ओर देखती रह गई।

८

गाड़ीमें बैठते ही गाड़ी चल दी; किन्तु, दस हाथ भी नहीं गया था कि याद आया, छड़ी तो कहीं भूल आया हूँ। तुरत गाड़ी खड़ी की और मकानमें प्रवेश करते ही देखा कि ठीक दरवाजेके सामने अभया उलटी पड़ी

है और बाणसे बिंधे हुए पशुकी तरह अव्यक्त वेदनासे पछाड़ खाकर मानो प्राण विसर्जन कर रही है ।

क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ, सो मेरी बुद्धिके परेकी वस्तु थी । वज्राहतकी तरह कुछ देर मग्न रहकर उसी तरह चुपचाप लौट आया । अभया जिस तरह रो रही थी उसी तरह रोती रही । उसे यह मालूम ही न हो सका कि उसकी इस निगूढ़ असीम वेदनाका एक मौन साक्षी भी इस जगतमें विद्यमान् है ।

राजलक्ष्मीका अनुरोध मैं भूला नहीं था । पटनेको पत्र लिखनेकी बात, जब आया था तभीसे, मेरे मनमें थी । किन्तु, पहली बात तो यह कि संसारमें जितने भी कठिन काम हैं, उनमें चिट्ठी लिखनेको मैं किसीसे भी कम नहीं समझता । इसके सिवाय, फिर लिखूँ भी क्या ? किन्तु, अभयाका रोना मेरे दिलमें इस तरह भारी हो उठा कि उसमेंका कुछ अंश बाहर निकाल दिये वगैर मेरी गति ही नहीं है, ऐसा मालूम होने लगा । इसीलिए, डेरे पर पहुँचते ही कागज-कलम जुटाकर बाईजीको पत्र लिखने बैठ गया ।—और उसको छोड़कर मेरे दुःखका अंश बँटानेवाला था ही कौन ? दो तीन घण्टे बाद इस 'साहित्य-चर्चा' को समाप्त करके जब मैंने कलम रक्खी तब रातके बारह बज गये थे । किन्तु, कहीं सुबह दिनके उजालेमें उस चिट्ठीको भेजनेमें लज्जा न आने लगे, इसलिए, मिजाज गरम रहते रहते ही मैं उसे उसी समय डाक-बाक्समें छोड़ आया ।

मुझे संदेह था कि एक भले घरकी स्त्रीकी निदारुण वेदनाका गुप्त इतिहास और किसी दूसरी स्त्रीपर प्रकट करना चाहिए या नहीं: किन्तु, अभयाके इस परम और चरम संकटके समय वह राजलक्ष्मी, जिसने कि एक दिन प्यारी-बाईकी मर्मान्तिक तृष्णा दमन की थी, उसके लिए क्या नेक सलाह देती है, यह जाननेकी आकांक्षाने मुझे एकदम बेकाबू कर दिया । किन्तु अचरजकी बात यह है कि इस सवालको उलट-पलटकर मैंने एक बार भी नहीं सोचा । अभयाके पतिका पता न लगनेकी समस्या भी बार बार मनमें आ रही थी, किन्तु पता लगनेपर यह समस्या और भी अधिक जटिल हो सकती है, यह चिन्ता एक दफे भी उदित नहीं हुई । और, इस गोरखधंधेको सुलझानेका भार भी विधाताने मेरे ही ऊपर निर्दिष्ट कर रक्खा है सो भी किसने सोचा था ?

तीन-चार दिनके बाद मेरा एक बर्मा क्लार्क टेबलपर एक फाइल रख गया। उस पर नीली पेंसिलसे लिखा हुआ बड़े साहबका मन्तव्य था। उन्होंने मुझे 'केस' का फ़ैसला करनेका हुक्म दिया था। मामलेको शुरूसे आखीरतक पढ़कर कुछ मिनटके लिए मैं मग्न होकर रह गया! घटना संक्षेपमें यह थी कि हमारे प्रोम आफिसके एक क्लार्कको वहाँके अंग्रेज मैनेजरने लकड़ी चुरानेके सन्देहमें सस्पेंड करके रिपोर्ट की है। क्लार्कका नाम देखकर ही मुझे मालूम हो गया कि यही हमारी अभयाका पति है। इसकी भी चार-पाँच पेजकी कैफियत थी। बर्मा रेलवेमें भी किसी गंभीर अपराधके कारण यह नौकरीसे बरतरफ हुआ होगा, यह अनुमान करनेमें भी मुझे देर नहीं लगी।

थोड़ी ही देर बाद उस क्लार्कने आकर कहा कि एक भले आदमी आपसे मिलना चाहते हैं। इसके लिए मैं तैयार ही था और मैं निश्चयसे जानता था कि प्रोमसे वह स्वयं केसकी पैरवी करने आयगा। इसलिए, जब कुछ ही मिनट बाद उसने सशरीर आकर दर्शन दिये तब अनायास ही मैंने पहिचान लिया कि यही अभयाका पति है। उसकी ओर देखते ही सारा शरीर मानों घृणासे कंटकित हो गया। पहिने था वह हैट-कोट, किन्तु जितने ही पुराने उतने ही गन्दे। काला मुँह सारा बड़ी बड़ी मूछों और दाढ़ीसे ढका हुआ था। नीचेका होठ शायद डेढ़ इंच मोटा था। और पान उसने इतने अधिक खाये थे कि उनका रस दोनों ओर जम गया था,—बात करते डर लगता था कि कहीं छिटककर आँगपर न आ पड़े।

यह मैं जानता हूँ कि पति ही स्त्रीका देवता है,—वही इसका इह-लोक और पर-लोक है, किन्तु, इस मूर्तिमान नीचताके निकट अभयाकी कल्पना करते हुए मेरा शरीर और मन संकुचित हो उठा। अभया और चाहे जो हो, फिर भी सुन्दर देहवाली सुरुचिसंपन्न कुलीन महिला है; किन्तु, यह भैसा बर्माके किस घने जंगलमेंसे एकाएक बाहर निकल आया है सो जिन ब्रह्मदेवने इसको बनाया है वे ही बता सकते हैं।

बैठनेका इशारा करके मैंने पूछा कि तुम्हारे विरुद्ध जो इलजाम लगाया गया है वह क्या सत्य है? इसके जवाबमें वह दस मिनट तक अनर्गल बकता रहा। भावार्थ यह था कि मैं बिल्कुल ही निर्दोष हूँ; और मेरे रहते प्रोम आफिसका साहब दोनों हाथों लूट नहीं कर सकता था, यही उसके क्रोधका कारण है। जिस तरह भी हो, मुझे अलग करके एक अपने ही आदमीको

भरती कर लेनेके लिये उसकी यह चाल है। मुझे उसकी बातपर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। मैंने कहा, "यह नौकरी चली जाय तो भी आपके समान होशियार व्यक्तिके लिए बर्मामें चिन्ता ही किस बातकी है? रेलवे नौकरी छूट जाने पर कितने-से दिन आपको खाली बैठना पड़ा था?"

वह मनुष्य पहले तो अकचकाया, फिर बोला, "आप कहते हैं सो बिल्कुल झूठ नहीं है। किन्तु आप जानते हैं महाशय, फैमिली-मैन हूँ, बहुत-से बच्चे-कच्चे—'

"आपने क्या किसी बर्मी स्त्रीसे विवाह कर लिया है?"

वह एकाएक बोल उठा, "साहब-सालेने रिपोर्टमें लिख दिया दिखता है! इसीसे आपको उसकी नाराजी मालूम हो सकती है!" यह कहकर वह मेरे मुँहकी ओर ताककर और कुछ नरम होकर बोला, "आप क्या इसपर विश्वास करते हैं।"

मैंने गर्दन हिलाकर कहा, "इसमें बुराई ही क्या है?"

वह उत्साहित होकर बोला, "ठीक कहते हैं महाशय, मैं तो यह सबसे कहता हूँ कि जो करूँगा सो 'बोल्डली' स्वीकार करूँगा। मैं ऐसा नहीं हूँ कि अन्दर कुछ और बाहर कुछ। और फिर मैं ठहरा मर्द,—आप जानते ही हैं। जो कहूँगा सो साफ साफ कहूँगा महाशय, लुकाने-छुपानेकी बात नहीं। और फिर देशमें तो मेरा कहीं कोई है नहीं,—और जब यहाँ ही रहकर चिरकाल तक नौकरी करके पेट भरना है तब,—आप समझते ही हैं महाशय।' मैंने सिर हिलाकर बताया कि मैं सब समझता हूँ। फिर पूछा, "आपका देशमें क्या कोई भी नहीं है?"

वह मनुष्य चेहरेपर जरा भी मैल लाये बगैर बोला, "जी नहीं, कहीं कोई नहीं है,—'काकस्य परिवेदना।' यदि कोई होता, तो फिर मैं इस सूर्य मामाके देशमें आ पाता? महाशय, आप विश्वास न करेंगे, मैं ऐसे-वैसे घरका लड़का नहीं हूँ, कभी हम लोग भी जमींदार थे!—आज भी यदि आप देशके हमारे मकानको देखें तो आपकी आँखें चकरा जायँ। किन्तु, छोटी उम्रमें ही सब मर-खप गये।—मैंने कहा, जाने भी दो; घर-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद यह सब है किसके लिए? सब कुछ जात-बिरादरीवालोंको बाँटकर मैं बर्मा चला आया।"

जरा स्थिर होकर पूछा, "आप अभयाको जानते हैं?"

वह चौंक उठा। कुछ देर मौन रहकर बोला, "आपने उसे कैसे जाना?"

मैंने कहा, "ऐसा भी तो हो सकता है कि आपका पता लगाकर उसने अपने भरण-पोषणके लिए इस आफ़िसमें दरख्वास्त दी हो?" वह कुछ अधिक प्रसन्न स्वरसे बोला, "ओः, यही कहिए न! सो मैं स्वीकार करता हूँ, एक समय वह मेरी स्त्री थी—"

"और अब?"

"कोई नहीं। मैं उसे त्यागकर चला आया हूँ।"

"उसका अपराध?"

वह मनुष्य चेहरेपर बनावटी दुःख लाकर बोला, "आप जानते हैं महाशय, 'फैमिली सिक्रेट' कहना उचित नहीं। किन्तु, इस समय आप मेरे आत्मीयोंकी तरह हैं, इसलिए कहनेमें कुछ लज्जा नहीं है कि वह एक दुश्चरित्र औरत है। इसी मानसिक घृणाके कारण ही तो मुझे देश छोड़ना पड़ा। नहीं तो क्या कोई शौक़से इस देशमें कदम रख सकता है? आप ही कहिए न, कि यह क्या कोई ऐसी वैसी घृणाकी बात है!"

जवाब क्या दूँ?—लाजके मारे मेरा मुँह नीचा हो गया। शुरूसे ही मैंने इस घोर मिथ्यावादीकी एक बातपर भी विश्वास नहीं किया था; किन्तु अब मुझे निःसंदिग्ध रूपसे मालूम हो गया कि यह जितना नीच है उतना ही क्रूर भी है।

अभ्यासके सम्बन्धमें मैं कुछ अधिक नहीं जानता हूँ; किन्तु फिर भी शपथ खाकर कह सकता हूँ कि जो अपवाद पति होकर इस पाखण्डीने उसके सिर बिना किसी संकोचके लगा दिया, गैर होकर भी मैं उसे मुँहसे नहीं निकाल सकता। कुछ देर बाद मुँह उठाकर मैंने कहा, "उसके इस अपराधकी बात अपने आते समय तो उससे कही नहीं थी। और जब यहाँ आकर भी कुछ दिन तक आप चिट्ठी पत्री और रुपया पैसा भेजते रहे, तब भी पत्रके द्वारा उसपर यह बात प्रकट नहीं की?"

वह महापापी स्वच्छन्दतासे अपने विराट् स्थूल होठोंको फाड़कर हँसता हुआ बोला, "यही तो बात है! आप जानते ही हैं महाशय, कि हम शरीफ़ आदमी हैं। हम लोग चुप-चाप सब-कुछ सहन कर लेते हैं, परन्तु हलके लोगोंकी तरह अपनी स्त्रीके कलंकका नगाड़ा नहीं पीट सकते। खैर, ये सब दुःखकी बातें छोड़ दीजिए महाशय, ऐसी स्त्रियोंका नाम मुँहपर लानेसे भी पाप होता है।—तो फिर, 'केस' तो आप ही 'डिस्पोज़ (निर्णय) करेंगे न? मेरी

जान बची, खैरियत हुई; किन्तु फिर भी कहे देता हूँ कि साहब बच्चूको यों ही न छोड़ दिया जाय। अच्छी तरह ऐसा सबक दिया जाय कि जिससे फिर कभी मेरे पीछे न लगें। वे भी समझ जायँ कि मेरे भी मुरब्बीका कुछ ज़ोर है। समझे न आप ?—अच्छा, मैं कहता हूँ क्या हरामजादेको हेड आफिसमें नहीं खींचा जा सकता ?"

मैंने कहा "नहीं।"

उसने हँसीकी छटासे फाइलको कुछ आगे सरकाते हुए कहा, "लीजिए, मज़ाक छोड़िए। क्या यह खबर लिये बगैर ही मै आपके पास आया हूँ कि बड़े साहब बिल्कुल आपकी मुट्ठीमें हैं ? खैर मरने दीजिए इसे, और भी एक दफे वह मेरे पीछे लगकर देख ले। अच्छा, क्या बड़े साहबका 'आर्डर' निकालकर आज ही मेरे हाथ नहीं दिया जा सकता ? रातके नौ बजे ही मैं चला जाता, रातको कष्ट न उठाना पड़ता। क्या कहते हैं आप ?"

मैं एकाएक जबाब न दे सका। क्योंकि, खुशामद चीज़ ही ऐसी है कि सारी दुरभिसंधि जान-बूझकर भी तुरणा करते क्लेशका अनुभव होता है। विरुद्ध बात मुँहपर लाते संकोच-सा होने लगा; किन्तु इस बाधाको मैंने नहीं माना। अपने आपको कठोर करके कह ही दिया, "बड़े साहबका हुक्म हाथ कर लेनेसे आपको लाभ नहीं होगा। आप और कहीं नौकरीकी तलाश कीजिए।"

एक मुहूर्तमें ही वह जैसे काठ हो गया और कुछ देर बाद बोला, "इसके मानी ?"

"इसके मानी यह कि आपको 'डिस्मिस करनेका 'नोट' ही मैं दूँगा। मेरे द्वारा आपको किसी तरह सुविधा न होगी।"

वह उठकर खड़ा हो गया था,—एकदम बैठ गया। उसकी दोनों आँखें छलछला आईं। हाथ जोड़कर बोला, "बंगाली होकर बंगालीको मत मारिए बाबू, मैं बच्चों-कच्चोंवाला आदमी मर जाऊँगा।"

"यह देखनेका भार मेरे ऊपर नहीं है। इसके सिवाय, मैं आपको जानता नहीं, आपके साहबके बिरुद्ध भी मैं नहीं जा सकता।"

उसने एक नजर मेरे मुँहपर डालकर शायद समझ लिया कि मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। और कुछ देर वह चुपचाप बैठ रहा। इसके बाद ही अकस्मात् वह जोरसे रो पड़ा। क्लार्क, दरबान, पियून जो जहाँ थे सब इस अचिन्तनीय घटनासे दंग हो गये। मैं भी मानों लज्जित-सा हो गया। उसे रोकनेके इरादेसे

मैंने कहा, "अभया आपके लिए ही बर्मा आई है; अवश्य ही दुश्चरित्रा स्त्रीको ग्रहण करनेके लिए मैं नहीं कहता। किन्तु, आपकी सब बातें सुनकर भी यदि वह माफ कर सके,—आप उसके पाससे चिट्ठी ला सकें, तो आपकी नौकरी बजा रखनेकी मैं कोशिश कर देखूँगा। नहीं तो दुबारा मिलकर मुझे लज्जित न करना,—मैं मिथ्या बात नहीं कहता।"

मैं जानता था कि ये नीच प्रकृतिके लोग अत्यन्त डरपोक होते हैं, उसने आँखें पोंछकर कहा, "वह कहाँपर है?"

"कल इसी समय आओगे तो उसका ठिकाना बता दूँगा।"

वह और कुछ न कहकर लम्बी सलाम करके चला गया।

संध्याके समय अभया मेरे मुँहसे चुपचाप नीचा मुँह किये सारा हाल सुनती रही। उसने आंचलसे केवल अपनी आँखें पोंछ डालीं,—कुछ कहा नहीं। मेरे क्रोधका भी उसने कुछ जवाब नहीं दिया। बहुत देर बाद मैंने ही पूछा, "आप उसे माफ़ कर सकेंगी?"

अभयाने केवल गर्दन हिलाकर अपनी सम्मति जाहिर की।

"तुम्हें वह अपने साथ ले जाना चाहे, तो जाओगी?"

उसने उसी तरह सिर हिलाकर जवाब दिया।

"बर्माकी स्त्रियोंका स्वभाव कैसा होता है, सो तो तुमने पहले ही दिन खूब जान लिया है, फिर भी वहाँ जानेका तुम्हारा साहस होगा?"

इस दफे अभयाने अपना मुँह ऊपर उठाया, मैंने देखा कि उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उसने कुछ कहनेकी कोशिश की परन्तु कह न सकी। इसके बाद बार बार आँचलसे अपनी आँखोंको पोंछती हुई रुद्ध कण्ठसे बोली, "नहीं जाऊँ तो मेरे लिए और उपाय ही क्या है, बताइए?"

उसकी बात सुनकर मैं यह न सोच सका कि मैं खुश होऊँ या आँखोंसे नीर बहाऊँ; किन्तु, मुझसे कुछ उत्तर देते नहीं बन पड़ा।

उस दिन और कोई बात नहीं हुई। डेरेको लौटते हुए रास्ते-भर यही एक बात मैं बार बार अपने आपसे पूछता रहा, किन्तु, इस प्रश्नका किसी ओरसे कोई भी उत्तर नहीं मिल सका। केवल हृदयके भीतरका 'वह' न जाने किसपर एक ओर जिस तरह निष्फल क्रोधसे जल जल उठने लगा, उसी तरह दूसरी ओर एक निराश्रया रमणीके उससे भी अधिक निरुपाय प्रश्नसे व्यथित और भाराक्रान्त हो उठा। दूसरे दिन, अभयाका ठिकाना पूछनेके लिए जब वह

मनुष्य सामने आकर खड़ा हो गया तब, मारे घृणाके, मैं उसकी ओर देख भी नहीं सका। मेरे मनका भाव समझकर आज वह अधिक बात किये वगैर ही केवल ठिकाना लेकर नम्रताके साथ चला गया, किन्तु, उसके बादके दिन जब वह मिलने आया तब उसकी आँखोंका और मुँहका भाव पूरी तरह बदल गया था। प्रणाम करके उसने अभयाके हाथकी एक सतर लिखी हुई मेरी टेबलपर रख दी और कहा, "आपने मेरा जो उपकार किया है उसे मुँहसे क्या कहूँ,—जितने दिन जीऊँगा आपका गुलाम होकर रहूँगा।"

अभयाकी लिखी पंक्तिपर दृष्टि जमाये हुए ही मैंने कहा, "जाइए, आप अपना काम कीजिए, बड़े साहबने इस बार माफ कर दिया है।"

उसने हँसकर कहा, "बड़े साहबकी चिन्ता मैं नहीं करता, केवल आप क्षमा कर दें तो मैं जी जाऊँ। आपके श्रीचरणोंमें मैंने बहुतसे अपराध किये हैं।" इतना कहकर उसने फिर बकना शुरू कर दिया,—उसी किस्मकी वैसी ही कोरी मिथ्या खुशामदकी बातें। और बीच-बीचमें वह रूमालसे आँखें भी पोंछने लगा। इतनी बातें सुननेका धीरज और किसीको नहीं हो सकता, इसलिए यह दण्ड मैं आपको नहीं दूँगा। मै केवल उसका विस्तृत वक्तव्य संक्षेपमें कहे देता हूँ। वह यह है कि उसने अपनी स्त्रीके ऊपर जो अपवाद लगाया था सो बिल्कुल ही झूठ है। उसने लज्जाके फेरमें पड़कर ही वैसा किया था, नहीं तो, ऐसी सती लक्ष्मी क्या कहीं और है! और मन ही मन चिरकालसे वह अभयाको प्राणोंसे भी अधिक चाहता रहा है। तब, यहाँ जो एक और उपसर्ग आ जुटा है उसे जुटानेकी उसकी जरा भी इच्छा नहीं थी, केवल बर्मियोंके हाथसे अपने प्राण बचानेके लिए ही उसने यह किया है। (कुछ सत्य हो भी सकता है।) किन्तु, आज रातको जब वह अपने घरकी लक्ष्मीको ले जा रहा है तब उस बर्मी-बच्चीको दूर करते कितनी देर लगती है? रहे लड़के-बच्चे,—ओहो! सालोंकी जैसी सूरत है वैसा ही स्वभाव है!—हैं वे किस कामके? बुढ़ापेमें न तो उनसे खाने-पहिननेको ही मिलेगा और न मरने पर एक चुल्लू पानीकी ही उनसे आशा है! जाते ही सबको एक साथ झाड़ू मारकर बिदा कर देगा तब उसका नाम,—इत्यादि इत्यादि।

मैंने पूछा, "अभयाको क्या आज ही रातको ले जायेंगे आप?" वह विस्मयसे अवाक् होकर बोला, "खूब! जितने दिन आँखों नहीं देखा था उतने दिन खैर किसी तरह रहा आया; किन्तु, आँखों देखकर फिर क्या उसे

आँखोंकी ओट कर सकता हूँ ? अकेली, इतनी दूर, इतना कष्ट उठाकर, केवल मेरे लिए ही तो आई है ! एक दफे सोच तो देखिए जरा इस बातको !"

मैंने पूछा, "क्या उसे एक साथ ही घरमें रखेंगे ?"

"जी नहीं, इस समय तो प्रोमके पोस्ट मास्टर महाशयके यहाँ ही रक्खूँगा। उनकी स्त्रीके साथ मजेमें रहेगी। किन्तु, दो-एक दिन ही,—अधिक नहीं। उसके लिए मकानका प्रबन्ध करूँगा और फिर घरकी लक्ष्मीको घर ले आऊँगा।"

अभयाके स्वामीने प्रस्थान किया। मैंने भी दैनिक कार्यमें मन लगानेके लिए सामनेकी फाइलको खींच लिया।

उसके नीचे अभयाकी उस लिखावटपर फिर मेरी नज़र जा पड़ी। इसके बाद कितनी दफे उन दो सतरोंको मैंने पढ़ा और न जाने कितनी दफे और पढ़ता सो कह नहीं सकता। इतनेमें ही 'पियून' ने कहा, "बाबूजी, आपके घर क्या कुछ कागज़-पत्र पहुँचाने होंगे ?" चौंककर मैंने सिर उठाया तो देखा, उस समय सामनेकी घड़ीमें साढ़े चार बज गये हैं, और क्लार्क लोग दैनिक कार्य समाप्त करके अपने अपने घर चले गये हैं।

९

अब मुझे अभयाके पतिका एक पत्र मिला। पहलेके ही समान कृतज्ञता सारी चिट्ठीमें बिखेर देकर इस बातका बड़े ही अदब और विस्तारके साथ निवेदन करके कि इस समय वह कैसे संकटमें पड़ा है, उसने मुझसे उपदेश चाहा है। बात संक्षेपमें यह थी कि उसने अपनी शक्तिसे अधिक खर्च करके भी एक बड़ा मकान किरायेपर ले लिया है; और उसमें एक ओर अपने बर्मी स्त्री-पुत्रादिको रखकर दूसरी ओर अभयाको लाकर रखनेका प्रयत्न कर रहा है, किन्तु किसी तरह भी उसे सम्मत नहीं कर पाता है। सहधर्मिणीकी इस तरहकी हठसे वह अतिशय मर्म-पीड़ा अनुभव कर रहा है। यह केवल 'कलि-काल' का फल है, 'सतजुग' में ऐसा नहीं हो सकता था,—बड़े बड़े ऋषि-मुनि तक भी—। अनेक दृष्टान्तों समेत उनका बार बार उल्लेख करके उसने लिखा है कि, हाय ! कहाँ हैं वे आर्यललनाएँ ? वे सीता-सावित्री कहाँ गईं ? जो आर्य-नारियाँ पतिके चरण-युगलोंको हृदयमें धारण करके हँसतीं

हँसती चितामें प्राण विसर्जन कर देती थीं और पतिसहित अक्षय स्वर्ग-लाभ करती थीं वे अब कहाँ हैं ? जो हिन्दू महिला हँसते हुए चेहरेसे अपने कुष्ठ-गलित पति-देवताको कंधेपर लादकर वेश्याके घर तक पहुँचा आई थी, कहाँ है उस जैसी पतिव्रता रमणी ? कहाँ है वह पति-भक्ति ? हाय भारतवर्ष ! क्या एकदम ही तेरा अधःपतन हो गया ! वह सब क्या अब हम लोग एक दफे भी अपनी आँखों न देखेंगे ! और क्या हम लोग,—इत्यादि इत्यादि करीब दो पन्ने विलापसे भर दिये हैं। किन्तु, अभया पति-देवताको यहाँतक ही मानसिक कष्ट देकर शान्त नहीं हुई। और भी सुनिए। उसने लिखा है कि इतना ही नहीं कि उसकी अर्द्धांगिनी अब भी दूसरेके घरमें रह रही है, बल्कि उसे आज अपने परम मित्र पोस्ट मास्टरसे मालूम हुआ कि रोहिणी नामक किसी व्यक्तिने उसकी स्त्रीको पत्र लिखा है और कुछ रुपये भेजे हैं। इससे इस हतभागेकी इज्जतको कितना धक्का लगा है सो लिखकर बताया नहीं जा सकता।

चिट्ठी पढ़ते पढ़ते मैं अपनी हँसी न रोक सका। फिर भी रोहिणीके व्यवहारपर भी कुछ कम क्रोध नहीं आया। अब उसे चिट्ठी लिखने और रुपये भेजनेकी जरूरत ही क्या थी ? जिसने पतिके घरको प्राप्त करनेके लिए इतना कष्ट सहन करना स्वीकार किया उसके चित्तको, जान-बूझकर या बिना जाने-बूझे, उचाट करनेकी जरूरत ही क्या थी ? और अभयाने भी इस तरहका व्यवहार किस लिए शुरू किया ? वह क्या चाहती है ? उसके पतिने जिसे स्त्रीकी तरह ग्रहण किया है, लड़के-बच्चे पैदा किये हैं,—उन सबको त्याग कर क्या केवल उसीको लेकर वह गृहस्थी चलावे ? क्यों, बर्मी स्त्रियाँ क्या स्त्रियाँ नहीं हैं ? उन्हें क्या सुख-दुख, मान-अपमानका बोध नहीं है ? न्याय-अन्यायका कानून क्या उनके लिए ताकपर रख देना चाहिए ? और यदि ऐसा ही है तो वहाँ उसे जानेकी जरूरत ही क्या थी ? सब झंझट यहाँसे ही स्पष्ट करके निबटा देनेसे ही तो हो जाता।

तब तक मैं रोहिणीसे मिलने नहीं गया था। वह झूठमूठ ही क्लेश पा रहा है, यह मन ही मन समझकर ही शायद मेरी उस तरफ पैर बढ़ानेकी प्रवृत्ति नहीं हुई थी। आज छुट्टी होनेके पहले ही गाड़ी बुलानेके लिए आदमी भेजकर मैं उठनेकी तैयारी कर रहा था कि उसी समय अभयाका पत्र आ पड़ा। खोलकर देखा कि सारा पत्र आदिसे अन्त तक रोहिणीके ही संबंधकी बातोंसे भरा हुआ

है । मैं सदा ही उसके ऊपर नजर रक्खूँ,—वह कितना दुर्बल, कितना अपटु, कितना असहाय है,—यही एक बात पंक्ति पंक्ति अक्षर अक्षरमेंसे ऐसी मर्मान्तिक व्यथाके साथ फूटी पड़ती थी कि कोई अत्यन्त सरल-चित्त मनुष्य भी इस आवेदनके तात्पर्यको समझनेमें भूल करेगा, ऐसा नहीं जान पड़ा। अपने सुख-दुखकी बात उसमें प्रायः कुछ भी नहीं थी। फिर पत्रके अन्तमें उसने बताया था कि अनेक कारणोंसे अब भी वह उसी जगह रह रही है जहाँ कि पहले पहल आकर ठहरी थी।

पति सती स्त्रीका एकमात्र देवता हो सकता है कि नहीं, इस विषयमें अपना मतामत छापेके अक्षरोंमें प्रकट करनेका दुःसाहस मुझमें नहीं है और न मुझे इसकी कोई जरूरत ही दीखती है। किंतु, सर्वांगीण सती-धर्मकी एक अपूर्वता —दुःसह दुःख और सर्वथा अन्यायके बीचमें भी उसकी आकाशभेदी विराट् महिमा जो मेरी अन्नदा जीजीकी स्मृतिके साथ चिरकालके लिए मनकी गहराईमें खुदकर अंकित हो गई है, जिसका असह्य सौन्दर्य आँखोंसे देखे बिना अवधारण भी नहीं किया जा सकता, और जिसने एक ही साथ नारीको अति क्षुद्र और अति बृहत् बना दिया है,—मेरी वह अव्यक्त उपलब्धि, आज अभयाकी इस चिट्ठीसे आन्दोलित हो उठी।

जानता हूँ कि सब अन्नदा जीजी नहीं हैं,—उस कल्पनातीत निष्ठुरताको छाती फैलाकर धीरजसे ग्रहण करने जैसी बड़ी छाती भी सब स्त्रियोंकी नहीं होती; और जो नहीं है उसके लिए रोज रोज शोक प्रकाश करना ग्रन्थकार मात्रका एकान्त कर्तव्य है या नहीं, सो भी मैंने विचारकर स्थिर नहीं कर रक्खा है, किन्तु, फिर भी सारा चित्त वेदनासे भर गया। गुस्सेमें भरा हुआ मैं गाड़ी-पर जा बैठा और उस निकम्मे परस्त्री-आसक्त रोहिणीको जो कड़ी कड़ी बातें अच्छी तरह सुनाने जा रहा था उन्हें मन ही मन दुहराता हुआ उसके घरकी ओर रवाना हो गया। गाड़ीसे उतरकर, किवाड़ खोलकर जब मैंने उसके मकानमें प्रवेश किया तब दिया-बत्तीकी बेला हो गई थी, अर्थात् दिनका प्रकाश खत्म होकर रातका अँधेरा अभी अभी उतर रहा था।

वह भर भादों भी नहीं था और न उस समय भरे बादल ही थे; किन्तु, शून्य घर-बारकी भी यदि कोई सूरत शक्ल होती है तो उस दिन उस प्रकाश और अंधकारके बीच जो मेरी नजरमें पड़ी, उसे छोड़कर और क्या हो सकती है, सो तो मैं आज भी नहीं जानता। घरके सभी दरवाजे भाँय

भाँय कर रहे थे, केवल रसोईघरकी एक खिड़कीमेंसे धुआँ निकल रहा था। दाहिनी तरफ कुछ आगे बढ़कर झाँककर देखा कि चूल्हा जलकर प्रायःबुझ रहा है और पासमें ही जमीनपर रोहिणी बाबू हँसियेसे एक बैंगनके दो टुकड़े करके गुम-सुम बैठे हुए हैं। मेरे पैरोंकी आहट उनके कानों तक नहीं गई, क्योंकि कर्णेन्द्रियका जो मालिक था वह उस समय और चाहे जहाँ हो किन्तु बैंगनके ऊपर एकाग्र नहीं था, यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ। किन्तु चुपचाप लौटकर जब उन दो कमरोंके बीच आ खड़ा हुआ तब मुझे साफ साफ दिखाई दिया कि एक उत्कट वेदनासे भरा हुआ रोदन सारे घरको भरकर दँतौरी बाँधे हुए अडिग रूपसे वहाँ स्थिर हो रहा है और वह सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण धर्माधर्म और समस्त पाप-पुण्यसे भी परेकी,—अनीतकी, वस्तु है।

बाहर आकर मैं बरामदेमें एक मोढ़ेपर बैठ गया। कितनी ही देर बाद, शायद, दीपक जलानेके लिए रोहिणी बाबू बाहर आये और भयभीत हो उन्होंने पूछा, "कौन है?"

मैंने आवाज देकर कहा, "मैं हूँ श्रीकान्त।"

"श्रीकान्त बाबू? ओह—"इतना कहकर वह तेज चालसे नजदीक आये, भीतर जाकर उन्होंने दिया-बत्ती की और फिर मुझे भीतर ले जाकर बिठाया। इसके बाद किसीके भी मुँहसे कोई बात न निकली,—दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। सबसे पहले मैंने ही मुँह खोला। कहा, "रोहिणी भइया, यहाँ अब क्यों रहते हो? चलो मेरे साथ।"

रोहिणीने पूछा, "क्यों?"

मैंने कहा, "यहाँ आपको कष्ट होता है इसलिए।"

रोहिणी कुछ देर ठहरकर बोला, "कष्ट अब मुझे क्या है!"

ठीक है! किन्तु, ऐसी अवस्थामें तो आलोचना की नहीं जा सकती। मैं उसका किस प्रकार तिरस्कार करूँगा, क्या सत्परामर्श दूँगा आदि सब सोचता सोचता घरसे चला था, किन्तु,यहाँ वे सब विचार बह गये। नीतिशास्त्रकी पोथी इतनी अधिक नहीं पढ़ी थी कि इतने बड़े प्रेमका अपमान कर सकूँ। कहाँ गया मेरा क्रोध, कहाँ गया मेरा विद्वेष! समस्त साधु-संकल्प अपना सिर नीचा करके कहाँ छिप रहे, पता भी न चला।

रोहिणी बोला कि उसने वह प्राइवेट ट्यूशन छोड़ दी है क्योंकि उससे तन्दुरुस्ती बिगड़ती है। उसका दफ्तर भी अच्छा नहीं है, बड़ी कड़ी मेहनत पड़ती है। नहीं तो अब कष्ट क्या है!

मैं चुप हो रहा। क्योंकि इसी रोहिणीके मुँहसे कुछ दिन पहिले इससे ठीक उलटी बात सुनी थी। वह कुछ देर चुप रहकर फिर कहने लगा, "आफिससे थके-माँदे लौटनेपर यह राँधना-रूँधना तो बड़ी झुंझलाहट पैदा करता है, क्यों न श्रीकान्त बाबू?"

मैं और क्या कहता? आग बुझ जानेपर केवल जलसे ही तो इंजन चलता नहीं, यह तो जानी हुई बात है।

फिर भी, वह यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जानेको राजी नहीं हुआ। कल्पनाकी तो कोई सीमा निर्दिष्ट कर नहीं सकता, इसलिए उस बातको नहीं छेड़ता, किन्तु, किसी असंभव आशाने उसके मनके भीतर भी किसी तरह आश्रय नहीं पाया था सो मैं उसकी कुछ बातोंसे ही जान गया था। फिर भी क्यों वह इस दुःखके आगारको छोड़ना नहीं चाहता, यह अवश्य ही मैं नहीं सोच सका। किन्तु, उसके अन्तर्यामीके आगोचर नहीं था कि जिस हतभागीके घरका रास्ता रुद्ध हो गया है, उसे इस शून्य घरकी पुंजीभूत वेदना यदि खड़ा न रख सके तो उसे मिट्टीमें मिलनेसे रोकना इस दुनियामें किसीके लिए भी सम्भव नहीं है।

अपने डेरेपर पहुँचते-पहुँचते कुछ रात हो गई। घरमें घुसकर देखा कि एक कोनेमें बिस्तर लगाकर एक आदमी सिरसे पैर तक कपड़ा ओढ़े सो रहा है। नोकरानीसे पूछनेपर उसने कहा, "शरीफ आदमी हैं।"

इसलिए मेरे कमरेमें!

भोजनादिके उपरान्त उन महाशयसे बात-चीत हुई। उनका मकान चटगाँव जिलेमें है। करीब चार वर्षके बाद उनके लापता छोटे भाईका पता मिला है और उसे वापिस घर ले जानेके लिए वे आये हैं। वे बोले, "महाशय, कहानियोंमें सुना था कि पुराने समयमें कामरूपकी स्त्रियाँ विदेशी पुरुषोंको भेड़ बनाकर बाँध रखती थीं। न जाने उस समय वे क्या करती होंगी; किन्तु इस ज़मानेमें भी बर्माकी स्त्रियोंकी क्षमता उनसे तिल-भर भी कम नहीं है, सो मैं नस नससे अनुभव कर रहा हूँ।"

और भी बहुत-सी बातें करनेके बाद उन्होंने अपने छोटे भाईके उद्धार करनेके लिए मेरी सहायताकी भिक्षा माँगी। मैंने वचन दिया कि उनके इस साधु उद्देश्यको सफल करनेमें मैं कमर बाँधकर लग जाऊँगा। क्यों, सो कहनेकी जरूरत नहीं है। दूसरे दिन सुबह ढूँढ़ खोज करके उनके छोटे

भाईकी बर्मा ससुरालमें जा पहुँचा। बड़े भाई आड़में रास्तेके ऊपर चहल-कदमी करने लगे।

छोटे भाई उपस्थित नहीं थे, साइकल लेकर सुबह घूमनेके लिए बाहर गये थे। मकानमें सास ससुर नहीं थे, केवल स्त्री अपनी एक छोटी बहिनको लेकर एक-दो दासियों सहित वहाँ रहती है। इन लोगोंकी जीविका बर्मा-चुरुट बनाना था। उस समय सब इसी काममें लगे हुए थे। मुझे बंगाली देखकर, और संभवतः अपने पतिका मित्र समझकर, उन्होंने मेरा आदरके साथ स्वागत किया। बर्मी स्त्रियाँ अत्यन्त परिश्रमी होती हैं, परन्तु पुरुष बहुत ही आलसी होते हैं। वहाँ घरके छोटे-मोटे काम-काजसे लेकर व्यवसाय-वाणिज्य-तक सब कुछ प्रायः स्त्रियोंके हाथमें है। इसलिए, लिखना-पढ़ना सीखे बिना उनका काम नहीं चलता, परन्तु पुरुषोंकी बात अलहदा है। पढ़ना-लिखना सीखा हो तो भला, न सीखा हो तो लज्जाके मारे मरना नहीं होता। निष्कर्मा पुरुष स्त्रीका उपार्जित अन्न नष्ट करके बाहर उसी पैसेसे बाबूगीरी करता फिरता है और इससे लोगोंको कोई अचरज नहीं होता। स्त्रियाँ भी छिः छिः मिनमिन पिनपिन करके उनकी नाकोंदम कर देना आवश्यक नहीं समझतीं। बल्कि, यही किसी परिमाणमें मानो उनके समाजके स्वाभाविक आचारमें शामिल हो गया है।

दस-पंद्रह मिनटके बीच ही बाबूसाहब 'द्वि-चक्र-यान' में लौट आये। सारी देहपर अँग्रेजी पोशाक, हाथमें दो-तीन अँगूठियाँ, घड़ी चैन आदि। काम-काज कुछ भी नहीं करना पड़ता, फिर भी देखा, हालत खूब अच्छी है। उनकी बर्मी पत्नी अपने हाथका काम छोड़कर उठ खड़ी हुई और उनके हाथसे टोपी तथा छड़ी लेकर उसने रख दी। छोटी बहिनने चुरुट दियासलाई आदि ला दिये, एक दासीने चाहका सरंजाम और दूसरीने पानका डब्बा ला दिया। वाह, इस मनुष्यको तो सबने मिलकर एकदम राजाकी तरह रख छोड़ा है! नाम मै भूल गया हूँ। शायद चारु-बारु ऐसा ही कुछ होगा। जाने दो, हम लोग न होगा तो केवल 'बाबू' कहकर पुकार लेंगे।

बाबूने प्रश्न किया कि आप कौन हैं? मैने कहा, मै आपके भाईका मित्र हूँ। उन्होंने विश्वास नहीं किया। बोले, "आप तो कलकतिया हैं; मेरे भाई तो कभी वहाँ गये भी नहीं, मित्रता किस तरह हुई?"

किस तरह मित्रता हुई, कहाँ हुई, इस समय वे कहाँ हैं, इत्यादि संक्षेपसे

वर्णन करके उनके आनेका उद्देश्य भी मैंने बता दिया और यह भी निवेदन कर दिया कि वे अपने भ्रातृ-रत्नके दर्शनोंकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हैं।

दूसरे दिन सुबह ही हमारी होटलमें बाबूकी चरण-धूलि आ पड़ी और दोनों भाइयोंकी बड़ी देरकी बातचीतके बाद उन्होंने बिदा ग्रहण की। तबसे दोनों भाइयोंका कुछ ऐसा हेल-मेल हो गया, कि,—सुबह नहीं, सन्ध्या नहीं,—बाबू साहब 'भइया, भइया' कहकर पुकारते हुए लगे जब तब आ उपस्थित होने और फुसफुस खुसखुस सलाह संलाप करने और खाने-पीनेकी तो कोई सीमा ही नहीं रही। एक दिन संध्याको वे अपने भइयाको और मुझे भी चाह-बिस्कुटका निमंत्रण दे गये।

उसी दिन उनकी बर्मी स्त्रीसे मेरी अच्छी तरह बातचीत हुई। वह अतिशय सरल, विनयी और भली है। प्यार करके स्वेच्छासे ही उसने विवाह किया है और तबसे शायद एक दिनके लिए भी इन्हें कोई दुख नहीं दिया। कोई चार-पाँच दिन बाद बड़े भइयाने मुस्कराते हुए कानमें कहा, कि परसों सबेरेके जहाजसे हम लोग घर जा रहे हैं। सुनकर मुझे कुछ डर-सा लगा; पूछा, "आपके भाई यहाँ फिर लौटकर तो आयँगे?"

बड़े भइया बोले, "अब? राम राम करके किसी तरह एक दफे जहाजपर चढ़ तो पावें!"

मैंने पूछा, "यह स्त्रीको जता दिया है?"

बड़े भइया बोले, "बापरे! तब क्या हम बच सकेंगे? साली जो जहाँ होंगीं रक्त-बीजकी तरह आकर घेर लेंगी।" यह कहकर और फिर दोनों आँखें मिचकाकर हँसते हुए बोले "फ्रेंच लीव्ह महाशय फ्रेंच लीव्ह,—आप समझे या नहीं?"

मुझे अत्यन्त क्लेश मालूम हुआ, बोला "ऐसा हुआ तब तो स्त्रीको अत्यन्त कष्ट होगा?"

मेरी बात सुनकर बड़े भइया तो हँसीसे लोट-पोट हो गये। किसी तरह हँसना बन्द करके बोले "वाह, आपने भी खूब कहा! इन बर्मी औरतोंको कष्ट? इन सालियोंकी जातके लोग खाकर कुल्लातक नहीं करते, न इनके यहाँ जूठे-मीठेका विचार है, और न जात-पाँतका। साली सब नेप्पी (एक तरहकी सड़ाई हुई मछलियाँ) खाती हैं महाशय, नेप्पी! जिसकी दुर्गन्धके मारे भूतनी-पिशाचियाँतक भाग जावें। इन सालियोंको और कष्ट! एक चला जायगा तो दूसरेको पकड़ लेंगी,—छोटी जातकी हैं सालीं—"

"ठहरिए महाशय, ठहरिए। आपके भाईको उसने जो इन चार वर्षोंतक राजाकी तरह खिलाया-पिलाया है, और कुछ न हो, इसके लिए भी तो उसका कुछ कृतज्ञ होना चाहिए!"

बड़े भाईका मुँह गंभीर हो गया। वे कुछ देर चुप रहकर बोले, "आपने तो मुझे अवाक् कर दिया महाशय। मर्द-बच्चे हैं, विदेशकी धरतीपर आकर यदि उम्रके दोषसे कुछ शौक कर ही डाला तो क्या हुआ? और फिर कौन है जो ऐसा नहीं करता, कहिए न? मुझसे तो कुछ छुपा है नहीं,—इसका कुछ खुल पड़ा है,—सब लोग जान गये हैं, बस—सो इसीलिए क्या चिरकाल तक इसे इसी तरह फिरते रहना होगा? भला बनकर, गृहस्थ-धर्म चलाकर, फिरसे पाँच पंचोंमें अपना स्थान ग्रहण न करना होगा? महाशय, यह तो कुछ बात ही नहीं है, कच्ची उम्रमें तो कितने ही लोग होटलोंमें जाकर मुर्गीतक खा आते हैं। किन्तु, उम्र पकनेपर क्या ऐसा करते हैं? आप ही विचार कीजिए न, मैं कहता हूँ सो सच है कि झूठ?"

वास्तवमें यह विचार करने जैसी बुद्धि भगवान्ने मुझे नहीं दी, इसलिए मैं चुप रह गया और आफिसका समय हो रहा था इसलिए, नहा-खाकर चल दिया।

किन्तु, आफिससे लौटते ही वे फिर एकाएक बोल उठे, "मैंने सोच देखा, आपकी सलाह ही ठीक है महाशय। इस जातका कुछ भरोसा नहीं, क्या जाने जाते जाते अन्तमें क्या फसाद खड़ा कर दे!—कहकर जाना ही ठीक है। ये सालीं जो न करें सो थोड़ा। न लाज है न सरम, और न कुछ धर्मका ज्ञान। इन्हें यदि जानवर कहा जाय तो भी कुछ बेजा नहीं है।"

मैंने कहा, "हाँ, यही ठीक है।"

किन्तु, उसकी बातपर मैं विश्वास न ला सका। मन ही मन मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर कोई षड़यंत्र था। किन्तु, वह इतना नीच, इतना निष्ठुर होगा—आँखसे देखे बगैर कोई उसकी कल्पना भी कर सकेगा, यह मैं नहीं सोच सका।

चटगाँवका जहाज रविवारको जाता है। आफिस बन्द था। सुबहके समय और करता ही क्या; उन्हें 'सी ऑफ' (=बिदा) करनेके लिए जहाज-घाटपर जा पहुँचा; जहाज उस समय जेटीसे लगा हुआ था। जानेवाले दोनों श्रेणियोंके लोगोंकी दौड़-धूप, चीख-पुकारमें कोई किसीकी बात नहीं सुन सकता था। यहाँ वहाँ देखते ही उस बर्मी स्त्रीपर नजर पड़ गई। एक किनारे वह अपनी छोटी बहिनका हाथ पकड़े खड़ी है। सारी रात रोते रहनेके कारण उसकी

दोनों आँखें ठीक जबाके फूलोंकी तरह हो रही हैं। छोटे बाबू बहुत ही व्यस्त हैं। वे अपनी दो चक्रोंकी गाड़ी (साइकल), ट्रङ्क, बिस्तर तथा और भी न जाने क्या क्या लिये कुलियोंके साथ दौड़-धूप कर रहे हैं,—उन्हें क्षण-भरका भी अवसर नहीं है।

धीरे धीरे सारी चीजें जहाज पर चढ़ गई, यात्री लोग भी सब ठेल-ठालकर ऊपर चढ़ गये। जो यात्री नहीं थे वे नीचे उतर आये, सामनेकी ओरसे लंगर उठने लगा। इसी समय छोटे बाबू अपने सामानको हिफाजतसे रखकर और जगह ठीक करके अपनी बर्मी-स्त्रीसे बिदा लेनेके छलसे संसारके निष्ठुरतम अंकका अभिनय करनेके लिए जहाजपरसे नीचे उतरे।—द्वितीय दर्जेके यात्री थे, इसलिए, उन्हें यह अधिकार प्राप्त था।

मैंने अनेक दफे सोचा है कि इसकी भला क्या जरूरत थी? मनुष्य जबर्दस्ती अपनी मानव-आत्माको इस तरह क्यों अपमानित करता है? मन्त्र-दीक्षित पत्नी न हुई तो क्या हुआ, किन्तु वह स्त्री तो है! वह कन्या भगिनी जननीकी जातिकी तो है! उसीके आश्रयसे वह इतने सुदीर्घ समय तक पतिके समस्त अधिकारोंका उपभोग करता हुआ वहीं रहा है! उसने तो अपने विश्वस्त हृदयकी सारी मधुरता, सारा अमृत, संपूर्ण शरीर और मन उसपर समर्पित कर दिया है! फिर किस लोभसे वह इन अगणित लोगोंकी आँखोंमें उसे इतने बड़े निर्दय परिहास और तमाशेकी चीज़ बनाकर चलता बना! वह एक हाथसे रूमालके द्वारा अपनी दोनों आँखें ढके हुए है और दूसरा हाथ अपनी बर्मी स्त्रीके गलेमें डाले हुए रोनेके स्वरमें बहुत कुछ कह रहा है। स्त्री आँचलमें मुँह छिपाये रो रही है।

आसपास बहुतसे बंगाली खड़े हैं। उनमेंसे कुछ मुँह फिराकर हँस रहे हैं, और कुछ मुँहमें कपड़ा देकर हँसीको रोकनेकी कोशिश कर रहे हैं। मैं कुछ दूरी पर था, इसलिए पहले कुछ समझ न सका, किन्तु नजदीक आते ही सब बातें साफ साफ सुन पड़ने लगीं। वह रोनेके स्वरमें बर्मी और देहाती बंगाली मिलाकर बिलाप कर रहा है। यदि बंगालीमें कुछ मार्जित करके लिखा जाय तो उस विलापका यह रूप हो—"एक महीने बाद रंगपुरसे तमाखू खरीद कर कैसे आ जाऊँगा, यह मैं ही जानता हूँ! ओ री मेरी रत्न-मणि! तुझे केला दिखाकर चला रे, * केला दिखाकर चला।"

---

* यह बंगला मुहाविरा है, अर्थ है अँगूठा दिखाकर।

वह यह सब केवल हमारे समान कुछ अपरिचित बंगाली दर्शकोंके हँसानेके लिए ही कह रहा था। पर, उसकी स्त्री बँगला नहीं समझती है, केवल रोनेकी आवाज़से ही उस बेचारीकी छाती फट रही है और किसी तरह वह हाथ उठाकर उसकी आँखें पोंछकर सांत्वना देनेकी चेष्टा कर रही है!

वह आदमी जोर जोर से बिसूर बिसूर कर रोता हुआ कहने लगा, "बड़ी मुश्किलसे तूने पाँच सौ रुपये तमाखू खरीदने दिये हैं,---अब कुछ तेरे पास नहीं है, ---पेट तो भरा ही नहीं, ---इसी तरह यदि तेरा मकान भी बेच-बाच कर भले घरके लड़केकी तरह घर जा सकता, तो भी समझता कि हाँ, एक दाव मारा! हाय, यह सब कुछ नहीं हुआ रे! कुछ नहीं हुआ!"

आस-पासके लोग हँसीको रोक रखनेके कारण फूल फूल उठने लगे; किन्तु जिसको लेकर इतनी हँसाई हो रही थी उसकी आँखें और कान दुःखके आँसुओंसे एकदम आच्छादित हो रहे थे! ऐसा जान पड़ने लगा कि, कहीं वेदनाके मारे मर न जाय!

खलासियोंने ऊपरसे पुकार कर कहा, "बाबू सीढ़ी उठाई जा रही है।"

वह आदमी गला छोड़कर सीढ़ी तक गया और फिर लौट आया। स्त्रीके हाथमें एक पुराने समयके अच्छे नगवाली अँगूठी थी। उसीपर हाथ रखकर रोता हुआ बोला, "अरी, दे दे री, यह अँगूठी ही ले जाऊँ। इसके कमसे कम दो ढाई सौ रुपये दाम तो होंगे ही,—इन्हींको क्यों छोड़ूँ?"

स्त्रीने उसे चटपट खोलकर अपने प्रियतमकी अंगुलीमें पहिना दिया। "जो मिला वही लाभ है!" कहकर वह आदमी रोता रोता ही सीढ़ीपर चढ़ गया। जहाज जेटी छोड़कर धीरे धीरे दूर सरकता जाने लगा और वह स्त्री मुखपर आँचल डालकर घुटने टेककर वहीं बैठ गई। बहुतसे लोग दांत काढ़-कर हँसते हँसते चले गये। किसीने कहा, 'वाहरे लड़के!' किसीने कहा, 'वाहरे बहादुर छोकरे!' बहुत-से लोग यह कहते कहते चले गये, 'कैसा तमाशा किया! हँसते हँसते पेट दुखने लगा!' ऐसे ऐसे न जाने कितने मन्तव्य प्रकट किये गये। केवल मैं ही अकेला सबके हँसी-तमाशेकी चीज़ उस भोली स्त्रीके अपरिसीम दुःखका साक्षी बनकर गुम-सुम खड़ा रह गया।

छोटी बहिन आँखें पोंछती हुई पासमें खड़ी अपनी बहिनका हाथ खींच रही थी। मेरे पासमें जाकर खड़े होते ही वह धीरेसे बोली, "बाबूजी आये हैं बहिन. उठो।"

मुँह उठाकर उसने मेरी ओर देखा और साथ ही साथ उसका रुदन मानो बाँध तोड़कर फट पड़ा। मेरे पास सान्त्वना देनेके लिए और था ही क्या! फिर भी, उस दिन मैं उसका साथ नहीं छोड़ सका। उसके पीछे पीछे उसकी गाड़ीमें जा बैठा। रास्ते भर वह रो रो करके यही बात कहती रही कि, "बाबूजी, आज मेरा मकान सूना हो गया। किस तरह मैं उसके भीतर पैर रक्खूँगी; एक माहके लिए तमाखू खरीदने गये हैं.—यह एक मास मैं कैसे काटूँगी! विदेशमें उन्हें न जाने कितनी तकलीफ उठानी होगी! मैंने उन्हें वहाँ क्यों जाने दिया! रंगूनके बाज़ारकी तमाखूसे हमारा काम तो मजेसे चल रहा था; तब फिर क्यों अधिक लाभकी आशासे मैंने उन्हें इतनी दूर भेजा! दुःखके मारे छाती फटी जाती है। बाबूजी, अगली मेलसे ही मैं उनके पास चली जाऊँगी।" इस तरह वह न जाने कितना और क्या क्या कहती रही।

मैं एक बातका भी जवाब न दे सका, केवल अपना मुँह फिराकर खिड़कीके बाहर देखता हुआ अपनी आँखोंके आँसुओंको छुपाता रहा।

वह कहने लगी, "बाबूजी, तुम्हारी जातके लोग जितना प्यार-प्रेम कर सकते हैं, उतनी हमारी जातके लोग नहीं कर सकते; तुम लोगोंमें जितनी दया माया है उतनी और किसी देशके लोगोंमें नहीं है।"

कुछ देर ठहरकर और दो-तीन दफे आँखें पोंछकर वह कहने लगी, "बाबूके प्यारमें पड़कर जब मैं उनके साथ रहने लगी तब कितने ही लोगोंने मुझे भय दिखाकर रोका था; किन्तु, मैंने किसीकी भी बात न सुनी, इस समय न जाने कितनी स्त्रियाँ मेरे सौभाग्यपर मन ही मन जलती हैं।"

चौरस्तेके नजदीक मैंने चाहा कि उतरकर अपने डेरेपर चला जाऊँ, किन्तु, वह व्याकुल होकर दोनों हाथोंसे गाड़ीका दरवाजा रोककर बोली, "ना बाबूजी, सो नहीं होगा। तुम्हें हमारे साथ चलकर एक प्याला चाह पीकर आना होगा; चलिए।"

मैं इनकार न कर सका। गाड़ी चलने लगी। उसने एकाएक पूछा, "अच्छा बाबूजी, रंगपुर कितनी दूर है? आप कभी वहाँ गये हैं? कैसी जगह है? बीमार होनेपर वहाँ डाक्टर तो मिल सकते हैं न?"

बाहरकी ओर देखते हुए मैंने उत्तर दिया, "हाँ मिलते क्यों नहीं!"

एक उसास छोड़कर वह बोली, 'फया (=ईश्वर) उन्हें भला रक्खें! उनके भाई भी साथमें हैं। वे बड़े सज्जन आदमी हैं. छोटे भाईको तो वे प्राणोंसे

ज्यादा रक्खेंगे। तुम लोगोंका शरीर तो जैसे प्रेमहीका बना है! मुझे कुछ सोच नहीं करना है, क्यों न बाबूजी ?"

मैं चुपचाप बाहरकी ओर देखता हुआ केवल यही सोचने लगा कि इस महापापमें मेरा खुदका हिस्सा कितना है? चाहे आलस्यवश हो,—चाहे आँखोंकी शरमके मारे हो, और चाहे अक्ल मारी जानेके कारण हो, यह जो मैंने अपना मुँह बन्द किये रहकर इतना बड़ा अन्याय अनुष्ठित होते देखा और कुछ कहा नहीं, इसके अपराधसे क्या मैं छुटकारा पाऊँगा ? और यदि ऐसा ही है, तो फिर सिर ऊंचा करके मैं सीधा क्यों नहीं बैठ सकता ? उसकी आँखोंकी ओर देखनेका साहस क्यों नहीं कर सकता ?

चाह-विस्कुट लेकर और उनके विवाहित जीवनकी लाखों घटनाओंका विस्तृत इतिहास सुनकर जब मैं मकानसे बाहर हुआ तब दिन अधिक बाकी नहीं था। घर लौट जानेकी इच्छा नहीं हुई। दिनके अन्तमें सब लोग अपना अपना काम-काज खत्म करके डेरेमें लौट आते हैं,—दादा ठाकुरकी होटल उस समय तरह तरहके सुन्दर हास-परिहाससे मुखरित हो रही है। पर, सब हो-हल्ला मुझे जहर जैसा लगने लगा।

अकेला रास्ते रास्ते घूमते हुए मैं यही सोचने लगा कि इस समस्याकी मीमांसा होती किस तरह ? बर्मी लोगोंमें विवाहके सम्बन्धमें कोई बँधा हुआ नियम नहीं है। विवाहकी कुलीन विधि भी है और पति-पत्नीकी तरह जो स्त्री-पुरुष तीन दिन एक साथ रहकर एक बर्तनमें भोजन कर लेते हैं, उनका भी विवाह हो गया समझा जाता है। न तो समाज ही इसे नामंजूर करती है और न वह स्त्री ही इस कारण किसी तरह हलकी नजरसे देखी जाती है। परन्तु, 'बाबू' के लिए हिन्दू कानूनमें यह सब कुछ भी नहीं है। इस स्त्रीको वह अपने देशमें ले जाकर नहीं रख सकता। हिन्दू समाज उन्हें न हो तो न अपनावे, किन्तु, यह भी तो जीवन-भर सहन करते रहना कठिन है कि नीचसे नीच आदमी भी उन्हें नीची निगाहसे देखे! या तो चिरकालके लिए निर्वासितकी तरह प्रवासमें रहा जाय; या फिर, बड़े भइयाने अपने छोटे भाईकी जो व्यवस्था की वही ठीक है। इतना होते हुए भी 'धर्म' नामक शब्दका यदि कोई अर्थ हो सकता है,—चाहे वह धर्म हिन्दूजातिका हो या और किसी जातिका,—तो इतना बड़ा नृशंस व्यापार किस तरह ठीक हो सकता है सो समझना मेरी बुद्धिके परेकी बात है। यह सब बातें तो समयानुसार और

कभी सोचकर देखूँगा; किन्तु, इस गुस्सेके मारे तो मैं जलकर खाक होने लगा कि यहांकापुरुष आज बिना किसी अपराधके इस अनन्य-निर्भर नारीके परम स्नेहके ऊपर वेदनाका बोझा लादकर और चकमा देकर भाग गया !))

रास्तेके किनारे किनारे जो चलना शुरू किया तो चलता ही गया। बहुत दिन पहले, एक दिन अभयाका पत्र पढ़ने जिस चाहकी दूकानमें गया था उसी दूकानके मालिकने शायद पहिचान कर मुझे हाँक दी, "बाबू साहब, आइए।"

एकाएक जैसे नींद टूटते ही मैने देखा, यह वही दूकान है और वह रोहिणी भइयाका घर है। बिना कुछ कहे उसके बुलानेका मान रखकर मैं अन्दर चला गया और एक प्याला चाह पीकर बाहर निकला। रोहिणीके दरवाजे पर धक्का देकर देखा कि भीतरसे बन्द है। बाहरकी साँकलको पकड़कर दो-चार दफे हिलाते ही किवाड़ खुल गये। आँख उठाकर देखा कि सामने अभया है।

"अरे तुम ?"

अभयाकी आँखें और चेहरा लाल हो उठा; कोई भी जवाब दिये वगैर वह पलक मारते न मारते अपने कमरेमें चली गई और उसने अंदरसे कुंडी बन्द कर ली। किन्तु, लज्जाकी जो मूर्ति शामके उस धुँधले प्रकाशमें उसके चेहरेपर फूट उठते देखी, उससे जानने-पूँछनेके लिए और कुछ बाकी ही नहीं रहा। अभिभूतकी तरह कुछ देर खड़ा रहकर चुपचाप लौटकर जा रहा था कि अकस्मात् मेरे दोनों कानोंमें मानों दो तरहके विभिन्न रोनेके स्वर एक ही साथ गूँज उठे; एक था उस महापापीका और दूसरा उस बर्मी युवतीका। मैं जाना ही चाहता था, किन्तु, फिर लौटकर आँगनमें खड़ा हो गया। मनही मन कहा, नहीं, मुझे इस तरह नहीं जाना चाहिए। नहीं नहीं,—ऐसा नहीं कहना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए, यह उचित नहीं है, यह अच्छा नहीं है,—यह सब अनेक दफे सुननेकी आदत रही है, अनेक दफे दूसरोंको सुनाया भी है, —किन्तु बस, अब और नहीं। क्या अच्छा है, क्या बुरा है, क्यों अच्छा है, कहाँ किस तरह बुरा है,—ये सब प्रश्न यदि हो सकेगा तो स्वयं उसीके मुँहसे सुनूँगा और यदि ऐसा न कर सकूँ तो केवल पोथीके अक्षरों-पर दृष्टि रखकर मीमांसा करनेका अधिकार न मुझे है, न तुम्हें है और न शायद विधाताको ही है!

एकाएक अभया दरवाजा खोलकर सामने आ खड़ी हुई; बोली "जन्म-जन्मान्तरके अंध संस्कारके धक्केसे पहले पहल अपने आपको सम्हाल न सकी, इसीलिए मैं भाग खड़ी हुई थी श्रीकान्त बाबू, उसे आप मेरी सचमुचकी लज्जा मत समझना।

उसके साहसको देखकर मैं अवाक् हो गया। वह बोली, "आपको अपने डेरेको लौटनेमें आज कुछ देरी हो जायगी, क्योंकि रोहिणी बाबू आते ही होंगे। आज हम दोनों ही आपके असामी हैं। आपके विचारमें यदि हम लोग अपराधी सुबूत हों, तो जो दण्ड आप देंगे उसे हम मंजूर करेंगे।"

रोहिणीको 'बाबू' कहते यह पहली बार ही सुना। मैंने पूछा, "आप वापस कब लौट आईं?"

अभया बोली, "परसों। वहाँ क्या हुआ, यह जाननेका आपको निश्चय ही कुतूहल हो रहा है।" यह कहकर उसने अपना दाहिना हाथ उघाड़कर दिखाया। बेतके निशान चमड़ेपर जगह जगह उभड़ रहे थे। बोली "और बहुतसे ऐसे निशान भी हैं जिन्हें आपको दिखा नहीं सकती!"

जिन दृश्योंको देखकर मनुष्यका पुरुषत्व हिताहितका ज्ञान खो बैठता है, यह भी उन्हींमें से एक था।" अभयाने मेरे स्तब्ध कठोर मुखकी ओर देखकर पल-भरमें ही सब कुछ समझ लिया और कुछ हँसकर कहा, "किन्तु मेरे वापस लौट आनेका यही एक कारण नहीं है श्रीकान्त बाबू, यह तो मेरे सती-धर्मका एक छोटा-सा पुरस्कार है। वे मेरे पति हैं और मैं उनकी विवाहिता स्त्री,—यह इसीकी जरा-सी बानगी है।"

क्षण-भर चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया, "मैंने स्त्री होकर पतिकी अनुमतिके वगैर ही इतनी दूर आकर उनकी शान्ति भङ्ग कर दी,—स्त्री-जातिकी इतनी बड़ी हिमाकत पुरुष-जाति बरदाश्त नहीं कर सकती। यह उसीका दण्ड है। अनेक तरहसे भुलावा देकर वे मुझे अपने घर ले गये और वहाँ मुझसे कैफियत तलब की कि क्यों मैं रोहिणीके साथ यहाँ तक आई? मैंने कहा कि पतिका घर होता है सो तो मैंने आज तक जाना नहीं। मेरे बाप हैं नहीं, माँ भी मर गई,—ऐसा कोई नही है जो मुझे वहाँ खाने पीनेको दे।—तुम्हें बार बार चिट्ठी लिखनेपर भी जवाब नहीं पाया।' उन्होंने एक बेत

उठाकर कहा, 'आज उसका जवाब देता हूँ।' इतना कहकर अभयाने अपने उस चोट खाये हुए दाहिने हाथको एक बार सहला लिया।

उस अत्यन्त हीन, अमानुष, बर्ब्बरके विरोधमें मेरे सारे अन्तःकरणमें फिर हलचल मच गई, किन्तु, जिस अंध-संस्कारके फलस्वरूप अभया मुझे देखते ही भागकर छिप गई थी, वह संस्कार मेरे भी तो था! मैं भी तो उसकी सीमाके बाहर नहीं था! इसलिए मैं यह भी नहीं कह सका कि 'तुमने अच्छा किया।' साथ ही यह भी मुँहसे न निकला कि, 'अपराध किया है।' दूसरेके अत्यन्त संकटके समय जब अपने निजके विवेक और संस्कारके,—स्वाधीन विचार और पराधीन ज्ञानके बीच संघर्ष छिड़ता है तब दूसरेको उपदेश देने जाने जैसी विडम्बना संसारमें शायद ही कोई हो। कुछ देर चुप रहकर बोला, "तुम्हारा वहाँसे चला आना अन्याय हुआ सो तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु,—"

अभया बोली, "इस 'किन्तु' का विचार ही तो मैं आपके समीप चाहती हूँ, श्रीकान्त बाबू। वे अपनी बर्मी स्त्रीको लेकर सुखसे रहें, मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं; किन्तु, मैं आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि 'पति जब एकमात्र बेतके जोरसे स्त्रीके समस्त अधिकारोंको छीन लेता है और उसे अंधेरी रातमें अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मंत्रोंके जोरसे उसपर पत्नीके कर्तव्योंकी जिम्मेदारी बनी रहती है या नहीं?"'

किन्तु, मैं चुपकी लगाये रहा। उसने मेरे मुँहपर दृष्टि ठहराकर फिर कहा, "यह तो खूब मोटी बात है कि जहाँ अधिकार नहीं वहाँ कर्तव्य भी नहीं। उन्होंने भी तो मेरे ही साथ उन्हीं मंत्रोंका उच्चारण किया था, किन्तु, वह एक निरर्थक बकवाद ही रहा जो उनकी प्रवृत्तिपर,—उनकी इच्छापर तो जरा-सी भी रोक नहीं लगा सका:—मंत्रोंकी वह अर्थहीन आवृत्ति मुँहसे बाहर निकलनेके साथ ही मिथ्यामें मिल गई,—किन्तु, क्या वह सारा बन्धन,—सारा उत्तरदायित्व मैं स्त्री हूँ इसी लिए, केवल मेरे ही ऊपर रह गया? श्रीकान्त बाबू, आप तो 'किन्तु' तक कहके ही रुक गये। अर्थात् मेरा वहाँसे चला आना अन्याय नहीं हुआ, किन्तु,—इस 'किन्तु' का अर्थ क्या केवल यही है कि जिसके पतिने इतना बड़ा अपराध किया है उसकी स्त्रीके नारी-जन्मकी यही चरम सार्थकता है कि वह उसका प्रायश्चित्त करती हुई जीवन-भर जीती हुई भी मृतकके समान बनी रहे? एक दिन मेरे द्वारा जो विवाहके मंत्र बुलवा लिये गये थे,—उन्हींका बुलवा लिया जाना ही क्या

मेरे जीवनका एकमात्र सत्य है, बाकी सब बिल्कुल ही मिथ्या है ? इतना बड़ा अन्याय, इतना बड़ा निष्ठुर अत्याचार, मेरे पक्षमें कुछ भी,—कुछ भी नहीं है ? और क्या मेरे पतित्वका कुछ भी अधिकार नहीं है, माता होनेका अधिकार नहीं है; समाज, संसार, आनन्द किसीपर भी मेरा कुछ अधिकार नहीं है ? यदि कोई निर्दय, मिथ्यावादी, बदचलन पति बिना अपराधके अपनी स्त्रीको घरसे निकाल दे, तो क्या इसीलिए उसका समस्त नारीत्व व्यर्थ, लंगड़ा, पंगु हो जाना चाहिए ? क्या इसीलिए भगवान्ने स्त्रियोंको बनाकर पृथ्वीपर भेजा था ? सभी जातियोंमें, —सभी धर्मोंमें इस तरहके अन्यायका प्रतीकार है;—मैं हिन्दूके घर पैदा हुई हूँ, क्या इसीलिए मेरे लिए सब द्वार बन्द हो गये हैं श्रीकान्त बाबू ?"

मुझे मौन देखकर अभया बोली, "जवाब नहीं दिया श्रीकान्त बाबू ?"

मैंने कहा, "मेरे जवाबसे क्या बनता-बिगड़ता है ? मेरे मतामतके लिए तो आप राह देख नहीं रही थीं ?"

अभया बोली, "किन्तु इसके लिए तो समय नहीं था !"

मैंने कहा, "सो हो सकता है। आप जब मुझे देखकर भाग गई तब मैं भी चला जा रहा था। किन्तु, फिर लौट आया सो क्यों, आप जानती हैं ?"

"नहीं।"

"लौट आनेका कारण यह है कि आज मेरा मन बहुत ही उद्विग्न हो रहा है। आपसे भी अधिक निष्ठुर अत्याचार मैंने एक स्त्रीपर होते हुए आज सुबह देखा है।" यह कहकर जहाज-घाटकी उस बर्मी स्त्रीकी सारी कथा मैंने विस्तारसे कह सुनाई और पूछा, "वह स्त्री अब क्या करे, आप बता सकती हैं ?"

अभया सिहर उठी, इसके बाद गर्दन हिलाकर बोली, "नहीं, मैं नहीं बता सकती।"

मैंने कहा, "आज आपको और भी दो स्त्रियोंका इतिहास सुनाता हूँ। एक तो मेरी अन्नदा जीजीका और दूसरा प्यारीबाईका। दुःखके इतिहासमें इनमेंसे किसीका भी स्थान आपसे नीचे नहीं है।"

अभया चुप हो रही। शुरूसे आखिर तक अन्नदा जीजीकी सारी कथा कहकर मैंने आँख उठाकर देखा कि अभया काठकी मूर्तिकी तरह स्थिर होकर बैठी है, उसकी दोनों आँखोंसे पानी झर रहा है। कुछ देर इसी तरह बैठी रहकर उसने जमीनपर सिर लगाकर नमस्कार किया और वह उठकर बैठ गई। फिर आँचलसे आँखोंको पोंछते हुए बोली, "उसके बाद ?"

मैंने कहा, "उसके बादका हाल कुछ मालूम नहीं। अब प्यारी बाईकी कथा सुनो। जब उसका नाम राजलक्ष्मी था तबसे वह एक आदमीको चाहती थी। वह चाहना किस तरहका था सो आप जानती हैं? रोहिणी बाबू आपको जिस तरह चाहते हैं उसी तरह। यह मैंने अपनी आँखों देखा है, इसीलिए तुलना कर सका। इसके उपरान्त बहुत दिनोंके बाद दोनोंकी मुलाकात हुई। तब वह 'राजलक्ष्मी' नहीं रही थी, 'प्यारी बाई' हो गई थी। किन्तु, यह बात उस दिन प्रमाणित हो गई कि राजलक्ष्मी मरी नहीं है, बल्कि प्यारीके ही भीतर चिरकालके लिए अमर हो गई है।"

अभया उत्सुक होकर बोली, "उसके बाद?"

बादकी घटनाएँ एकके बाद एक विस्तारके साथ सुनाकर कहा, "इसके बाद एक दिन ऐसा आ पड़ा कि जिस दिन प्यारीने अपने प्राणाधिक प्रियतमको चुपचाप दूर हटा दिया।"

अभयाने पूछा, "उसके बाद क्या हुआ, जानते हैं?"

"जानता हूँ। पर अब नहीं कहूँगा।"

अभयाने एक निःश्वास छोड़कर कहा, "आप क्या यह कहना चाहते हैं कि मैं अकेली ही नहीं हूँ,—चिरकालसे ही स्त्रियोंको ऐसे दुर्भाग्यका भोग करना पड़ रहा है और इस दुःखको सहन करते रहनेमें ही उनके जीवनकी चरम सफलता है?"

मैंने कहा, "मैं यह कुछ भी नहीं कहना चाहता। आपको मैं केवल इतना ही जतला देना चाहता हूँ कि स्त्रियाँ मर्द नहीं हैं। दोनोंके आचार-व्यवहार एक ही तराजूसे नहीं तौले जा सकते; और तौले भी जायँ तो कोई लाभ नहीं।"

"क्यों नहीं है, कह सकते हैं?"

"नहीं, सो भी नहीं कह सकता। इसके सिवाय आज मेरा मन कुछ ऐसा उद्भ्रान्त हो रहा है कि इन सब जटिल समस्याओंकी मीमांसा करना संभव ही नहीं। आपके प्रश्नपर मैं और एक दिन विचार करूँगा। फिर भी, आज मैं आपसे यह कहे जा सकता हूँ कि मैंने अपने जीवनमें जो थोड़ेसे महान् नारी-चरित्र देखे हैं उन सबने दुःखके भीतरसे गुज़रकर ही मेरे मनमें ऊँचा स्थान पाया है। मैं यह शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरी अन्नदा जीजी अपने दुःखका सारा भार चुपचाप सहन करनेके सिवाय और कुछ न कर सकतीं। यह भार असह्य होनेपर भी वे अपने पथसे हटकर कभी आपके पथपर पैर रख सकतीं, यह बात सोचनेसे भी शायद दुखके मारे मेरी छाती फट जायगी।"

कुछ देर चुप रहकर कहा, "और वह राजलक्ष्मी। उसके त्यागका दुःख कितना बड़ा है सो तो मैं स्वयं अपनी नजरसे देख आया हूँ। इस दुःखके जोरसे ही उसने आज मेरे समस्त हृदयको परिव्याप्त कर रक्खा है—"

अभयाने चौंककर कहा, "तो फिर क्या आप ही उनके—"

मैंने कहा, "यदि ऐसा न होता तो वह इतनी स्वच्छन्दतासे मुझे इतनी दूर न पड़ा रहने देती, खो जानेके डरसे प्राणपणसे खींचकर अपने पास ही रखना चाहती।"

अभया बोली, "इसके मानी यह कि राजलक्ष्मी जानती है कि उसे आपके खोये जानेका डर ही नहीं है!"

मैंने कहा, "केवल डर ही नहीं, राजलक्ष्मी जानती है कि मैं खोया जा ही नहीं सकता। इसकी संभावना ही नहीं है। पाने और खोनेकी सीमासे बाहर जो एक सम्बन्ध है, मुझे विश्वास है कि उसने उसे ही प्राप्त कर लिया है और इसीलिए मेरी भी इस समय उसे जरूरत नहीं है। देखो, मैंने स्वयं भी इस जीवनमें कुछ कम दुःख नहीं उठाया है। उससे मैंने यही समझा है कि 'दुःख' जिसे कहते हैं वह वस्तु न तो अभावरूप ही है और न शून्यरूप। भयहीन जो दुःख है, उसका उपभोग सुखकी तरह ही किया जा सकता है।"

अभया देरतक स्थिर रहकर धीरेसे बोली, "मैं आपकी बात समझती हूँ श्रीकान्त बाबू! अन्नदा जीजी, राजलक्ष्मी,—इन दोनोंने ही जीवनमें दुःखको ही सम्बलरूपसे प्राप्त किया है। किन्तु, मेरे हाथ तो वह भी नहीं। पतिके समीप मैंने पाया हैं केवल अपमान। केवल लांछना और ग्लानि लेकर ही मैं लौट आई हूँ। इस मूल-धनको लेकर ही क्या आप मुझे जीवित रहनेके लिए कहते हैं?"

सवाल बड़ा ही कठिन है। मुझे निरुत्तर देखकर अभया फिर बोली, "इनके साथ मेरे जीवनका कहीं भी मेल नहीं है श्रीकान्त बाबू। संसारके सभी स्त्री-पुरुष एक साँचेमें ढले नहीं होते, उनके सार्थक होनेका रास्ता भी जीवनमें केवल एक नहीं होता। उनकी शिक्षा, उनकी प्रवृत्ति और मनकी गति एक ही दिशामें चलकर उन्हें सफल नहीं बना सकती। इसीलिए, समाजमें उनकी व्यवस्था रहना उचित है। मेरे जीवनपर ही आप एक दफे अच्छी तरह शुरूसे आखिरतक नजर डाल जाइए। मेरे साथ जिनका विवाह हुआ था उनके समीप आये बिना भी कोई उपाय नहीं था और आनेपर भी कोई उपाय नहीं हुआ। इस समय उनकी स्त्री, उनके बाल-बच्चे, उनका प्रेम, कुछ भी मेरा खुदका नहीं है। इतनेपर भी उन्हींके समीप उनकी एक रखेल वेश्याकी तरह पड़े

रहनेसे ही क्या मेरा जीवन फल-फूलोंसे लदकर सफल हो उठता श्रीकान्तबाबू? और उस निष्फलताके दुःखको लादे हुए सारे जीवन भटकते फिरना ही क्या मेरे नारी जीवनकी सबसे बड़ी साधना है? रोहिणी बाबूको तो आप देख ही गये हैं। उनका प्यार तो आपकी दृष्टिसे ओझल है नहीं। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगड़ा बनाकर मैं 'सती' का खिताब नहीं खरीदना चाहती श्रीकान्त बाबू।"

हाथ उठाकर अभयाने आँखोंके कोने पोंछ डाले और फिर रुँधे हुए कण्ठसे कहा, "[illegible] एक रात्रिके विवाह-अनुष्ठानको, जो कि पति-पत्नी दोनोंके ही निकट स्वप्नकी तरह मिथ्या हो गया है, जबर्दस्ती जीवन-भर 'सत्य' कहकर खड़ा रखनेके लिए इतने बड़े प्रेमको क्या मैं बिल्कुल ही व्यर्थ कर दूँ? जिन विधाताने प्रेमकी यह देन दी है, वे क्या इसीसे खुश होंगे? मेरे विषयमें आपकी जो इच्छा हो वही धारणा कर लें: मेरी भावी सन्तानको भी आप जो चाहे सो कहकर पुकारें, किन्तु जीती रहूँगी श्रीकान्त बाबू, तो मैं निश्चयपूर्वक कहे रखती हूँ कि हमारे निष्पाप प्रेमकी सन्तान संसारमें मनुष्यके लिहाजसे किसीसे भी हीन न होगी और मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण करनेको वह अपना दुर्भाग्य कभी न समझेगी। उसे दे जाने लायक वस्तु उसके माँ-बापके समीप शायद कुछ भी न होगी; किन्तु, उसकी माता उसको यह भरोसा अवश्य दे जायगी कि वह सत्यके बीच पैदा हुई है, सत्यसे बढ़कर सहारा उसके लिए संसारमें और कुछ नहीं है। इस वस्तुसे भ्रष्ट होना उसके लिए कठिन होगा।—ऐसा होनेपर वह बिल्कुल ही तुच्छ हो जायगी।"

अभया चुप हो रही, किन्तु सारा आकाश मानो मेरी आँखोंके सामने काँपने लगा, मुहूर्त-भरके लिए मुझे भास हुआ कि इस स्त्रीके मुँहकी बातें मानों मूर्त्त रूप धारण करके बाहर हम दोनोको घेरकर खड़ी हो गई हैं।— हाँ, ऐसा ही मालूम हुआ। सत्य जब सचमुच ही मनुष्यके हृदयसे निकलकर सम्मुख उपस्थित हो जाता है तब मालूम होता है कि वह सजीव है,—मानो उसके रक्त-मांसयुक्त शरीर है और मानो उसके भीतर प्राण भी हैं,—'नहीं' कहकर अस्वीकार करनेपर मानो वह चोट करके कहेगा, "चुप रहो! मिथ्या तर्क करके अन्यायकी सृष्टि मत करो!"

सहसा अभया एक सीधा प्रश्न कर बैठी; बोली, "आप स्वयं भी क्या हमें अश्रद्धाकी नजरसे देखेंगे श्रीकान्त बाबू? और अब क्या हमारे घर न आवेंगे?"

उत्तर देते हुए मुझे कुछ देर इधर उधर करना पड़ा। इसके बाद मैं

बोला, "अन्तर्यामीके समीप तो शायद आप निष्पाप हैं,—वे आपका कल्याण ही करेंगे; किन्तु, मनुष्य तो मनुष्यका अन्तस्तल नहीं देख सकते,—उनके लिए तो प्रत्येकके हृदयका अनुभव करके विचार करना संभव नहीं है। यदि वे प्रत्येकके लिए अलहदा अलहदा नियम गढ़ने लगें तो उनके समाजकी सबकी सब कार्य-शृंखला ही टूट जाय।"

अभया कातर होकर बोली, "जिस धर्ममें,—जिस समाजमें हम लोगोंको उठा लेने योग्य उदारता है,—स्थान है,—क्या आप हम लोगोंसे उसी समाजमें आश्रय ग्रहण करनेके लिए कहते हैं?"

इसका क्या जवाब दूँ, मैं सोच ही न सका।

अभया बोली, "अपने आदमी होकर भी अपने ही आदमीको आप संकटके समय आश्रय नहीं दे सकते?—उस आश्रयकी भीख माँगनी होगी हमें दूसरों के निकट? उससे क्या गौरव बढ़ता है श्रीकान्त बाबू?"

प्रत्युत्तरमें केवल एक दीर्घश्वासके सिवाय और कुछ मुँहसे बाहर नहीं निकला।

अभया स्वयं भी कुछ देर मौन रहकर बोली, "जाने दीजिए। आप लोगोंने जगह नहीं दी न सही, मुझे सान्त्वना यही है कि जगतमें आज भी एक बड़ी जाति है जो खुले तौर पर स्वच्छन्दतासे स्थान दे सकती है।"

उसकी बातसे कुछ आहत होकर बोला, "क्या हर हालतमें आश्रय देना ही भला काम है, यह मान लेना चाहिए?"

अभया बोली, "इसका प्रमाण तो हाथोंहाथ मिल रहा है श्रीकान्त बाबू, 'पृथिवीमें कोई अन्याय-कार्य अधिक दिन तक नहीं फल-फूल सकता, यह बात यदि सत्य है तो क्या यह कहना पड़ेगा कि इसीलिए वे अन्यायको आश्रय देते हुए दिनों दिन ऊंचे बढ़ रहे हैं, और हम लोग न्याय धर्मको आश्रय देकर प्रति दिन क्षुद्र और तुच्छ होते जा रहे हैं?—हम लोग तो यहाँ कुछ ही दिन हुए आये हैं, परंतु, इतने दिनोंमें ही देखती हूँ कि मुसलमानोंसे यह सारा देश छाया जा रहा है। सुनती हूँ ऐसा एक भी गाँव नहीं है जहाँ कमसे कम एक घर मुसलमानका न हो और जहाँपर एकाध मसजिद तैयार न हो गई हो। हम लोग शायद अपनी आँखों न देख जा सकें; किन्तु, ऐसा दिन शीघ्र ही आवेगा जिस दिन हमारे देशकी तरह यह बर्मा देश मुसलमान-प्रधान देश बन जायगा। आज सुबह ही जहाज-घाटपर एक अन्याय देखकर आपका मन खराब हो गया है। आप ही कहिए, किस मुसलमानने बड़े भाईको धर्म

और समाजके भयसे ऐसे षड्यन्त्रका,—ऐसी नीचताका आसरा लेकर सुख-चैनकी ऐसी गिरस्ती राखमें मिलाकर भाग जानेकी जरूरत पड़ती ? बल्कि इससे उलटा, वह तो सभीको अपने दलमें खींच लेकर आशीर्वाद देता और बड़े भाईके योग्य सम्मान और मर्यादा ग्रहण कर घर लौट जाता। इन दोनों-मेंसे किससे सच्चा धर्म बना रहता है श्रीकान्त बाबू ?"

मैंने गहरी श्रद्धासे भरकर पूछा, "अच्छा, आप तो गँवई-गाँवकी कन्या हैं, आपने ये सब बातें किस तरह जानीं ? मैं तो नहीं समझता कि इतने प्रशस्तहृदय हम पुरुषोंमें भी अधिक हैं। आप जिसकी माता होंगी वह अभागी हो सकता है, इसकी कमसे कम मैं तो किसी तरह कल्पना नहीं कर सकता।"

अभया अपने म्लान मुखपर जरा-सा हँसीका आभास लाकर बोली, "तो फिर श्रीकान्त बाबू, मुझे समाजसे बाहर कर देनेसे ही क्या हिन्दू समाज अधिक पवित्र हो उठेगा ? इससे क्या किसी ओरसे भी समाजको नुकसान नहीं उठाना पड़ेगा ?"

कुछ देर स्थिर रहकर और फिर कुछ जरा-सा हँसकर कहा, "किन्तु मैं किसी तरह भी समाजसे बाहर न होऊँगी। सारा अपयश, सारा कलंक, सारा दुर्भाग्य अपने सिरपर लेकर हमेशा आप लोगोंकी ही होकर रहूँगी। अपनी एक संतानको भी यदि किसी दिन मनुष्यकी तरह मनुष्य बनाकर खड़ा कर सकूँ, तो मेरा यह सारा दुःख सार्थक हो जाय,—बस यही आशा लेकर मैं जीऊँगी। मुझे परीक्षा करके देखना होगा कि सचमुचका मनुष्य ही मनुष्योंमें बड़ा है या उसके जन्मका हिसाब ही संसारमें बड़ा है।"

११

मनोहर चक्रवर्ती नामक एक प्राज्ञ सज्जनसे मेरी मुलाकात हो गई थी। दादा ठाकुरकी होटलमें एक हरि-संकीर्तन दल था। पुण्य बटोरनेकी इच्छासे बीच-बीचमें वे उसी निमित्त वहाँ आते थे। किन्तु कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं,—सो मैं कुछ नहीं जानता था। सिर्फ इतना ही सुना था कि उनके पास बहुत-सा रुपया है, और सब तरफ़से वे अत्यन्त हिसाबी हैं।

न जाने क्यों, मुझसे बेहद प्रसन्न होकर वे एक दिन अकेलेमें बोले, "देखो श्रीकान्त बाबू, तुम्हारी उम्र छोटी है,—जीवनमें यदि उन्नति प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें मैं कुछ ऐसे 'गुर' बतला सकता हूँ जिनका मूल्य लाख रुपया है।

मैने खुद जिनके समीप ये गुर प्राप्त किये थे उन्होंने संसारमें कितनी उन्नति की थी, सुनोगे तो शायद अवाक् हो जाओगे, किन्तु बात बिल्कुल सच है। वे केवल पचास रुपया महीना पाते थे, परन्तु मरते समय घर-बार, बाग-बगीचा, तालाब, जमीन-जायदाद आदिके सिवाय दो हज़ार रुपये नकद छोड़ गये। कहो न, यह क्या कोई सहज बात है? अपने माँ-बापके आशीर्वादसे मैं खुद भी तो—"

परन्तु, वे अपनी बात यहींपर दबा देकर बोले, "सुनता हूँ तनखा तो खूब मोटी-सी पाते हो, भाग्य भी तुम्हारा बड़ा अच्छा है,—बर्मामें आते ही किसीका ऐसा भाग्य खुलते नहीं सुना गया,—किन्तु फिजूलखर्ची भी कितनी करते हो!—है न यह बात? भीतर ही भीतर पता लगानेसे दुःखके मारे छाती फट जाती है। देखते ही तो हो कि मैं लोगोंकी किसी बातमें नहीं पड़ता। किन्तु, मेरे माफिक, अधिक नहीं, दो बरस तो चल देखो। मै कहता हूँ तुमसे, कि देश लौटकर अगर चाहोगे तो तुम अपना विवाह तक कर सकोगे।"

इस सौभाग्यके लिए भीतर ही भीतर मैं इस कदर ललायित हो उठा हूँ, यह तथ्य न मालूम उन्होंने किस तरह पा लिया,—किन्तु, यह तो खुद ही प्रकट कर चुके थे कि वे भीतर ही भीतर पता लगाये बिना किसीकी भी किसी बातमें नहीं पड़ते।

जो हो, उनके उन्नतिके बीज-मंत्र-रूप सत्परामर्शके लिए मैं लुब्ध हो उठा। वे बोले, "देखो, दान वान करनेकी बात छोड़ दो,—चोटीका पसीना एड़ी तक बहाकर रोज़ी कमानी होती है, कमर-भर मिट्टी खोदनेपर भी पैसा नहीं मिलता। अपने खूनको जलाकर पैदा की हुई कौड़ी गैरोंको बख्श दे, आजकलकी दुनियामें ऐसा पागल और भी कोई है? अपने स्त्री-बच्चों और परिवारके लिए रख छोड़ा जाय, तब न दूसरोंको दान किया जाय? इस बातको बिल्कुल ही छोड़ दो यह मैं नहीं कहता,—किन्तु देखो, जिसके घरमें पैसेकी खींच-तान हो उस आदमीको कभी प्रश्रय न देना। अधिक नहीं दो-चार दिनकी आमद-रफ्तके बाद ही वह अपनी गिरस्तीकी कष्ट-कहानी सुनाकर दो-चार रुपये माँग बैठेगा। जो दिये सो तो दिये ही, और बाहरका झगड़ा घरमें खींच लाये सो अलग। रुपयोंकी ममता वैसे कोई सचमुचमें तो छोड़ सकता नहीं,—तकाजा करना ही पड़ता है, और तब दौड़-धूप झगड़ा-बखेड़ा। भला हमें इसकी जरूरत ही क्या पड़ी है?" मैंने गर्दन हिलाकर कहा, "जी हाँ, आप बिल्कुल सही कहते हैं।"

वे उत्तेजित होकर बोले, "तुम अच्छे घरके लड़के हो, इसलिए चटसे बात समझ गये; किन्तु इन छोटी जातके लोहा पीटनेवाले सालोंको तो समझाओ देखूँ! हरामजादे सात जन्ममें भी नहीं समझेंगे। सालोंके पास खुदका एक पैसा नहीं, फिर भी, पराये घरसे कर्ज़ लाकर दूसरोंको दे आयेंगे। ये छोटे लोग ऐसे ही अहमक होते हैं!"

कुछ देर चुप रहकर बोले, "तब हाँ देखो, कभी किसीको भी रुपये उधार मत देना। कहेंगे, 'बड़ा कष्ट है!'—तुम्हें कष्ट है भाई, तो हमें क्या? और यदि सचमुचमें ही कष्ट है तो दो तोले सोना लाकर रख जाओ न, अभी देता हूँ दस रुपये उधार?—क्यों भइया, है न ठीक?"

मैंने कहा, "जी हाँ, ठीक तो है!"

वे बोले, "एक दफे नहीं, सौ दफे ठीक है! और देखो, झगड़े-बखेड़ेकी जगह कभी मत जाना। किसीका खून हो जाय तो भी नहीं। हमें उससे मतलब? यदि किसीको बचाने जाओगे तो दो एक चोटें अपनेपर भी आ पड़ेंगी। सिवाय इसके कोई एक पक्ष अपना गवाह मान बैठेगा। तब फिर मुफ़्तमें करो दौड़ादौड़ अदालतों तक! बल्कि, लड़ाई झगड़ा जब खतम हो जाय तब, यदि जी चाहे तो घूम आओ एक दफे वहाँ तक; और दो बातें भली बुरी सलाहकी दे आओ।—पाँच आदमियोंमें तुम्हारा नाम हो जायगा। है न बात ठीक?"

कुछ देर चुप रहकर फिर उन्होंने कहना शुरू किया, "और फिर, इन लोगोंके रोग-शोकके समय तो भइया, मैं इनके महल्लेमें भी पैर नहीं रखता। उसी समय कह बैठते हैं कि 'भाई, मैं मर रहा हूँ, इस विपत्तिमें दो रुपया देकर ज़रा सहायता करो!'—पर भइया, मनुष्यके मरने-जीनेकी बात तो कुछ कही नहीं जा सकती, इसलिए, उसे रुपया देना और पानीमें फेंक देना एक ही बात है,—बल्कि पानीमें फेंक देना कहीं भला है, परन्तु उस जगह नहीं। और कुछ नहीं तो शायद यही कह बैठते हैं, 'ज़रा रत-जगा करने आ बैठना।' बहुत खूब! मैं जाऊँ उनकी बीमारीमें रत-जगा करने किन्तु इस दूर परदेशमें मुझे ही कुछ,—न करें माता शीतला, कान पकड़ता हूँ माँ!"—यों कहकर उन्होंने जीभको दाँतों-तले दबा लिया तथा अपने कान अपने ही हाथों ऐंठकर और नमस्कार कर कहा, "हम लोग सभी तो उनके चरणोंमें पड़े हैं,—किन्तु, बताओ भला, ऐसी विपत्तिमें मेरी खबर कौन लेगा?"

अबकी मै हाँमें हाँ न मिला सका। मुझे मौन देखकर वे मन ही मन शायद कुछ दुविधामें पड़कर बोले, "देखो न साहब लोगोंको। वे क्या कभी ऐसे स्थानोंमें जाते हैं?—कभी नहीं। अपना एक कार्ड-भर पठा दिया, बस, हो गया। इसी लिए देखो न उनकी उन्नतिको! उसके बाद अच्छे होनेपर फिर वैसा ही मेल जोल,—ठीक उसी तरह। सो भइया, किसीके झगड़े-झंझटमें कभी न पड़ना चाहिए।"

आफिसका समय होते देख मै उठ खड़ा हुआ। इन प्राज्ञ महाशयकी भली सलाहसे इतनी उम्रमें मेरी अधिक मानसिक उन्नति होना संभव हो, सो बात नहीं। उससे मनके भीतर, और तो क्या, हलचल भी कुछ अधिक नहीं मची। क्योंकि, इस किस्मके अनुभवी व्यक्तियोंका देहातमें बिल्कुल अभाव नहीं देखा। तथा उनकी ओर चाहे जितनी बदनामी हो, किन्तु, सलाह देनेमें वे कंजूसी करते हों, उनके बारेमें यह अपवाद भी कभी नहीं सुना गया। और, देशके लोगोंने मान भी लिया है कि यह सलाह भली सलाह है,—जीवन-यात्राके कार्यमें निस्संदिग्ध सज्जनोचित उपाय हैं,—फिर भले ही पारिवारिक जीवनमें यह उतनी कारगर न हो जितनी कि सामाजिक जीवनमें। बंगाली गृहस्थका कोई लड़का यदि अक्षरशः इसके अनुसार चले तो उसके माँ-बाप असन्तुष्ट होंगे,—बंगाली माता-पिताओंके विरुद्ध इतनी बड़ी झूठी वदनामी फैलाते हुए पुलिसके सी० आई० डी० के आदमियोंका विवेक भी बाधा डालेगा। सो चाहे जो हो, किन्तु, इस तरहकी प्रतिज्ञाके भीतर कितना बड़ा अपराध था सो दो हफ़्ते भी न गुजरने पाए कि भगवानने इन्हींके द्वारा मेरे निकट प्रमाणित कर दिया।

तबसे मैं अभयाके घरकी ओर नहीं गया था। यह सत्य है कि मैं उसकी सारी अवस्थाके साथ उसकी बातोंका मिलान करके शुरूसे अन्ततकके इस व्यापारको ज्ञानके द्वारा एक तरहसे देख सकता था। यह भी ठीक है कि उसके विचारोंकी स्वाधीनता, उसके आचरणकी निर्भीक सावधानता, उनका परस्परका सुन्दर और असाधारण स्नेह,—यह सब मेरी बुद्धिको उसी ओर निरन्तर आकर्षित करते थे, किन्तु फिर भी, मेरे जीवन-भरके संस्कार किसी तरह भी उस ओर मुझे पैर नहीं बढ़ाने देते थे। मनमें केवल यही आता था कि मेरी अन्नदा जीजी यह कार्य न करतीं। वे कहीं भी दासी-वृत्ति करके लांछना, अपमान और दुःखके भीतरसे गुज़रते हुए अपना बाकी जीवन काट देतीं,

किन्तु, ब्रह्माण्डके सारे सुखोंके बदलेमें भी जिसके साथ उनका विवाह नहीं हुआ उसके साथ गिरस्ती करनेको राजी न होतीं। मैं जानता हूँ, उन्होंने भगवानके चरणोंमें एकान्तभावसे अपने आपको समर्पित कर दिया था। अपनी उस साधनाके भीतरसे उन्होंने पवित्रताकी जो धारणा और कर्तव्यका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सो अभयाकी सुतीक्ष्ण बुद्धिकी मीमांसाके समीप क्या एकबारगी ही बच्चोंका खेल था?

हठात् अभयाकी एक बात याद आ गई। तब भली भाँति तहतक पहुँचनेका मुझे अवकाश नहीं मिला था। उसने कहा था, "श्रीकान्त बाबू, दुःखका भोग करनेमें भी एक किस्मका नाशकारी मोह है। मनुष्यने अपनी युग-युगकी जीवन-यात्रामें यह देखा है कि कोई भी बड़ा फल किसी बड़े भारी दुःखको उठाये बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसका जन्म-जन्मान्तरका अनुभव इस भ्रमको सत्य मान बैठा है कि जीवनरूपी तराजूमें एक तरफ जितना ही अधिक दुःखका भार लादा जाय, दूसरी ओर उतना ही अधिक सुखका बोझा ऊपर उठ आता है। इसीलिए तो, मनुष्य जब संसारमें अपनी सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तिको अपनी इच्छासे वर्जित करके यह समझकर निराहार घूमता फिरता है कि 'मैं तपस्या करता हूँ,' तब, इस सम्बन्धमें कि उसके खानेके लिए कहींपर उससे चौगुना आहार संचित हो रहा है, न तो उसके ही मनमें तिल-भर सन्देह उठता है और न किसी औरके ही मनमें। इसीलिए, जब कोई संन्यासी निदारुण शीतमें गले तक जल-मग्न होकर और भीषण गर्मीकी भयंकर धूपमें धूनी रमाये जमीनपर सिर और ऊपर पैर करके अवस्थित रहता है तब उसके दुःख-भोगकी कठोरता देखकर दर्शकोंके दल केवल दुःखका ही अनुभव नहीं करते, बल्कि उसपर एकबारगी मुग्ध हो जाते हैं। भविष्यमें उसे मिलनेवाले आरामके भारी और असंभव हिसाबकी खतौनी करके उनका प्रलुब्ध चित्त ईर्ष्यासे व्यस्त हो उठता है और वे कहने लगते हैं कि वह नीचे सिर और ऊपर पैर रखनेवाला व्यक्ति ही संसारमें धन्य है, मनुष्य-देह धारण करके करने योग्य कार्य वास्तवमें वही कर रहा है, हम लोग तो कुछ भी नहीं कर रहे हैं,— व्यर्थ ही जीवन गवाँ रहे हैं! इस तरह अपने आपको हजारों धिक्कार देते हुए वे मलीन मनसे घर लौट आते हैं। श्रीकान्त बाबू, सुख प्राप्त करनेके लिए दुःख स्वीकार करना चाहिए, यह बात सत्य है किन्तु इसीलिए, यह स्वतःसिद्ध नहीं हो जाता कि जिस तरह भी हो, बहुतसा

दुःख भोग लेनेसे ही सुख हमारे कंधोंपर आ बैठेगा। यह इस कालमें भी सत्य नहीं है और परलोकमें भी नहीं।"

मैंने कहना शुरू किया, "किन्तु, विधवाका ब्रह्मचर्य—"

अभयाने मुझे बीचमें टोककर कहा, "विधवाका 'आचरण' कहिए—, उसके साथ 'ब्रह्म'का बिन्दुमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। विधवाका चाल-चलन ही ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय है, यह मैं नहीं मानती। वास्तवमें वह तो कुछ भी नहीं है। कुमारी, सधवा, विधवा,—सभी अपने अपने मार्गसे ब्रह्म लाभ कर सकती हैं। विधवाका आचरण ही इसके लिए रिजर्व नहीं कर रक्खा गया है।"

मैंने हँसकर कहा, "बहुत ठीक, ऐसा ही सही। उसका आचरण ब्रह्मचर्य न सही,—नामसे क्या आता-जाता है?"

अभयाने बिगड़कर कहा, "नाम ही तो सब कुछ है श्रीकान्त बाबू, नामको छोड़कर दुनियामें और है ही क्या? गलत नामोंके भीतरसे मनुष्यकी बुद्धिकी विचारशीलताकी और ज्ञानकी धारा कितनी बड़ी भूलोंके बीच बहाई जा सकती है, सो क्या आप नहीं जानते? इसी नामके भुलावेके कारण ही तो सब देश और सब काल विधवाके आचरणको सबसे श्रेष्ठ मानते आ रहे हैं। यह निरर्थक त्यागकी निष्फल महिमा है श्रीकान्त बाबू, बिल्कुल ही व्यर्थ, बिल्कुल ही गलत। मनुष्यको इह-लोक और पर-लोक दोनोंमें पशु बना देनेवाली इससे बढ़कर जादूगरी और कोई हो ही नहीं सकती।"

उस समय और बहस न करके मैं चुप हो गया था। दरअसल उसे बहसमें हरा देना एक तरहसे असंभव ही था। पहले-पहल जब जहाजपर उससे परिचय हुआ, डॉक्टर साहब केवल उसे बाहरसे ही देखकर मजाकमें बोले थे, "औरत तो बड़ी ही 'फारवर्ड' है,"—परन्तु उस समय दोनोंमेंसे किसीने भी यह नहीं सोचा था कि, इस 'फारवर्ड' शब्दका अर्थ कहाँ तक पहुँच सकता है! यह रमणी अपने समस्त अन्तस्तल तकको किस तरह अकुण्ठित तेजसे बाहर खींचकर सारे संसारके सामने खोलकर रख सकती है,—लोगोंके मतामतकी पर्वा ही नहीं करती, उस समय इसके सम्बन्धमें हमारी यह धारणा नहीं थी। अभया केवल अपने मतको अच्छा प्रमाणित करनेके लिए ही वाग्वितंडा नहीं करती,—वह अपने कार्यको भी बलपूर्वक विजयी करनेके लिए बाकायदा युद्ध करती है। उसका मत कुछ हो और काम कुछ और हो, ऐसा नहीं है; इसलिए, शायद, बहुत दफे मैं उसके सामने उसकी बातका

जवाब खोजे नहीं पाता था, कुछ अप्रतिभ-सा हो जाता था,—परन्तु, लौटकर जब अपने डेरेपर पहुँचता था तब ख़याल आता था,—अरे यह तो उसका खूब करारा उत्तर था! खैर, जो भी हो, उसके सम्बन्धमें आज भी मेरी दुविधा नहीं मिटी है। अपने आपसे मैं जितना ही प्रश्न करता कि इसके सिवाय अभयाके लिए और गति ही क्या थी, उतना ही मेरा मन मानो उसके विरुद्ध टेढ़ा होकर खड़ा हो जाता। जितना ही मैं अपने आपको समझाता कि उसपर अश्रद्धा करनेका मुझे जरा भी हक़ नहीं है,—उतना ही अव्यक्त अरुचिसे मानों अन्तर भर उठता।

मुझे खयाल आता है कि मनकी ऐसी कुंठित अप्रसन्न अवस्थामें ही मेरे दिन बीत रहे थे, इसीलिए, न तो मैं उसके समीप ही जा सकता था और न एकबारगी उसे अपने मनसे दूर ही हटा सकता था।

ऐसे ही समय हठात् एक दिन प्लेगने शहरके बीच आकर अपना घूँघट खोल दिया और अपना काला मुँह बाहर निकाला। हायरे! उसे समुद्र-पार रोक रखनेके लिए किये गये लक्ष कोटि जन्तर-मन्तर और अधिकारियोंकी अधिकसे अधिक निष्ठुर सावधानी, सब मुहूर्त-भरमें एकबारगी धूलमें मिल गई! लोगोंमें बेहद आतंक छा गया। शहरके चौदह आने लोग या तो नौकर-पेशा थे या फिर व्यापार-पेशा। इस कारण, उनको एकबारगी दूर भाग जानेका भी सुभीता नहीं था। वही दशा हुई जैसी किसी सब ओरसे रुद्ध कमरेके बीच आतिशबाजीकी छछूँदर छोड़ देनेपर होती है। भयके मारे इस महल्लेके लोग स्त्री-पुत्रोंका हाथ पकड़, छोटी छोटी गठरियाँ कंधोंपर लादे, उस महल्लेको भागते थे और उस महल्लेके लोग ठीक उसी तरह इस महल्लेको भागते आते थे! मुँहसे 'चूहा' शब्द निकला नहीं कि फिर खैर नहीं। वह मरा है या जीता, यह सुननेके पहले ही लोग भागना शुरू कर देते! मालूम होता था, लोगोंके प्राण मानों वृक्षके फलोंकी तरह पककर डंठलोंमें झूल रहे हैं, प्लेगकी हवा लगते ही रात-भरमें उनमेंसे कौन कब 'टप'से नीचे टपक पड़ेगा, इसका कोई निश्चय ही नहीं।

शनीचरकी बात है। एक साधारणसे कामके लिए सुबह ही मैं बाहर चला गया था। शहरके बीचोबीच एक गलीके भीतरसे बड़े रास्तेपर जानेके लिए जल्दी जल्दी पैर बढ़ाये चला जा रहा था कि देखा एक अत्यन्त जीर्ण मकानके दो-मंजिलेके बरामदेमें मनोहर चक्रवर्ती खड़े हुए बुला रहे हैं।

मैंने हाथ हिलाकर कहा, "समय नहीं।"

वे अतिशय अनुनय-सहित बोले, "दो मिनटके लिए एकदफे ऊपर आइए श्रीकान्त बाबू, बड़ी आफतमें हूं।"

आखिर बिल्कुल इच्छा न रहते भी ऊपर जाना पड़ा।—मैं यही तो बीच-बीचमें सोचा करता हूँ कि क्या मनुष्यकी हर एक हरकत पहलेसे ही निश्चित की हुई होती है! नहीं तो, मेरा कोई ऐसा काम भी न था और न उस गलीके भीतर इससे पहले कभी प्रवेश ही किया था: तब, आज हूबहू ही मैं उस ओर आकर कैसे हाजिर हो गया?"

नजदीक जाकर कहा, "बहुत दिनसे तो आप उस तरफ आये नहीं,—आप क्या इसी मकानमें रहते हैं?"

वे बोले, "नहीं महाशय, मैं बारह-तेरह दिन हुए तभी यहाँ आया हूँ। एक तो महीने-भरसे 'डिसेण्ट्री' (दस्त लगनेकी बीमारी) भुगत रहा हूं, फिर उसपर हो गई हमारे महल्लेमें प्लेग! क्या करूँ महाशय, उठ तक नहीं सकता हूँ, फिर भी जैसे-तैसे जल्दीसे भाग आया।"

मैंने कहा, "बहुत ठीक किया।"

वे बोले, "बहुत ठीक किया, यह कैसे कहूँ महाशय, मेरा 'कम्बाइण्ड हैण्ड' बहुत ही बदजात है। बोलता है 'नहीं रहूँगा, चला जाऊँगा।' जरा सालेको अच्छी तरह धमका तो दीजिए।"

मुझे जरा अचरज हुआ। किन्तु, इसके पहले इस 'कम्बाइण्ड हैण्ड' नामक चीजकी व्याख्या कर देना जरूरी है। क्योंकि जो लोग यह नहीं जानते कि 'हिन्दुस्तानी लोग' पैसेके लिए जो न कर सकें दुनियामें ऐसा कोई काम ही नहीं है, वे लोग यह सुनकर विस्मित होंगे कि इस अंग्रेजी शब्दका मतलब है दुबे, चौबे, तिवारी आदि हिन्दुस्तानी ब्राह्मण, जो, यहांपर तो किसीके पास फटकते ही उछल पड़ते हैं, परंतु, वहाँ जाकर रसोई बनाते हैं, जूठे बर्तन माँजते हैं, तम्बाकू भरते हैं और बाबू साहबोंके आफिस जाते समय उनके बूट झाड़कर साफ कर देते हैं,—फिर वे बाबू चाहे किसी भी जातिके क्यों न हों। हाँ, यह बात अवश्य है कि दो-चार रुपये महीना अधिक देनेपर ही ये त्रिवेदी, चतुर्वेदी, आदि पूज्य लोग ब्राह्मण और शूद्र,—दोनोंका काम 'कम्बाइण्ड' तौरपर करते हैं। बेवकूफ उड़िया और बंगाली ब्राह्मण आजतक भी यह कार्य करनेको राजी नहीं किये जा सके, किये जा सके तो सिर्फ ये ही। इसका कारण पहले

ही कह चुका हूँ कि पैसा पानेपर सारे कुसंस्कारोंको छोड़नेमें 'हिन्दुस्तानी लोगों' को मुहूर्त-भरकी भी देर नहीं लगती। (मुर्गी पकानेके लिए चार-आठ आने महीने और अधिक देने पड़ते हैं: क्योंकि 'मूल्यके द्वारा सब कुछ शुद्ध हो जाता है,'—शास्त्रके इस वचनार्धका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम करने तथा शास्त्र-वाक्यमें अविचिलित श्रद्धा रखनेमें आज-तक यदि कोई समर्थ हुए हैं तो यही 'हिन्दुस्तानी लोग,'—यह बात स्वीकार करनी ही होगी।)

किन्तु, मनोहर बाबूके इस 'कम्बाइण्ड हैण्ड' को मैं किस लिए धमकी दूँ और वह भी क्यों मेरी धमकी सुनेगा, यह मैं नहीं समझ सका। और यह 'हैण्ड' भी मनोहर बाबूने हाल ही रक्खा था। इतने दिन वे अपने 'कम्बाइण्ड हैण्ड' खुद ही थे, केवल 'डिसेण्ट्री' के खातिर कुछ दिनोंके लिए इसे रख लिया था। मनोहर बाबू कहने लगे, "महाशय, आप क्या कोई साधारण आदमी हैं! शहर-भरके लोग आपकी बातपर मरते जीते हैं,—सो क्या, आप समझते हैं मैं नहीं जानता? अधिक नहीं एक सतर ही यदि आप लाट साहबको लिख दें तो उसे चौदह सालकी जेल हो जाय, सो क्या मैंने नहीं सुना? लगा तो दीजिए बच्चूको अच्छी तरह डाँट।"

बात सुनकर मैं जैसे दिग्भ्रमित-सा हो गया। जिन लाट साहबका नामतक मैंने नहीं सुना था उनको अधिक नहीं, एक ही सतर लिख देनेसे चौदह सालके कारावासकी संभावना,—मेरी इतनी बड़ी अद्भुत शक्तिकी बात इतने बड़े सुचतुर व्यक्तिके मुँहसे सुनकर मैं क्या कहूँ और क्या करूँ, सोच ही न सका। फिर भी, उनके बारबारके आग्रह और जबर्दस्तीके मारे जब और गति नहीं रही तब उस 'कम्बाइण्ड हैण्ड' को डाँट बताने रसोई-घरमें घुसा। —देखा, वह अन्धकूपकी तरह अँधेरा है।

वह आड़में खड़ा हुआ अपने मालिकके मुँहसे मेरी क्षमताकी विरदावली सुन चुका था, इसलिए रुआँसा होकर हाथ जोड़कर बोला, "इस घरमें 'देवता' हैं, यहाँपर मैं किसी तरह भी नहीं रह सकता। तरह तरहकी 'छायाएँ' रात-दिन घरमें घूमा करती हैं। बाबू यदि किसी और मकानमें जाकर रहें तो मैं सहज ही उनकी नौकरी कर सकता हूँ: किन्तु, इस मकानमें तो—"

भला ऐसे अँधेरे घरमें 'छाया' का क्या अपराध! किन्तु, छाया ही नहीं, वहाँ एक बहुत बुरी सड़ाँध भी, जबसे मैं आया था तभीसे, आ रही थी। पूछा, "यह दुर्गन्ध काहेकी है रे?"

'कम्बाइराड हैण्ड' बोला, "कोई चूहा ऊहा सड़ गया होगा।"

मै चौक पड़ा। "चूहा कैसा रे? इस घरमें चूहे मरते हैं क्या?"

उसने हाथको उलटाकर अवज्ञाके साथ बतलाया कि रोज सुबह कमसे कम पाँच-छः मरे चूहे तो वह खुद ही उठाकर बाहर गलीमें फेंक दिया करता है।

मिट्टीके तेलकी डिब्बी जलाकर खोज की गई, किन्तु, सड़े हुए चूहोंका पता नहीं लगा। फिर भी मेरा शरीर सन् सन् करने लगा और जी खोलकर उस आदमीको किसी तरह भी यह सदुपदेश न दे सका कि रुग्ण मालिकको अकेला छोड़कर उसे भाग जाना उचित नहीं है।

सोनेके कमरेमें लौटकर देखता हूँ, मनोहर बाबू खाटपर बैठे मेरी राह देख रहे हैं। मुझे पासमें बैठाकर वे इस मकानके गुणोंका बखान करने लगे; इतने कम किरायेमें शहरके बीच इतना अच्छा मकान और कोई नहीं, ऐसा मकान-मालिक भी कोई नहीं और न ऐसे पड़ोसी ही सहजमें मिल सकते हैं। पासके मकानमें जो चार-पाँच मद्रासी क्रिस्तान 'मेस' चलाते हैं, वे जितने ही शिष्ट और शान्त हैं उतने ही मायालु हैं। उन्होंने अपना यह इरादा भी बतला दिया कि जरा कुछ चंगे होते ही उस साले बाम्हनको निकाल बाहर करेंगे। फिर एकाएक बोले, "अच्छा महाशय, आप स्वप्नपर विश्वास करते हैं?"

मैं बोला, "नही।"

वे बोले, "मैं भी नहीं करता; किन्तु, कैसे अचरजकी बात है महाशय, कल रातको मैने स्वप्न देखा कि मै सीढ़ीपरसे गिर पड़ा हूँ और जागकर देखा तो दाहिने पैरका कूल्हा सूज आया है! सच-झूठ आप मेरे शरीरपर हाथ धरकर देखिए महाशय, तकलीफसे ज्वर तक हो आया है।"

सुनने-मात्रसे मेरा मुँह काला पड़ गया। इसके बाद कूल्हा भी देखा और शरीरपर हाथ रखकर ज्वर भी।

मिनट-भर मूढ़की तरह बैठे रहनेके बाद अन्तमें बोला, "डाक्टरको अबतक आपने क्यों नहीं बुला भेजा? अब किसीको जल्दी भेजिए।"

वे बोले, "महाशय, यह देश!—यहाँपर डाक्टरकी फीस भी तो कम नहीं है! उसे लाये नहीं कि चार-पाँच रुपये यों ही चले जायँगे! सिवाय इसके फिर दवाईके दाम! करीब दो रुपयेकी दच्च इस तरह और लग जायगी।"

मैंने कहा, "सो लगने दीजिए, बुलाने भेजिए।"

"कौन जायगा महाशय ? तिवारी साला तो चीन्हता भी नहीं है। सिवाय इसके वह चला जायगा तो खाना कौन पकायेगा ?"

"अच्छा, मैं ही जाता हूँ," कहकर डाक्टरको बुलाने बाहर चल दिया।

डाक्टरने आकर और परीक्षा करके आड़में ले जाकर पूछा "ये आपके कौन होते हैं ?"

मैंने कहा, "कोई नहीं, " और किस तरह सुबह यहाँ आ पड़ा सो भी मैंने खोलकर कह दिया।

डाक्टरने प्रश्न किया, "इनका और भी कोई कुटुम्बी यहाँ पर है क्या ?"

मैंने कहा "सो मुझे नहीं मालूम। शायद कोई नहीं है।"

डाक्टर क्षण-भर मौन रहकर बोले, "मैं एक दवा लिखकर दिये जाता हूँ सिरपर बरफ रखनेकी भी जरूरत है; किन्तु सबसे बड़ी जरूरत इस बातकी है कि इन्हें प्लेग-हास्पिटलमें पहुँचा दिया जाय। आप खुद भी इस मकानमें न ठहरिए। और देखिए, मुझे फीस देनेकी जरूरत नहीं है।"

डाक्टर चले गये। बड़े संकोचके साथ मैंने अस्पतालका प्रस्ताव किया। सुनते ही मनोहर रोने लगे और 'वहाँपर जहर देकर रोगी मार डाले जाते हैं, और वहाँ जाकर कोई लौटकर नहीं आता !' इस तरह बहुत कुछ बक गये।

दवाई लाने भेजनेके लिए तिवारीको खोजता हूँ तो देखा कि, 'कम्बाइण्ड हैण्ड' अपना लोटा-कम्बल लेकर इस बीच ही न मालूम कब खिसक गया है। जान पड़ता है, उसने डाक्टरके साथ मेरी बातचीत किवाड़की संधिमेंसे सुन ली थी। हिन्दुस्तानी और चाहे कुछ न समझें किन्तु 'पिलेग' शब्दको खूब समझते हैं।

तब मुझे ही ओषधि लेने जाना पड़ा। बरफ़, आईसबैग, आदि जो कुछ आवश्यक था सब मैंने ही खरीद लाकर हाजिर कर दिया। इसके बाद रह गया मैं और वे,—वे और मैं। एक दफे मैं उनके सिरपर आईस-बैग रखता था और एक दफे वे मेरे सिरपर रखते थे। इसी तरह उठा-धरी करते करते जब करीब दो बज गये तब उन्होंने निस्तेज होकर शय्या ग्रहण कर ली। बीच-बीचमें वे खूब होश-हवासकी भी बात करते थे। शामके लगभग क्षण भरके लिए सचेतनसे होकर मेरे मुँहकी ओर देखकर बोले, "श्रीकान्त बाबू, अब मैं न बचूँगा।"

मैं चुप हो रहा। इसके बाद बड़ी कोशिश करके कमरेमेंसे उन्होंने चाबी निकाली और उसे मेरे हाथमें देकर कहा, "मेरे ट्रंकमें तीन सौ गिन्नियां रक्खी हैं,—मेरी स्त्रीको भेज देना। पता मेरे बाक्समें लिखा रक्खा है जो खोजनेसे मिल जायगा।"

मुझे एकमात्र हिम्मत थी पासके 'मेस' की। वहाँकी आहट,—धीमा कण्ठ-स्वर मैं सुन सकता था। सन्ध्याके बाद एक दफे कुछ अधिक उठा-धरी और गोलमाल सुन पड़ा। कुछ देर बाद ही जान पड़ा कि वे लोग दरवाजेमें ताला लगाकर कहीं जा रहे हैं। बाहर आकर देखा, सचमुच दरवाजेमें ताला लटक रहा है। मैंने समझा, वे लोग घूमने गये हैं, कुछ देर बाद ही लौट आयेंगे। किन्तु फिर भी न जाने क्यों मेरा जी और भी खराब हो गया।

इधर वह रुग्ण आदमी उत्तरोत्तर जो जो चेष्टाएं करने लगा, उनके सम्बन्धमें इतना ही कह सकता हूँ कि वह अकेले बैठकर मजा लेने जैसी वस्तु नहीं थी। उधर रातके बारह बजनेको हुए; किन्तु न तो पासके कमरेके खुलनेकी आहट ही मिली और न कोई शब्द ही सुनाई दिया। बीच-बीचमें बाहर आकर देख जाता था,—ताला उसी तरह लटक रहा है। एकाएक नजर पड़ी कि लकड़ीकी दीवालकी एक संधिमेंसे उस कमरेका तीव्र प्रकाश इस कमरेमें आ रहा है। कुतूहलके वश होकर छिद्रपर आँख लगाकर उस तीव्र प्रकाशके कारणका पता लगाया, तो उससे मेरे सर्वाङ्गका रक्त जमकर बरफ हो गया। सामने खाटपर दो जवान आदमी पास ही पास तकिए पर सिर रक्खे सो रहे हैं और उनके सिराने खाटके बगलमें मोमबत्तियोंकी एक कतार जल-जलाकर प्रायः समाप्त होनेको आ गई है। मुझे पहलेसे ही मालूम था कि रोमन कैथोलिक लोग मुर्देके सिराने रोशनी जला देते हैं। अतएव, ऐसे हृष्टपुष्ट सबल शरीर लोगोंकी इस असमयकी नींदका जो कारण था वह सब मुहूर्तमात्रमें समझमें आ गया और मैं जान गया कि अब उन दोनोंकी नींद हजार चिल्लाने पर भी नहीं टूटेगी। इधर इस कमरेमें भी हमारे मनोहर बाबू करीब दो घण्टे और छुटपटानेके बाद सो गये!—चलो, जान बची।

किन्तु, मजा यह कि जिन्होंने मुझे उस दिन बहुत-सा उपदेश दिया था कि जान-पहिचानके किसी भी आदमीकी बीमारीकी खबर पाकर उस महल्लेमें पैर भी न रखना चाहिए, उन्हींके मुर्देकी और गिन्नियोंके बाक्सकी रखवाली

करनेके लिए भगवानने मुझे नियुक्त कर दिया। नियुक्त तो कर दिया, किन्तु बाकी रात मेरी जिस तरह कटी, सो लिखकर बतलाना न तो संभव है और न बतलानेकी प्रवृत्ति ही होती है। फिर भी, इसपर कोई पाठक अविश्वास न करेगा कि वह, मोटे तौर पर, भली तरह नहीं कटी।

दूसरे दिन 'डेथ सर्टिफिकेट' लेने, पुलिसको बुलाने, तार देने, गिन्नियोंका इन्तजाम करने और मुर्देको बिदा करनेमें तीन बज गये। खैर, मनोहर तो ठेलागाड़ीपर चढ़कर शायद स्वर्गकी ओर रवाना हो गये—रहा मैं, सो मैं अपने डेरेपर लौट आया। पिछले दिन तो एकादशीकी ही थी,—आज भी शाम हो गई। डेरेपर लौटनेपर जान पड़ा कि जैसे दाहिने कानकी जड़में सूजन आ गई है और दर्द हो रहा है। क्या जाने, सारी रात हाथसे छेड़-छेड़कर मैंने खुद ही दर्द पैदा कर लिया है अथवा सचमुच ही गिन्नियोंका हिसाब देने मुझे भी स्वर्ग जाना पड़ेगा!—एकाएक कुछ नहीं समझ सका। किन्तु यह समझनेमें देर नहीं लगी कि बादमें चाहे जो हो, फिलहाल तो होश-हवास दुरुस्त रहनेकी हालतमें अपनी सब व्यवस्था खुद ही कर रखनी होगी। क्योंकि मनोहरकी तरह आइस-बैग लेकर उठा-धरी करना न तो ठीक ही मालूम देता है और न सुन्दर। निश्चय करते मुझे देर न लगी। क्योंकि, पल-भरमें ही मैंने देख लिया कि इतने बड़े बुरे रोगका भार यदि मैं किसी पुण्यात्मा साधु पुरुषके ऊपर डालने जाऊँगा तो निश्चय ही बड़ा भारी पाप होगा। किसी भले आदमीको हैरान करना कर्तव्य भी नहीं है,—अशास्त्रीय है! इसलिए उसकी जरूरत नहीं। बल्कि, इस रंगूनके एक कोनेमें अभया नामकी जो एक महा-पापिष्ठा पतिता नारी रहती है,—एक दिन जिसे घृणा करके छोड़ आया हूँ, उसीके कंधे पर अपनी इस सांघातिक बीमारीका गन्दा बोझा घृणाके साथ डाल देना चाहिए,—मरना ही है तो वहीं मरूँ। शायद, इससे कुछ पुण्य-संचय भी हो जाय, यही सोचकर मैंने नौकरको गाड़ी लानेका हुक्म दे दिया।

१२

उस दिन जब मृत्युका परवाना हाथमें लेकर मैं अभयाके द्वारपर जा खड़ा हुआ तब मुझे मरनेकी अपेक्षा मरनेकी लाजने ही अधिक भय दिखाया। अभयाका मुँह फक् सफेद पड़ गया। किन्तु, उसके सफेद होठोंसे केवल यही शब्द फूटकर बाहर निकले, "तुम्हारा दायित्व मैं न लूँगी तो और कौन

लेगा? यहाँ तुम्हारी मुझसे बढ़कर और किसे गरज है?" दोनों आँखोंमें पानी भर आया, फिर भी मैंने कहा, "मैं तो बस चल दिया। रास्तेका कष्ट मुझे उठाना ही होगा, उसे निवारण करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। किन्तु जाते समय तुम्हारी इस नई घर-गिरस्तीके बीच इतनी बड़ी विपत्ति डालनेका अब किसी तरह भी मन नहीं होता। अभया, अभी गाड़ी खड़ी है, होश-हवास दुरुस्त हैं,—अब भी अच्छी तरह प्लेग-हास्पिटल तक जा सकता हूँ। तुम केवल मुहूर्त-भरके लिए जी कड़ा करके कह दो, "अच्छा जाओ।" अभयाने कोई उत्तर दिये बिना हाथ पकड़ लिया और मुझे बिछौनेमें ले जाकर सुला दिया। अब, उसने अपने आँसू पोंछे और मेरे उत्तप्त ललाटपर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए कहा, "यदि तुमसे 'जाओ' कह सकती, तो नये सिरेसे यह घर गिरस्ती कायम न करती। आजसे मेरी नई गिरस्ती सचमुचकी गिरस्ती हुई।"

किन्तु, बहुत संभव है कि वह प्लेग नहीं था। इसीलिए, मृत्यु केवल ज़रा-सा परिहास करके ही चली गई। दसेक दिनमें मैं उठ खड़ा हुआ। किन्तु, अभयाने फिर मुझे होटलके डेरेमें नहीं लौटने दिया।

आफिस जाऊँ या और भी कुछ दिन छुट्टी लेकर विश्राम करूँ, यह सोच ही रहा था कि एक दिन आफिसका चपरासी एक चिट्ठी दे गया। खोलकर देखा तो प्यारीकी चिट्ठी है। बर्मा आनेके बाद उसका यही एक पत्र मिला। जवाब न मिलनेपर भी मैं कभी कभी उसे पत्र लिख दिया करता था,—आते समय यही शर्त मुझसे उसने करा ली थी। पत्रके प्रारंभमें ही इसका उल्लेख करके उसने लिखा था, "मेरे मरनेकी खबर तो तुम जरूर पाओगे। जीते-जी मेरा ऐसा कोई समाचार ही नहीं हो सकता जिसे जाने बिना तुम्हारा काम न चले। लेकिन, मेरे लिए तो ऐसा नहीं है। मेरे सारे प्राण तो मानों विदेशमें ही निरन्तर पड़े रहते हैं।—यह बात इतनी अधिक सत्य है कि तुम भी इसपर विश्वास किये बगैर नहीं रह सकते इसीलिए। उत्तर न पानेपर भी बीच-बीचमें तुम्हें चिट्ठी देकर बतलाना पड़ता है कि तुम वहाँ अच्छी तरह हो।

"मैं इस महीनेके भीतर ही बंकूका विवाह कर देना चाहती हूँ। तुम अपनी सम्मति लिखना। तुम्हारी इस बातको मैं अस्वीकार नहीं करती कि कुटुम्बके भरण-पोषणकी शक्ति हुए बगैर विवाह होना उचित नहीं है। बंकूमें अभी तक यह क्षमता नहीं आई है; फिर भी, क्यों मैं इसके लिए तुम्हारी सम्मति

चाहती हूँ सो मुझे और एक बार अपनी आँखों देखे बगैर तुम नहीं समझोगे। जैसे भी बने यहाँ आ जाओ। तुम्हें मेरे सिरकी कसम है।"

पत्रके पिछले हिस्सेमें अभयाकी बात थी। अभयाने जब लौट आकर कहा था कि जिसे मैं चाहती हूँ,—प्रेम करती हूँ, उसीकी गिरस्ती बसानेके लिए मैं एक पशुका त्याग करके चली आई हूँ, और इसी विषयको लेकर सामाजिक रीति-नीतिके सम्बन्धमें स्पर्धाके साथ उसने बहस की थी, तब उससे मैं इतना विचलित हो उठा था कि प्यारीको बहुत-सी बातें लिख डाली थीं। आज उन्हींका प्रत्युत्तर उसने दिया है—

"तुम्हारे मुँहसे यदि वे मेरा नाम सुन चुकी हों तो अनुरोध है कि तुम उनसे एक बार मिलना और कहना कि राजलक्ष्मीने तुम्हें सहस्र-कोटि नमस्कार लिखे हैं। उम्रमें वे मुझसे छोटी हैं या बड़ी सो मैं नहीं जानती, जानना जरूरी भी नहीं है. वे केवल अपनी तेजस्विताके कारण ही मेरे समान स्त्रीके द्वारा वन्दनीय हैं। आज मुझे अपने गुरुदेवके श्रीमुखकी कुछ बातें बार बार याद आती हैं।—मेरे काशीके मकानमें दीक्षाकी सब तैयारियाँ हो गई हैं, गुरुदेव आसन ग्रहण करके स्तब्ध भावसे कुछ सोच रहे हैं। मैं आड़में खड़ी बहुत देरतक उनके प्रसन्न मुखकी ओर एकटक देख रही हूँ। एकाएक भयके मारे मेरी छातीके भीतर उथल-पुथल मच गई। उनके पैरोंके पास औंधे पड़ कर मैंने रोते हुए कहा, 'बाबा, मैं मन्त्र नहीं लूँगी।' वे विस्मित होकर मेरे सिरपर अपना दाहिना हाथ रखकर बोले, 'क्यों बेटी, क्यों न लोगी?'

"मैंने कहा, 'मैं महापापिष्ठा हूँ।'

"उन्होंने बीचमें ही रोककर कहा; "ऐसा है, तब तो मंत्र लेनेकी और भी अधिक जरूरत है बेटी'।"

"रोते रोते मैंने कहा, 'लाजके मारे मैंने अपना सच्चा परिचय नहीं दिया है, देती तो आप इस मकानकी चौखट भी लाँघना पसन्द नहीं करते।"

गुरुदेव मुसकिराकर बोले, 'नहीं, तो भी मैं लाँघता, और दीक्षा देता। प्यारीके मकानमें भले ही न आता; किन्तु अपनी राजलक्ष्मी बेटीके मकानमें क्यों न आऊँगा बेटी?"

"मैं चौंककर स्तब्ध हो गई। कुछ देर चुप रहकर बोली, किन्तु, मेरी माँके गुरुने तो कहा था कि मुझे दीक्षा देनेसे पतित होना पड़ेगा,—सो बात क्या सच नहीं थी?

"गुरुदेव हँसे। बोले, 'सच भी इसलिए तो वे दे नहीं सके बेटी। किन्तु, जिसे वह भय नहीं है, वह क्यों नहीं देगा?'

"मैंने कहा, "भय क्यों नहीं है?'

वे फिर हँसकर बोले, 'एक ही मकानमें जो रोगके कीटाणु एक आदमीको मार डालते हैं, वे ही कीटाणु दूसरे आदमीको स्पर्श तक नहीं करते,—बतला सकती हो क्यों?'

'मैंने कहा, 'शायद स्पर्श तो करते हैं, किन्तु, जो लोग सबल हैं वे बच जाते हैं; जो दुर्बल होते हैं वे मारे जाते हैं।'

"गुरुदेवने मेरे सिरपर पुनः अपना हाथ रखकर कहा, 'इस बातको किसी दिन भी मत भूलना बेटी। जो अपराध एक आदमीको मिट्टीमें मिला देता है, उसी अपराधमेंसे दूसरा आदमी स्वच्छन्दतासे पार हो जाता है। इसलिए सारे विधि-निषेध सभीको एक डोरीमें नहीं बाँध सकते।'

"संकोचके साथ मैंने धीरेसे पूछा, 'जो अन्याय है, जो अधर्म है, वह क्या सबल और दुर्बल दोनोंके निकट समानरूपसे अन्याय-अधर्म नहीं है? यदि नहीं है, तो यह क्या अविचार नहीं है?'

"गुरुदेव बोले, 'नहीं बेटी, बाहरसे चाहे जैसा दीखे, इनका फल समान नहीं है। यदि ऐसा होता तो संसारमें सबल-दुर्बलमें कोई अधिक भेद ही नहीं रहता। जो विष पाँच वर्षके बच्चेके लिए घातक है वही विष यदि इकतीस वर्षके मनुष्यको न मार सके तो दोष किसे दोगी बेटी? किन्तु, यदि आज तुम मेरी बात पूरी तरह न समझ सको, तो, कमसे कम इतना जरूर याद रखना कि जिन लोगोंके भीतर आग जल रही है और जिनमें केवल राख ही इकट्ठी होकर रह गई है,—उनके कर्मोंका वजन एक ही बाँटसे नहीं किया जा सकता। यदि किया जाय, तो गलती होगी!'

"श्रीकान्त भइया, तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर आज मुझे अपने गुरुदेवकी वही भीतरकी आगवाली बात याद आ रही है। अभयाको नजरसे देखा नहीं है, फिर भी ऐसा लगता है कि, उनके भीतर जो आग जल रही है उसकी ज्वालाका आभास चिट्ठीके भीतरसे भी जैसे मैं पा रही हूँ। उनके कर्मोंका विचार जरा सावधानीसे करना। मेरे जैसी साधारण स्त्रीके बँटखरे लेकर उनके पाप-पुण्यका वज़न करने न बैठ जाना।"

चिट्ठीको अभयाके हाथमें देकर कहा, "राजलक्ष्मीने तुम्हें शत-सहस्र नमस्कार लिखा है, यह लो।"

अभया, जो कुछ लिखा था उसे दो-तीन बार पढ़कर और किसी तरह पत्रको मेरे बिछौनेपर डालकर, तेजीसे बाहर चली गई। दुनियाकी नजरोंमें उसका जो नारीत्व आज लांछित और अपमानित हो रहा है, उसीके ऊपर शत योजन दूरसे एक अपरिचिता नारीने सम्मानकी पुष्पाञ्जलि अर्पण की है, उसीकी अपरिसीम आनन्द-वेदनाको वह एक पुरुषकी दृष्टिसे बचाकर चटपट आड़में ले गई।

करीब आध घण्टे बाद अभया अच्छी तरह मुँह-आँखें धोकर लौट आई और बोली, "श्रीकान्त भइया—"

मैंने रोककर कहा, "अरे यह क्या! 'भइया' कबसे हो गया?"

"आजसे ही!"

"नहीं नहीं, 'भइया' नहीं। तुम सब लोग मिलकर सभी ओरसे मेरा रास्ता बन्द न कर देना!"

अभयाने हँसकर कहा, "मालूम होता है, मन ही मन कोई मतलब गाँठ रहे हो, क्यों?"

"क्यों, क्या मैं आदमी नहीं हूँ?"

अभया बोली, "बेढब आदमी दीखते हो। बेचारे रोहिणी बाबूने बीमारीके समय आसरा दिया; अब चंगे होकर, जान पड़ता है, उन्हें यही पुरस्कार देना निश्चय किया है। किन्तु, मेरी बड़ी भूल हो गई। उस समय बीमारीका एक तार दे देती, तो आज उन्हें देख लेती।"

मैंने गर्दन हिलाकर कहा, "आश्चर्य नहीं कि वह आ जातीं!"

अभया क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "तुम एकाध महीनेकी छुट्टी लेकर एक बार चले जाओ, श्रीकान्त भइया। मुझे जान पड़ता है, तुम्हारी उन्हें बड़ी जरूरत हो रही है।"

न जाने कैसे खुद भी मैं इस बातको समझ रहा था कि मेरी उसे बड़ी जरूरत है। दूसरे ही दिन आफिसको चिट्ठी लिखकर मैंने और एक महीनेकी छुट्टी ले ली और आगामी मेलसे यात्रा करनेके विचारसे टिकट खरीदनेके लिए आदमी भेज दिया।

जाते समय अभयाने नमस्कार करके कहा, "श्रीकान्त भइया, एक वचन दो।"

"क्या वचन दूँ बहिन?"

"पुरुष संसारकी सभी समस्याओंकी मीमांसा नहीं कर सकते। यदि कहीं अटको तो चिट्ठी लिखकर मेरी राय जरूर ले लोगे, बोलो?"

मैं स्वीकार करके जहाज-घाट जानेके लिए गाड़ीपर जा बैठा। अभयाने गाड़ीके दरवाजेके निकट खड़े होकर और एक दफे नमस्कार किया; बोली, रोहिणी बाबूके द्वारा मैंने कल ही वहाँ टेलीग्राम करा दिया है। किन्तु, जहाज-पर कुछ दिन अपने शरीरकी ओर जरा नजर रखना श्रीकान्त भइया, इसके सिवाय मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती।"

'अच्छा' कहकर मैंने मुँह उठाकर देखा कि अभयाकी आँखोंकी दोनों पुतलियाँ पानीमें तैर रही हैं।

१३

कलकत्तेके घाटपर जहाज जा भिड़ा। देखा, जेटीके ऊपर बंकू खड़ा है। वह सीढ़ीसे चटपट ऊपर चढ़ आया और ज़मीनपर सिर टेक प्रणाम करके बोला, "माँ रास्तेपर गाड़ीमें राह देख रही हैं। आप नीचे जाइए, मैं सामान लेकर पीछे आता हूँ।"

बाहर आते ही और भी एक आदमी झुककर पैर छूकर खड़ा हो गया। मैंने कहा, "अरे रतन! कहो, अच्छे तो हो?"

रतन कुछ हँसकर बोला, "आपके आशीर्वादसे। आइए।" यह कहकर उसने रास्ता दिखाते हुए गाड़ीके समीप लाकर दरवाजा खोल दिया। राजलक्ष्मी बोली, "आइए,—और रतन, तुम लोग एक और गाड़ी करके पीछेसे आ जाना,—दो बज रहे हैं, अभी तक इन्होंने नहाया-खाया भी नहीं, हम लोग डेरेपर चलते हैं। गाड़ी हाँकनेको कह दे।"

मैं गाड़ीपर बैठ गया। रतनने 'जी, अच्छा' कहकर गाड़ीका दरवाजा बन्द कर दिया और गाड़ीवानको हाँकनेके लिए इशारा कर दिया। राजलक्ष्मीने झुककर पद-धूलि ली और कहा, "जहाजमें कष्ट तो नहीं हुआ?"

"नहीं।"

"तबीयत बहुत खराब हो गई थी क्या?"

"तबीयत खराब तो ज़रूर हो गई थी, परन्तु बहुत नहीं। किन्तु तुम भी तो स्वस्थ नहीं दीख पड़तीं। घरसे कब आई?"

"परसों। अभयाके द्वारा तुम्हारे आनेकी खबर पाते ही हम लोग घरसे चल दिये। आना तो था ही, इसलिए दो दिन पहले ही चले आये। यहाँपर तुम्हें कितना काम करना है, मालूम है?

मैं बोला, "कामकी बात फिर होगी,—किन्तु तुम ऐसी क्यों दिखाई दे रही हो? तुम्हें क्या हुआ था?"

राजलक्ष्मी हँस दी। इस हँसीको देखकर ही आज खयाल आया कि न जाने कितने दिनोंसे यह हँसी नही देखी और, साथ ही एक कितनी बड़ी अदम्य इच्छाको उस समय चुपचाप दमन कर डाला, सो उस अन्तर्यामीके सिवाय और किसीने नहीं जाना। किन्तु, दीर्घ श्वासको मैं उससे छिपा नहीं सका। उसने विस्मितकी तरह क्षण-भर तक मेरी तरफ ताकते रहकर फिर हँसकर पूछा, "कैसी देख पड़ती हूँ मैं,—बीमार?"

एकाएक इस प्रश्नका उत्तर न दे सका। बीमार?—हाँ, कुछ बीमार-सी जान पड़ती है। किन्तु नहीं, यह कुछ भी नहीं है। खयाल हुआ, मानों वह कितने ही देश-विदेश पैदल चलकर, तीर्थाटन करके, उसी समय लौट आई है,—ऐसी मुरझाई-सी, ऐसी थकी-सी। अपना भार आप वहन करनेकी जैसे उसमें शक्ति ही नहीं है, प्रवृत्ति भी नहीं है,—इस समय वह केवल निश्चिन्त, निर्भय होकर आँखें मूँदकर सोनेकी जरा-सी जगह ढूँढ़ रही है। मुझे निरुत्तर देखकर बोली, "क्यों, कहते क्यों नहीं?"

मैंने कहा "मत कहलवाओ।"

राजलक्ष्मी बच्चोंकी तरह ज़ोरसे सिर हिलाकर बोली, "नहीं, कहना ही होगा। लोग तो कहते कि देखनेमें मैं बिल्कुल बदसूरत हो गई हूँ। यह सच है?"

मैंने गंभीर होकर कहा, "हाँ, सच है।"

राज लक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "तुम आदमीको इस कदर अप्रतिभ कर देते हो कि बस,—अच्छा, इसमें बुरा क्या है! अच्छा ही तो है! सुन्दरता लेकर अब मैं करूँगी क्या? तुम्हारे साथ मेरा सुन्दर-असुन्दरका,—अच्छी बुरी दीख पड़नेका तो सम्बन्ध है नहीं जो मैं इसकी चिन्तामें मर जाऊँ!"

मैंने कहा, "सो तो ठीक है, चिन्तामें मरनेका कोई कारण नहीं है। एक

तो लोग यह बात तुमसे कहते नहीं, इसके सिवाय, यदि वे कहें भी तो तुम विश्वास करनेवाली नहीं। मन ही मन समझती तो हो कि--"

राजलक्ष्मी गुस्सेसे बोल उठी, "तुम अन्तर्यामी जो हो कि सबके मनकी बात जानते हो! मैं कभी यह बात नहीं सोचती। तुम खुद ही सच सच कहो, जब वहाँ शिकार करने गये थे तब तुमने जैसा देखा था, अब भी क्या मैं वैसी ही हूँ? तबसे तो कितनी बदसूरत हो गई हूँ!"

मैंने कहा, "नहीं, बल्कि तबसे अच्छी देख पड़ती हो।"

राजलक्ष्मीने पल-भरमें खिड़कीके बाहर मुँह फेरकर अपना हँसता हुआ चेहरा शायद मेरी मुग्ध दृष्टिकी ओरसे हटा लिया और कोई उत्तर न देकर चुप्पी साध ली। कुछ देर बाद परिहासके सब निशान अपने चेहरेपरसे दूर करके उसने अपना चेहरा फिर इस ओर फेर लिया और पूछा, "तुम्हें क्या बुखार आ गया था? उस देशका हवा-पानी क्या माफिक नहीं आता?"

मैंने कहा, "न आवे तो उपाय ही क्या है? जैसे बने वैसे माफिक ही कर लेना पड़ता है।" मैं मन ही मन निश्चित रूपसे जानता था कि राजलक्ष्मी इस बातका क्या उत्तर देगी। क्योंकि, जिस देशका जल-वायु आज तक अपना नहीं हो सका, किसी सुदूर भविष्यमें भी उसे अपने अनुकूल कर लेनेकी आशाके भरोसे वह किसी तरह भी मेरे लौट जानेपर सम्मत नहीं होगी, बल्कि घोर आपत्ति उठाकर रुकावट डालेगी,--यही मेरा ख्याल था। किन्तु, ऐसा नहीं हुआ। वह क्षण-भर मौन रहकर कोमल-स्वरसे बोली, "सो सच है। इसके सिवाय, वहाँपर और भी तो बहुत-से बंगाली रहते हैं। उन्हें जब माफिक आता है तब तुम्हें ही क्यों न माफिक आवेगा?—क्या कहते हो?"

मेरे स्वास्थके सम्बन्धमें उसकी इस प्रकारकी उद्वेगहीनताने मुझे चोट पहुँचाई। इसीलिए, केवल एक इशारे-भरसे 'हाँ' कहकर चुप हो गया। एक बात मैं बार बार सोचता था कि अपनी प्लेगकी कथा किस रूपमें राजलक्ष्मीके कानोंपर डालूँ। सुदूर प्रवासमें जिस समय मेरे दिन जीवन-मृत्युके सन्धि-स्थलमें बीत रहे थे उस समयके हजारों तरहके दुःखोंका वर्णन सुनते सुनते उसके हृदयके भीतर कैसा तूफान उठेगा!—दोनों नेत्रोंको प्लावित करके कैसी आँसुओंकी धारा बह निकलेगी!— कह नहीं सकता कि इसे कितने रसों और कितने रंगोंसे भरकर मैं कल्पनाके नेत्रोंसे दिन प्रतिदिन देखता रहा हूँ। इस समय इसी कल्पनाने मुझे सबसे अधिक लज्जित किया; सोचा,—छिः छिः

सौभाग्यसे कोई किसीके मनकी बात नहीं जानता। नहीं तो.—परन्तु जाने दो उस बातको। मन ही मन कहा, और चाहे जो करूँ, अपनी उस मरने-जीनेकी कहानी इससे न कहूँगा।

बहूबाजारके डेरेपर आ पहुँचा। राजलक्ष्मीने हाथ दिखाकर कहा, "यह जीना है, तुम्हारा कमरा तीसरे मंजिलपर है। जरा जाकर सो रहो, मैं जाती हूँ।" यह कह कर वह अपने रसोई-घरकी ओर चल दी।

कमरेमें घुसते ही देखा कि कमरा मेरे ही लिए सजाया गया है। प्यारी पटनेके मकानसे मेरी किताबें और मेरा हुक्का तक लाना नहीं भूली है। सूर्यास्तका एक कीमती चित्र मुझे बहुत पसंद था। वहाँपर उसने उसे अपने कमरेमेंसे निकालकर मेरे सोनेके कमरेमें टाँग दिया था! उस चित्र तकको वह कलकत्ते अपने साथ लाई है और ठीक उसी तरह उसने दीवालपर टाँग दिया है। मेरे लिखने-पढ़नेका साज-सरंजाम, मेरे कपड़े, मेरी लाल मखमली चट्टियाँ, ठीक उसी तरह यत्नपूर्वक सजाकर रक्खी हुई हैं। वहाँ एक आराम-कुर्सी मैं सदा ही व्यवहारमें लाता था। उसे शायद लाना संभव नहीं हुआ, इसीलिए, उसी तरहकी एक नई कुर्सी खिड़कीके समीप रक्खी हुई है। धीरे धीरे जाकर मै उसीके ऊपर आँखें मूँदकर लेट गया। जान पड़ा, जैसे भाटेकी नदीमें ज्वारके जलोच्छ्वासका शब्द मुहानेके निकट फिर सुनाई दे रहा है।

नहा-खाकर थकावटके मारे दिन-दोपहरको ही सो गया। नींद टूटते ही देखा, पश्चिमकी ओरकी खिड़कीसे शामकी धूप मेरे पैरोंके समीप आकर पड़ रही है और प्यारी एक हाथके बल मेरे मुँहपर झुकी हुई दूसरे हाथसे आँचलके छोरसे सिर, कंधों और छातीपरका पसीना पोंछ रही है। बोली, "पसीनेसे तकिये और बिछौने भीग गये हैं। पश्चिमकी ओर खुला होनेसे यह कमरा बड़ा गरम है। कल दूसरे मंजिलपर अपने पासके कमरेमें ही तुम्हारे बिस्तर कर दूँगी।' यह कहकर मेरी छातीके बिल्कुल निकट बैठकर पंखा उठाकर हवा करने लगी। रतनने कमरेमें आकर पूछा, "माँ, बाबूके लिए चाय ले आऊँ?"

"हाँ, ले आ। और, बंकू यदि मकानमें हो तो उसे जरा भेज देना।" मैंने फिर अपनी आखें बंद कर लीं। थोड़ी ही देर बाद बाहरसे चट्टियोंकी आवाज सुन पड़ी। प्यारीने पुकारकर कहा, "कौन, बंकू? जरा इधर तो आ।"

उसके पैरोंके शब्दसे मालूम हुआ कि उसने अतिशय सकुचित भावसे

अन्दर प्रवेश किया है। प्यारी उसी तरह पंखा झलते झलते बोली, "जरा कागज-पेन्सिल लेकर बैठ जा। क्या क्या लाना है, उसकी फेहरिस्त बनाकर दरबानके साथ जरा बाजार जा बेटा, घरमें कुछ है नहीं।"

मैंने देखा, यह एक बिल्कुल नया वाक़या है। बीमारीकी बात अलहदा, पर उसे छोड़कर इसके पहले किसी दिन मेरे बिछोनेके इतने समीप बैठकर उसने हवा तक नहीं की थी। किन्तु यह भी, न हो तो, मैं एक दिन संभव मान सकता। किन्तु, यह जो उसने रंच-मात्र भी दुबिधा नहीं की, सब नौकर-चाकरोंके,—यहाँ तक कि बंकूके सामने भी दर्पके साथ अपने आपको प्रकट कर दिया,—इसके अपूर्व सौन्दर्यने मुझे अभिभूत कर डाला। मुझे उस दिनकी बात याद आ गई जिस दिन पटनेके मकानसे मुझे इसलिए विदा लेनी पड़ी थी कि यह बंकू ही कुछ और ख़्याल न करने लगे। उस दिनके साथ आजके आचरणमें कितना अन्तर है!

चीज-बस्तकी फेहरिस्त बनाकर बंकू चला गया। रतन भी चाय-तमाखू देकर नीचे चला गया। प्यारी कुछ देर चुपचाप मेरे मुँहकी ओर निहारती रही; फिर एकाएक बोली, "तुमसे मैं एक बात पूछती हूँ,—अच्छा, रोहिणी बाबू और अभयामेंसे किसका प्यार अधिक है, बता सकते हो?"

मैंने हँसकर कहा, "जो तुमपर पूरी तरह हावी हो गई है, निश्चयसे उस अभयाका ही प्यार अधिक है।"

राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी, बोली, "यह तुमने कैसे जाना कि वह मुझपर हावी हो गई है?"

मैंने कहा, "चाहे जैसे जाना हो, पर बात सच है या नहीं, यह बताओ?"

राजलक्ष्मी क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "सो जैसे भी हो, किन्तु, अधिक प्यार तो रोहिणी बाबू ही करते हैं। दर असल वे इतना प्यार करते थे, इसी-लिए उन्होंने इतना बड़ा दुःख अपने सिरपर उठा लिया। अन्यथा यह उनका कोई अवश्य कर्तव्य तो था नहीं। उनकी तुलनामें अभयाको कितना-सा स्वार्थ-त्याग करना पड़ा?"

उसके सवालको सुनकर मैं सचमुच ही विस्मित हो गया। मैं बोला, 'बल्कि मैं तो ठीक इससे उलटा देखता हूँ। और उस हिसाबसे जो कुछ कठिन दुःख-भोग और त्याग है, वह सब अभयाको ही करना पड़ा है। तुम इस

अभ्रान्त सत्यको क्यों भूली जाती हो कि रोहिणी बाबू चाहे जो करें, समाजकी नजरोंमें आखिर वे मर्द हैं?

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, "मैं कुछ भी नहीं भूलती। उन्हें मर्द बतलाकर सहजमें बच निकलनेके जिस मौकेकी ओर तुम इशारा कर रहे हो वह अत्यन्त क्षुद्र और अधम पुरुषोंके लिए है,—रोहिणी बाबू सरीखे मनुष्यके लिए नहीं। शौक पूरा हो गया, अथवा कुछ सार न रहा तो छोड़-छाड़कर फेंककर भाग सकते हैं और घर लौटकर फिर गण्य-मान्य भद्र मनुष्योंकी तरह जीवन-यात्रा कर सकते हैं,—यही न कहते हो? कर सकते हैं,—ठीक है; किन्तु, क्या सभी कर सकते हैं? तुम कर सकते हो?—तब, जो नहीं कर सकता उसके बोझके वजनको तो जरा सोच देखो। उसे अपना निन्दित जीवन मकानके छिपाने कोनेमें काट डालनेका भी सुभीता नहीं। उसे तो संसारके बीच द्वन्द्व-युद्धमें उतर आना होगा, अविचार और अपयशका बोझा चुपचाप अकेले ही वहन करना पड़ेगा। अपने एकान्त-स्नेहकी पात्रीको,—भावी सन्तानकी जननीको समाजके सारे अपमानों और अकल्याणोंसे बचाकर रखना होगा। तुम क्या इसे मामूली काम समझते हो? और, सबसे बढ़कर दुःख यह है कि जो अनायास ही इस दुःखके बोझेको उतारकर खिसक सकता है, सर्वनाशी विकट प्रलोभनसे अपने आपको रात-दिन बचाकर चलनेका गुरु भार भी उसको ही लिये घूमना पड़ता है। दुःखके तराजूमें इस आत्मोत्सर्गके साथ समतौलता बनाये रखनेके लिए जिस प्रेमकी जरूरत है, उसे यदि पुरुष अपने भीतरसे बाहर न प्रकट कर सके, तो किसी भी स्त्रीके लिए यह संभव नहीं है कि वह उसे पूरा कर सके।

इस बातको इस पहलूसे, इस तरह, कभी सोचकर नहीं देखा था। रोहिणीका वह सीधा-सादा गुमसुम भाव और, उसके बाद, अभया जब अपने पतिके घर चली गई तब उसके उसी शान्त मुखमंडलके ऊपर अपरिसीम वेदनाको चुपचाप सहन करनेका जो चित्र मैंने अपनी आँखों देखा था, वही पल-भरमें ज्योंका त्यों, प्रत्येक रेखासहित, मेरे मनमें खिंच गया। किन्तु, मुँहसे मैंने कहा, "चिट्ठीमें तो तुमने सिर्फ अभयाके लिए ही पुष्पाञ्जलि भेजी थी।"

राजलक्ष्मी बोली, "उनका जो प्राप्य है वह आज भी उन्हें ही देती हूँ। क्योंकि, मेरा विश्वास है कि जो भी पाप या अपराध था उसने उनके आन्तरिक

तेजसे जलकर उन्हें शुद्ध-निर्मल कर दिया है। यदि ऐसा न होता, तो आज वे बिल्कुल साधारण स्त्रियोंके समान ही तुच्छ-हीन हो जातीं।"

"हीन क्यों ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "खूब ! पति-परित्यागके पापकी भी कोई सीमा है ? उस पापको ध्वंस करने योग्य आग उनमें न होती तो आज वे—"

मैंने कहा, "आगकी बात जाने दो। किन्तु उनका पति कैसा नष्ट है, सो तो एक दफे सोच देखो।"

राजलक्ष्मी बोली "पुरुष जाति चिरकालसे ही उच्छृंखल रही है,—चिर-कालसे ही कुछ कुछ अत्याचारी भी रही है; किन्तु, इसीलिए तो स्त्रीके पक्षमें भाग खड़े होनेकी युक्ति काम नहीं दे सकती। स्त्री-जातिको सहन करना ही होगा; नहीं तो संसार नहीं चल सकता।"

बात सुन कर मेरे सारे विचार गड़बड़ा गये। मन ही मन बोला, यह स्त्रियोंका वही सनातन दासत्वका संस्कार है ! कुछ असहिष्णु होकर पूछा, "तो फिर अभी तक तुम 'आग आग' क्या बक रही थीं ?"

राजलक्ष्मीने हँसकर कहा, "क्या बक रही थी, सुनोगे ? आज ही दो घण्टे पहले पटनेके ठिकानेपर लिखी हुई अभयाकी चिट्ठी मिली है। आग क्या है, जानते हो ? उस दिन 'प्लेग' कहकर जब तुम उनकी तुरतकी जमाई गिरस्तीके द्वारपर जा खड़े हुए तब जिस वस्तुने तुम्हें निर्भयतासे बिना किसी सोच विचारके भीतर बुला लिया, मैं उसीको कहती हूँ उनकी 'आग'। उस समय उन्हें अपने सुखका ख्याल नहीं था। जो तेज मनुष्यको कर्तव्य समझकर सामनेकी ओर ही ढकेलता है, दुविधासे पीछे नहीं हटने देता, अब तक मैं उसीको 'आग आग' कह रही थी। आगका एक नाम 'सर्वभुक्' है, सो क्या तुम नहीं जानते ? वह सुख और दुःख,—दोनोंको खींच लेती है, उसे किसी तरहका भेद-विचार नहीं होता। उन्होंने एक और बात क्या लिखी है, जानते हो ? वे रोहिणी बाबूको सार्थक कर देना चाहती हैं। क्यों कि उनका विश्वास है कि केवल अपने जीवनकी सार्थकताके भीतरसे ही संसारमें दूसरेके जीवनमें सार्थकता पहुँचाई जा सकती है; और, व्यर्थतासे सिर्फ अकेला ही जीवन व्यर्थ नहीं होता,—वह अपने साथ और भी अनेक जीवनोंको जुदी जुदी दिशाओंसे व्यर्थ करके व्यर्थ हो जाता है। बिलकुल सच है न ?" इतना कहकर वह एकाएक एक श्वास छोड़कर चुप हो रही। इसके बाद हम दोनों ही

बहुत देर तक मौन रहे। जान पड़ता है, कहनेको कुछ न होनेके कारण ही अब वह मेरे सिरके रूखे बालोंको अपनी अँगुलियोंसे व्यर्थ ही इधर उधर विपर्यस्त करने लगी। उसका यह आचरण भी बिल्कुल नया था। सहसा बोली, "ये खूब शिक्षिता हैं न? नहीं तो, इतनी तेजस्विता नहीं होती।"

मैंने कहा, "हाँ, दर असल वे एक शिक्षिता रमणी हैं।"

राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु, एक बात उन्होंने मुझसे छिपाई है। माँ होनेके लोभको वे चिट्ठीके अन्दर बार-बार दबा गई हैं।"

मैंने कहा, "क्या उन्हें यह लोभ है? कहाँ, मैंने तो नहीं सुना?"

राजलक्ष्मी बोल उठी, "जाओ,—यह लोभ भला किस स्त्रीको नहीं है? किन्तु, क्या इसीलिए उसे मर्दोंसे कहते फिरना चाहिए? तुम तो खूब हो!"

मैंने कहा, "तो फिर तुम्हें भी है, क्यों?"

"जाओ!" कहकर वह अकस्मात् लज्जासे लाल हो गई और दूसरे ही क्षण अपने आरक्त मुखको छिपानेके लिए बिछौनेपर झुक गई। उसी समय अस्तोन्मुख सूर्यकी किरणने पश्चिमकी खुली हुई खिड़कीसे प्रवेश किया था। वह आरक्त आभा उसके मेघके समान काले केशोंपर विचित्र शोभाके साथ बिखर गई। और, कानोंके हीरेके दोनों लटकनोंमें नाना वर्णोंकी द्युति झिल-मिल झिलमिल करती हुई खेलने लगी। क्षण-भर बाद ही अपने आपको सँभालकर और सीधे बैठकर उसने कहा, "क्यों, क्या मेरे लड़के-बच्चे नहीं हैं जो लोभ होगा? लड़कियोंका ब्याह कर चुकी हूँ, लड़केको ब्याहने आई हूँ,—एक-दो नाती-पोते हो जायँगे, उनको लेकर सुख-स्वच्छन्दतासे रहूँगी,—मुझे अभाव किस बातका है?"

मैं चुप हो रहा। इस बातको लेकर बहस करनेकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

रातको राजलक्ष्मीने कहा, 'बंकूके ब्याहके लिए तो अब भी दस-बारह दिनकी देर है; चलो न काशी चलें, तुम्हें अपने गुरुजीको दिखा लाऊँ।"

मैंने हँसकर कहा, "मैं क्या कोई नुमाइशी चीज हूँ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह सोचनेका भार जो लोग देखते उनपर है, तुमपर नहीं।"

मैंने कहा, "ऐसा ही सही, परन्तु, इससे मुझे ही क्या लाभ और तुम्हारे गुरुदेवको भी क्या लाभ होगा?"

राजलक्ष्मीने गंभीर होकर कहा, "लाभ तुम लोगोंको नहीं है, किन्तु, मुझे है। न हो, तो केवल मेरे लिए ही चले चलो।"

इसीलिए मैं राजी हो गया।

आगे बहुत समय तक लग्न न थी, इसलिए उस समय जैसे चारों ओरसे विवाहोंकी बाढ़ आ गई थी। जब तब बैंडका कार्नेट और बैग-पाइपकी बाँसुरी विविध तरहके वाद्य-भांडोंके सहयोगसे मनुष्यको पागल बना डालनेकी तजवीज कर रही थी। हम लोगोंकी स्टेशन-यात्राके समय भी इस तरहकी कुछ उन्मत्त आवाज़ोंकी झड़ प्रचण्ड वेगसे बह गई। वेगके कुछ कम हो जानेपर राजलक्ष्मीने सहसा प्रश्न किया, अच्छा, तुम्हारे मतसे यदि सभी लोग चलने लगें, तो फिर ग़रीबोंका विवाह ही न हो और घर-गिरस्ती भी न बने। तब फिर सृष्टि कैसे रहे?"

उसकी असाधारण गंभीरता देखकर मैं हँस पड़ा। बोला, "सृष्टि-रक्षाके लिए चिन्ता करनेकी तुम्हें जरा भी ज़रूरत नहीं। क्योंकि हमारी तरह चलनेवाले लोग दुनियामें अधिक नहीं हैं। कमसे कम अपने इस देशमें तो नहीं हैं; यह कहा जा सकता है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "न रहना ही भला है। केवल बड़े आदमी ही मनुष्य हैं? और क्या ग़रीब बेचारे संसारमें कहींसे बह आये हैं? बाल-बच्चोंको लेकर घर-गिरस्ती करनेकी साध क्या उन्हें नहीं होती?" मैंने कहा, "पर इसका क्या यह अर्थ है कि साध होती है इसलिए उसे प्रश्रय देना ही चाहिए?"

राजलक्ष्मीने पूछा "क्यों नहीं, मुझे समझा दो।"

कुछ देर चुप रहकर मैंने कहा, "सभी दरिद्रोंके सम्बन्धमें मेरा यह मत नहीं है। मेरा मत केवल दरिद्र भले आदमियोंके सम्बन्धमें है, और मेरा विश्वास कि तुम उसका कारण भी जानती हो।"

राजलक्ष्मीने ज़िदके स्वरमें कहा, "तुम्हारा यह मत ग़लत है।"

मुझपर भी मानों ज़िद सवार हो गई, मैंने कह डाला, "हज़ार ग़लत होनेपर भी कमसे कम तुम्हारे मुँहसे तो यह बात शोभा नहीं देती। बंकूके बापने सिर्फ़ बहत्तर रुपयोंके लोभसे दोनों बहनोंको ब्याह लिया था,—वह दिन अभी इतना पुराना नहीं हुआ है कि तुम भूल गई होओ। खैर मनाओ कि उस आदमीका पेशा ही यही था। नहीं तो, कल्पना करो, यदि वह तुम्हें अपने घर ले जाता, तुम्हारे दो-चार बाल-बच्चे होते,—तब एक दफे सोच देखो कि तुम्हारी क्या दशा होती?"

राजलक्ष्मीकी आँखोंमें जैसे झगड़नेका भाव घना हो उठा; बोली, "भगवान

जिन्हें भेजते हैं, उनकी देख-भाल भी करते हैं। तुम नास्तिक हो, इसीलिए विश्वास नहीं करते।"

मैंने भी जवाब दिया, " मैं नास्तिक होऊँ, चाहे जो होऊँ, परन्तु आस्तिक लोगोंको भगवान्की ज़रूरत क्या केवल इसीलिए है ?—इन सब बच्चोंको आदमी बनानेके लिए ?"

राजलक्ष्मीने क्रुद्ध कण्ठसे कहा, "भले ही वे न बनावें। किन्तु, मैं तुम्हारी तरह डरपोंक नहीं हूँ। मैं द्वार द्वार भिक्षा माँगकर भी उन्हें आदमी बनाती। और जो भी हो, नाचने-गानेवाली बननेकी अपेक्षा वह मेरे हकमें बहुत अच्छा होता।"

मैंने फिर और तर्क नहीं किया। आलोचना बिल्कुल ही व्यक्तिगत और अप्रिय ढंगपर उतर आई थी, इसीलिए, मैं खिड़कीके बाहर रास्तेकी ओर देखता हुआ बैठा रहा।

हमारी गाड़ी धीरे धीरे सरकारी और गैर सरकारी आफिस-क्वार्टर्स छोड़कर बहुत दूर आ पड़ी। शनिवारका दिन है, दो बजेके बाद अधिकांश दफ्तरोंके क्लार्क छुट्टी पाकर ढाईकी ट्रेन पकड़नेके लिए तेजीसे चले आ रहे हैं। प्रायः सभीके हाथोंमें कुछ न कुछ खाद्य-सामग्री है। किसीके हाथमें एक दो बड़ी बड़ी मछलियाँ, किसीके रूमालमें बकरेका मांस, किसीके हाथमें गँवई-गाँवमें नहीं मिलनेवाली हरी तरकारियाँ और फल। सात दिनोंके बाद घर पहुँचकर उत्सुक बाल-बच्चोंके मुँहपर जरा-सी आनन्दकी हँसी देखनेके लिए करीब करीब सभी अपने अपने सामर्थ्यके अनुसार थोड़ी-बहुत मिठाई चादरके छोरमें बाँधकर भागे जा रहे हैं। प्रत्येकके मुँहपर आनन्द और ट्रेन पकड़नेकी उत्कण्ठा एक साथ इस तरह परिस्फुटित हो उठी है कि राजलक्ष्मीने मेरा हाथ खींचकर अत्यन्त कुतूहलके साथ पूछा, "हाँ जी, ये सब लोग इस तरह स्टेशनकी ओर क्यों भाग रहे हैं ? आज क्या है ?"

मैंने घूमकर कहा, "आज शनिवार है। ये सब दफ्तरोंके क्लार्क हैं, रवि-वारकी छुट्टीमें घर जा रहे हैं।"

राजलक्ष्मीने गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ, यही मालूम होता है। और देखो सब एक न एक खानेकी चीज लिये जाते हैं। गवँई-गाँवमें तो यह सब मिलता नहीं, इसीलिए मालूम होता है, बाल-बच्चोंको हाथमें देनेके लिए खरीदे लिए जाते हैं, क्यों न ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

उसकी कल्पना तेजीसे दौड़ने लगी। इसीलिए, उसने उसी क्षण कहा "आः, लड़के-लड़कियोंमें आज कितना उत्साह होगा! कोलाहल मचायेंगे, गलेसे लिपटकर बापकी गोदमें चढ़नेकी चेष्टा करेंगे, माँको खबर देने रसोई-घरमें दौड़ जायँगे,—घर घरमें आज मानो एक काण्ड-सा मच जायगा। क्यों न?" कहते कहते उसका सारा मुँह उज्वल हो उठा।

मैंने स्वीकार करते हुए कहा, "खूब संभव है।"

राजलक्ष्मीने गाड़ीकी खिड़कीमेंसे और भी कुछ देर उनकी तरफ निहारते रहकर एकाएक एक गहरी निःश्वास छोड़ दी और कहा, "हाँजी, इनकी तनखा कितनी होगी?"

मैंने कहा, "क्लार्कोंकी तनख्वाह और कितनी होती है,—यही बीस पचीस तीस रुपये।"

राजलक्ष्मीने कहा—"किन्तु, घरपर तो इनके मा है, भाई-बहिन हैं, स्त्री है, लड़के-बच्चे हैं।"

मैंने इतना और जोड़ दिया, "दो-एक विधवा बहिनें हैं; शादी-ब्याह, क्रिया-कर्म, लोक-व्यवहार, भलमंसी है: कलकत्तेका भोजन-खर्च है, लगातार रोगोंका खर्च है,—बंगाली क्लार्क-जीवनका सब कुछ इन्हीं तीस रुपयोंपर निर्भर रहता है।"

राजलक्ष्मीकी मानो साँस ही अटकने लगी। वह बहुत ही व्याकुल होकर बोल उठी "तुम नहीं जानते। इन लोगोंके घर जमीन-जायदाद भी है, निश्चयसे है।"

उसका मुँह देखकर निराश करते हुए मुझे वेदना हुई, फिर भी, मैंने कहा, "मैं इन लोगोंकी घर-गिरस्तीका इतिहास खूब घनिष्ठतासे जानता हूँ। मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि इनमेंसे चौदह आने लोगोंके पास कुछ भी नहीं है। यदि नौकरी चली जाय तो या तो इन्हें भिक्षावृत्ति करनी होगी या फिर पूरे परिवारके साथ उपवास करना होगा। इन लोगोंके लड़के-लड़कियोंकी कहानी सुनोगी?"

राजलक्ष्मी अकस्मात् दोनों हाथ उठाकर चिल्ला उठी, "नहीं नहीं, नहीं सुनूँगी,—मैं नहीं सुनना चाहती।"

यह बात मैं उसकी आँखोंकी ओर निहारते ही जान गया कि उसने प्राणपणसे

आँसुओंको रोक रक्खा है। इसीलिए मैंने और कुछ न कहकर फिर रास्तेकी ओर मुंह मोड़ लिया। बहुत देरतक उसकी कोई आहट नहीं मिली। इतनी देर, शायद, अपने आपसे वकालत करके और अन्तमें अपने कुतूहलके निकट ही पराजय मानकर उसने मेरे कोटका खूँट पकड़कर खींचा और पलटकर देखते ही करुण कण्ठसे कहा, "अच्छा तो, कहो उनके लड़के-लड़कियोंकी कहानी। किन्तु, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, झूठ-मूठ बढ़ाकर मत कहना। दुहाई है तुम्हारी!"

उसकी मिन्नत करनेकी भाव-भंगी देखकर हँसी तो छूटी, किन्तु, हँसा नहीं। बल्कि कुछ अतिरिक्त गंभीरतासे बोला, "बढ़ाकर कहना तो दूर, तुम्हारे पूँछनेपर भी मैं नहीं सुनाता यदि तुमने अभी कुछ ही पहले अपने सम्बन्धमें भीख माँगकर बच्चोंको आदमी बनानेकी बात न कही होती। भगवान् जिन्हें भेजते हैं, उनकी सुव्यवस्थाका भार भी वे लेते हैं, यह बात अवश्य है। उसे अस्वीकार करूँ तो शायद नास्तिक कहकर फिर भला-बुरा कहोगी; किन्तु सन्तानकी जवाबदारी बापके ऊपर कितनी है और भगवानके ऊपर कितनी है, इन दो समस्याओंकी मीमांसा तुम खुद ही करो। मैं जो जानता हूँ केवल वही कहूँगा,—है न ठीक?"

यह देखकर कि वह चुपचाप मेरी ओर जिज्ञासु-मुखसे निहार रही है, मैंने कहा, "बच्चा पैदा होनेपर उसे कुछ दिन छातीका दूध पिलाकर जिलाये रखनेका भार, मैं समझता हूँ, उसकी माँके ऊपर है। भगवानके ऊपर अचला भक्ति है, उनकी दयापर भी मुझे अन्ध विश्वास है, किन्तु फिर भी, माँके बदले इस भारको खुद अपने ऊपर लेनेका उपाय उनके पास है कि नहीं, —"

राजलक्ष्मी नाराज होकर हँस पड़ी और बोली, "देखो चतुराई रहने दो—यह मैं भी जानती हूँ।"

"जानती हो? तब जाने दो, एक जटिल समस्याकी मीमांसा हो गई। किन्तु, तीस रुपयेके घरकी जननीके दूधका स्रोत सूख जानेमें देर क्यों नहीं लगती, यह जानना हो तो किसी तीस रुपये मासिकके घरकी जच्चाके आहारके समय उपस्थित रहना आवश्यक होगा। किन्तु, तुमसे जब यह नहीं हो सकता तब इस विषयमें न हो तो मेरी बात मान लो।"

राजलक्ष्मी मलीन मुख किये चुपचाप मेरी ओर ताकती रही।

मैं बोला "देहातमें गो-दुग्धका बिल्कुल अभाव है; यह बात भी तुम्हें मान लेनी होगी।"

राजलक्ष्मीने चटसे कहा, "सो तो मैं खुद भी जानती हूँ। घरमें गाय हो तब तो ठीक, नहीं तो, आजकल सिर पटककर मर जानेपर भी किसी गाँवमें एक बूँद दूध पाना कठिन है। ढोर ही नहीं हैं, दूध कहाँसे हो?"

मैंने कहा, "खैर, और भी एक समस्याका समाधान हो गया। तब फिर बच्चोंके भागमें रहा खालिस स्वदेशी ताल-तलैयोंका जल और विदेशी डब्बोंका खालिस बार्ली (जौ) का चूरा। अभागियोंके भाग्यमें अक्सर उनका स्वाभाविक खाद्य,—थोड़ा बहुत माताका दूध भी,जुट सकता है,किन्तु वह सौभाग्य भी इन सब घरोंमें अधिक दिनों तक टिकनेका नियम नहीं। क्योंकि चारेक महीनेके भीतर ही और एक नूतन आगन्तुक अपने आविर्भावका नोटिस देकर अपने भाईके दूधका हक एकदम बन्द कर देता है। यह शायद तुम—"

राजलक्ष्मी लज्जाके मारे लाल होकर बोल उठी, "हाँ हाँ, जानती हूँ,जानती हूँ। मुझे व्याख्या करके समझानेकी ज़रूरत नहीं। तुम इसके बादकी बात कहो।"

मैंने कहा, "इसके बाद धर दबाता है बच्चेको पेटका दर्द और स्वदेशी मलेरिया बुखार। तब बापका कर्तव्य होता है विदेशी कुनैन और बार्लीका चूरा जुटाना। और माँके सिरपर पड़ता है, जैसा कि मैंने पहले कहा, प्रसूति-गृहमें पुनः भर्ती होनेके बीचके समयकी फुरसतमें इन सबको खालिस देशी जलमें घोलकर पिलानेका काम! इसके बाद यथासमय सूतिका-गृहका झगड़ा मिटनेपर नवजात शिशुको गोदमें लेकर बाहर आना और पहले बच्चेके लिए कुछ दिन तक रोना।"

राजलक्ष्मी नीली पड़कर बोली "रोना क्यों?"

मैंने कहा, "अरे, यह तो माताका स्वभाव है! और ऐसा स्वभाव जो क्लार्कके घरमें भी अन्यथा नहीं हो सकता जब कि भगवान् दायित्वसे मुक्त करनेके लिए उस पहले बच्चेको अपने श्रीचरणोंमें बुला लेते हैं।"

इतनी देर बाहरकी ओर ताकते रहकर ही बातें कर रहा था, अकस्मात् नज़र घुमाकर देखा कि उसकी बड़ी बड़ी आँखें अश्रु-जलमें तैर रही हैं। मुझे अत्यन्त दुःख मालूम हुआ। सोचा, इस बेचारीको व्यर्थ दुःख देनेसे क्या लाभ? अधिकांश धनियोंके समान जगत्के इस विराट् दुःखकी बाजू यदि इसके लिए भी अगोचर बनी रहती तो क्या हर्ज था! भयंकर दरिद्रतासे पीड़ित बंगालके क्षुद्र नौकर-पेशा गृहस्थ-परिवार केवल अन्नके अभावसे ही, मलेरिया हैजा आदिके बहाने, दिनपर दिन शून्य होते जा रहे हैं,—यह बात अन्य

बहुत-से बड़े आदमियोंकी तरह, न होता, यह भी न जानती। इससे क्या ऐसी कोई बड़ी भारी हानि हो जाती!

ठीक ऐसे ही समय राजलक्ष्मी आँखें पोछते पोंछते अवरुद्ध कण्ठसे बोल उठी, "भले ही क्लार्क हों, फिर भी वे तुमसे कई दर्जे अच्छे हैं। तुम तो पत्थर हो! तुम्हें स्वय कोई दुःख नहीं है, इसीलिए इन लोगोंके दुःख कष्ट इस तरह आल्हादके साथ वर्णन कर रहे हो। किन्तु मेरा तो हृदय फटा जाता है!"

यह कहकर वह आँचलसे बार बार आँखें पोंछने लगी। इसका मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया, क्योंकि, इससे कोई लाभ न होता। बल्कि नम्रताके साथ कहा, "इन लोगोंके सुखका हिस्सा भी तो मेरे भाग्यमें नहीं है। घर पहुँचनेकी इनकी उत्सुकता भी तो एक सोचने-देखनेकी चीज है।"

राजलक्ष्मीका मुँह हँसी और आँसुओंसे एक साथ दीप्त हो उठा। वह बोली "मैं भी तो यही कहती हूँ। आज पिता आ रहे हैं, इसलिए सारे बाल-बच्चे रास्ता देख रहे हैं। उन्हें कष्ट किस बातका है? उन लोगोंकी तनखा शायद कम हो, किन्तु वैसी बाबूगिरी भी तो नहीं है। किन्तु फिर भी क्या पचीस-तीस ही रुपया?—इतना कम? कभी नहीं। कमसे कम सौ डेढ़-सौ रुपये तो होंगे, मैं निश्चयसे कहती हूँ।"

मैंने कहा, "हो भी सकता है। मैं शायद ठीक ठीक नहीं जानता।"

उत्साह पाकर राजलक्ष्मीका लोभ बढ़ गया। अतिशय क्षुद्र क्लार्कके लिए भी डेढ़ सौ रुपया महीना उसे नहीं जँचा। बोली, "क्या तुम समझते हो कि केवल उसी मासिक पर ही उनका सारा दारो-मदार है? ऊपरसे भी तो कितना ही पा जाते हैं।"

मैंने कहा, "ऊपरसे? प्याला?"

अब उसने कुछ नहीं कहा। वह मुँह भारी करके रास्तेकी ओर ताकती हुई बैठी रही। कुछ देर बाद बाहरकी ओर दृष्टि रक्खे हुए ही उसने कहा, "तुम्हें जितना ही देखती हूँ तुम्हारे ऊपरसे मेरा मन उतना ही हटता जाता है। तुम जानते हो कि तुम्हें छोड़कर मेरी और कोई गति नहीं है, इसीलिए तुम मुझे इस कदर छेदते हो!"

इतने दिनों बाद, आज शायद पहले ही पहल मैंने उसके दोनों हाथ जोरसे अपनी ओर खींच लिये और उसके मुँहकी ओर देखकर मानों कुछ कहना भी चाहा; किन्तु, इतनेमें ही गाड़ी स्टेशनके समीप आकर खड़ी हो गई। एक

स्वतंत्र डिब्बा रिज़र्व कर लिया गया था, फिर भी, बंकू कुछ सामान लेकर दोपहरके पहले ही आ गया था। कोचबाक्सपर रतनको देखते ही वह दौड़ आया। मैं हाथ छोड़कर सीधा बैठ गया। जो बात मुँहपर आ गई थी, वह चुपचाप अन्तरमें जाकर छिप गई।

ढाई बजेकी लोकल ट्रेन छूटनेहीको थी। हमारी ट्रेन उसके बाद जाती थी। इसी समय एक प्रौढ़ अवस्थाका दरिद्र भला आदमी एक हाथमें तरह तरहकी हरी तरकारियोंकी पोटली और दूसरे हाथमें डगडीपर बैठा हुआ एक मिट्टीका पक्षी लिये, केवल प्लेटफार्मपर लक्ष्य रक्खे और सब दिशाओंके ज्ञानसे शून्य होकर दौड़ता हुआ राजलक्ष्मीके ऊपर आ पड़ा! मिट्टीका खिलौना नीचे गिरकर चूर चूर हो गया! वह हाय हाय करके शायद उसे बटोरने जा रहा था कि पाँडेजीने हुंकार मारकर एक छलांगमें उसकी गर्दन धर दबाई और बंकू छड़ी उठाकर 'अन्धे' आदि कहकर मारनेको तैयार हो गया। मैं कुछ दूरीपर अन्यमनस्क-सा खड़ा था,—घबड़ाकर रंगभूमिपर आ गया। वह बेचारा भय और शर्मके मारे बार बार कहने लगा, "देख नहीं पाया माँ, मुझसे बड़ा कुसूर हो गया---"

मैंने उसे चटपट छुड़ा दिया और कहा, "जो होना था सो हो गया, आप शीघ्र जाइए, आपकी गाड़ी छूट रही है।"

उस बेचारेने फिर भी अपने खिलौनेके टुकड़े इकट्ठा करनेके लिए कुछ देर इधर उधर किया और अन्तमें दौड़ लगा दी। किन्तु अधिक दूर नहीं जाना पड़ा, गाड़ी चल दी। तब लौटकर फिर उसने एक दफा क्षमा माँगी और वह उन टूटे टुकड़ोंको बटोरनेमें प्रवृत्त हो गया। यह देखकर मैंने जरा हँसकर कहा, "इससे अब क्या होगा?"

उसने कहा, "कुछ नहीं महाशय, लड़की बीमार है, पिछले सोमवारको घरसे आते समय उसने कह दिया था, 'मेरे लिए एक खिलौना खरीद लाना।' खरीदने गया तो बेचूने गरज समझकर दाम हाँके 'दो आने,'—एक पैसा भी कम नहीं। खैर वही सही। राम राम करके किसी तरह पूरे आठ पैसे फेंककर ले आया। किन्तु देखिए दुर्भाग्यकी बात कि ऐन मौकेपर फूट गया, रोगी लड़कीके हाथमें न दे सका। बिटिया रोकर कहेगी, 'बाबा, लाये नहीं!' कुछ भी हो, टुकड़े ही ले जाऊँ, दिखा कर कहूँगा, बेटी, इस महीनेकी तनखा पानेपर पहले तेरा खिलौना खरीदूँगा, तब और काम करूँगा।"

इतना कहकर सारे टुकड़े बटोरकर और चादरके छोरमें बाँधकर कहने लगा, "आपकी स्त्रीको शायद बहुत चोट लग गई है, मैंने देखा नहीं,— नुकसानका नुकसान हुआ और गाड़ी भी नहीं मिली। मिल जाती तो रोगी बिटियाको आध घण्टे पहले पहुँचकर देख लेना।" कहते कहते वह फिर प्लेटफार्मकी ओर चल दिया। बंकू पाँडेजीको लेकर किसी कामसे कहीं अन्यत्र चला गया था। मैंने एकाएक पीछेकी ओर घूमकर देखा, राजलक्ष्मीकी आँखोंसे सावनकी धाराकी तरह आँसू बह रहे हैं। व्यस्त होकर निकट जाकर पूछा, "ज्यादा चोट आ गई है क्या? कहाँ लगी है?"

राजलक्ष्मीने आँचलसे आँखें पोंछकर कहा, "हाँ, बहुत चोट लगी है,— परन्तु लगी है ऐसी जगह कि तुम जैसे पत्थर न उसे देख सकते हैं और न समझ सकते हैं!"

१४

श्रीमान् बंकूको बाध्य होकर हमारे लिए एक स्वतंत्र डब्बा क्यों रिजर्व कराना पड़ा, उनसे जब मैं इस बातकी पूछताछ कर रहा था तब राजलक्ष्मी कान लगाकर सुन रही थी। इस समय उनके जरा अन्यत्र जाते ही राजलक्ष्मीने बिल्कुल ही गले पड़कर मुझे सुना दिया कि अपने लिए फिजूल खर्च करना वह जितना ही नापसन्द करती है उसके भाग्यसे उतनी ही ये सब विडम्बनायें उपस्थित हो जाती हैं। वह बोली "यदि उन लोगोंकी तृप्ति सेकण्ड क्लास या फर्स्ट क्लासमें जानेसे ही होती हो तो ठीक है; पर मेरे लिए तो औरतोंका डब्बा था! रेलवे कम्पनीको फिजूल ही इतने अधिक रुपये क्यों दिये जायँ?"

बंकूकी कैफियतके साथ उसकी माँकी इस मितव्यय-निष्ठाका कोई विशेष सामञ्जस्य मैं नहीं देख पाया। किन्तु, ऐसी बातें स्त्रियोंसे कहनेसे व्यर्थका कलह होता है। अतएव, चुपचाप मैं केवल सुनता रहा। कुछ बोला नहीं।

प्लेटफार्मकी एक बेञ्चपर बैठकर पूर्वोक्त सज्जन ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सामनेसे जाते हुए मैंने पूछा, "आप कहाँ जाएँगे?"

वे बोले, "बर्दवान।"

कुछ आगे जाते ही राजलक्ष्मीने मुझसे धीरेसे कहा, "तो फिर वे अनायास

ही अपने डब्बेमें चल सकते हैं, न ? किराया तो देना न होगा,—फिर क्यों नहीं उन्हें बुला लेते !"

मैंने कहा, "टिकट तो निश्चयसे खरीद लिया गया है,—किरायेके पैसे नहीं बचेंगे ।"

राजलक्ष्मी बोली, "भले ही खरीद लिया गया हो,—भीड़के कष्टसे तो बच जायँगे ।"

मैंने कहा, "उन्हें अभ्यास है, वे भीड़की तकलीफकी परवा नहीं करते।"

तब राजलक्ष्मीने जिद करके कहा: "नहीं नहीं, तुम उनसे कहो। हम लोग तीन आदमी बातचीत करते हुए जायँगे, इतना रास्ता मजेसे कट जायगा।"

मैंने समझ लिया कि इस समय उसे अपनी भूल महसूस हो रही है ।बंकू और अपने नौकर-चाकरोंकी नज़रमें मेरे साथ अकेली अलहदा डब्बेमें बैठनेकी खटकको वह किसी तरह कुछ हलका कर लेना चाहती है । फिर भी, मैंने इसको और भी अधिक आँखोंमें उँगली डालकर दिखानेके अभिप्रायसे लापर्वाहीके भावसे कहा, "जरूरत क्या है एक अनावश्यक आदमीको डब्बेमें बुलानेकी ? तुम मेरे साथ जितनी चाहो उतनी बातें कर लेना;—मज़ेसे समय कट जायगा ।"

राजलक्ष्मीने मुझपर एक तीक्ष्ण कटाक्ष निक्षेप करके कहा, "सो मैं जानती हूँ । मुझे छकानेका इतना बड़ा मौका क्या तुम छोड़ सकते हो ?"

इतना कहकर वह चुप हो रही । किन्तु ट्रेनके स्टेशनपर आते ही मैंने जाकर कहा, "आप क्यों न हमारे ही डब्बेमें बैठ जायँ। हम दोको छोड़कर उसमें और कोई नहीं है । भीड़की तकलीफ़से आप बच जायँगे ।"

कहनेकी ज़रूरत नहीं, उन्हें राजी करनेमें कोई तकलीफ़ नहीं उठाना पड़ी । अनुरोध करने-भरकी देर थी कि वे अपनी पोटली लेकर हमारे डब्बेमें आ बैठे ।

ट्रेन दो-चार स्टेशन ही पारकर पाई थी कि राजलक्ष्मीने उनके साथ खूब बातचीत करना शुरू कर दिया और कुछ ही स्टेशनोंको पार करते करते तो उनके घरकी खबरें, मुहल्लेकी खबरें, यहाँतक कि आसपासके गाँवोंतककी खबरें कुरेद कुरेदकर जान लीं ।

राजलक्ष्मीके गुरुदेव काशीमें अपने नाती-नातिनोंके साथ रहते हैं,उनके लिए वह कलकत्तेसे अनेक चीजें लिये जा रही थी । बर्दवानके नज़दीक आते ही ट्रंक खोलकर उसने उनमेंसे चुनकर एक सब्ज रंगकी रेशमकी साड़ी बाहर निकाली और कहा, "सरलाको उसके खिलौनेके बदले साड़ी दे देना ।"

वे सज्जन पहले तो अवाक् हो रहे, बादमें सलज्ज भावसे जल्दीसे बोले, "नहीं नहीं बेटी, सरलाको मैं अबकी दफे खिलौना खरीद दूँगा,—आप साड़ी रहने दें। इसके सिवाय, यह तो बहुत बेशकीमती कपड़ा है बेटी!"

राजलक्ष्मीने कपड़ेको उनके पास रखते हुए कहा, "बेशकीमती नहीं है और कीमत कुछ भी हो, इसे उसके हाथमें देकर कहिएगा कि तुम्हारी मौसीने अच्छे होनेपर पहिरनेके लिए दिया है।"

सज्जनकी आँखें छलछला आईं। आध घण्टेकी बातचीतमें ही एक अपरिचित आदमीकी पीड़िता कन्याको एक मूल्यवान् वस्तुका उपहार देना, उन्होंने शायद अपने जीवनमें और कभी नहीं देखा था। कहा, "आशीर्वाद दीजिए कि वह अच्छी हो जाय; किन्तु, गरीबीका घर है, इतने कीमती कपड़ेका वह क्या करेगी बेटी? आप उसे उठाकर रख लीजिए।" इतना कहकर उन्होंने मेरी ओर भी एक दफे देखा। मैंने कहा, "जब उसकी मौसी पहिरनेके लिए दे रही है तब आपका ले जाना ही उचित है।" फिर हँसकर कहा, "सरलाका भाग्य अच्छा है, हम लोगोंकी भी कोई मौसी-औसी होती तो बड़ा सुभीता होता! अबकी बार महाशय, आपकी लड़की, आप देखेंगे कि, चटपट अच्छी हो जायगी।"

उस समय उस पुरुषके समस्त चेहरेसे कृतज्ञता मानों उछल पड़ने लगी। और आपत्ति न करके उन्होंने उस वस्त्रको ग्रहण कर लिया। अब दोनों जनोंमें फिर बातचीत होने लगी। गृहस्थाश्रमकी बातें, समाजकी बातें, सुख-दुखकी बातें, और न जाने क्या क्या। मैं सिर्फ खिड़कीके बाहर ताकता हुआ स्तब्ध होकर बैठा रहा और जो प्रश्न अपने आपसे बहुत बार पूछ चुका था वही इस छोटी-सी घटनाके सूत्रके सहारे फिर मेरे मनमें उठ खड़ा हुआ कि इस यात्राका अन्त कहाँ है?

एक दस-बारह रुपये मूल्यका वस्त्र दान कर देना राजलक्ष्मीके लिए न कठिन बात थी और न नई। उसके दास-दासी शायद इस बातका कभी खयाल भी नहीं करते। किन्तु मेरी चिन्ता दूसरी ही थी। यह दी हुई चीज दानके हिसाबसे उसके लिए न कुछ थी, यह मैं जानता था। किन्तु, मैं सोच रहा था कि उसके हृदयकी धारा जिस ओर लक्ष्य करके अपने आपको निःशेष करनेके लिए उद्दाम गतिसे दौड़ी चली जा रही है, उसका अवसान कहाँ होगा और किस तरह?

समस्त रमणियोंके अन्तरमें 'नारी' वास करती है या नहीं, यह जोरसे कहना अत्यन्त दुःसाहसका काम है। किन्तु नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमें है, यह बात शायद खूब गला फाड़ करके प्रचारित की जा सकती है।

राजलक्ष्मीको मैंने पहिचान लिया था। यह मैंने विशेष ध्यानपूर्वक देखा था कि उसमेंकी प्यारी बाई अपने अपरिणत यौवनके समस्त दुर्दम्य मनस्तापोंके साथ प्रति-मुहूर्त मर रही है। आज उस नामका उच्चारण करनेसे भी वह मानो लज्जाके मारे मिट्टीमें मिल जाती है। मेरे लिए यह एक समस्या हो गई। सर्वस्व लगाकर संसारका उपभोग करनेका वह उत्तप्त आवेग राजलक्ष्मीमें अब नहीं है; आज वह शान्त, स्थिर है। उसकी कामना-वासना आज उसीके मध्यमें इस तरह गोता लगा गई है कि बाहरसे एकाएक सन्देह होता है कि वह है भी या नहीं। उसीने इस सामान्य घटनाको उपलक्ष्य करके मुझे फिर स्मरण दिला दिया कि आज उसके परिणत यौवनके सुगम्भीर तल-देशसे जो मातृत्व सहसा जाग उठा है, तुरत ही जागे हुए कुम्भकर्णके समान उसकी विराट् क्षुधाके लिए आहार कहाँ मिलेगा। उसकी सन्तान होनेपर जो बात सहज और स्वाभाविक हो सकती, उसीके अभावमें समस्या इस तरह एकान्त जटिल हो उठी है।

उस दिन पटनेमें उसके जिस मातृरूपको देखकर मैं मुग्ध और अभिभूत हो गया था, आज उसी मूर्तिका स्मरण करके अत्यन्त व्यथाके साथ मैं केवल यही सोचने लगा कि इतनी बड़ी आगको केवल फूँक मारकर नहीं बुझाया जा सकता। इसीलिए, आज पराये लड़केको पुत्र कल्पित करनेके खिलवाड़से राजलक्ष्मीके हृदयकी तृष्णा किसी तरह भी नहीं मिट रही है। इसीलिए आज एकमात्र बंकू ही उसके लिए पर्याप्त नहीं है, आज दुनियामें जहाँ जितने भी लड़के हैं उन सबका सुख-दुःख भी उसके हृदयको आलोड़ित कर रहा है।

बर्द्वानमें महाशय उतर गये। राजलक्ष्मी बहुत देर चुपचाप बैठी रही। मैंने खिड़कीकी ओरसे दृष्टि हटाकर पूछा, "यह रोना किसके लिए हुआ? सरलाके लिए, या उसकी माँके लिए?"

राजलक्ष्मीने मुँह उठाकर कहा, "मालूम होता है, तुम इतनी देरतक हम लोगोंकी बातचीत सुन रहे थे।"

मैंने कहा, "यों ही अनायास। स्वयं बात न करनेपर भी बाहरसे बहुत-सी बातें मनुष्यके कानोंमें आ घुसती हैं। संसारमें भगवान्ने कम बोलनेवालोंके लिए इस दण्डकी सृष्टि कर रक्खी है। इससे बचनेकी कोई युक्ति नहीं। खैर, जाने दो

किन्तु आँखोंका पानी किसके लिए झरा सो नहीं बताया ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरी आँखोंका पानी किसके लिए झरता है, यह जाननेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं।"

मैंने कहा, "लाभकी आशा नहीं करता,—केवल नुकसान बचाकर ही चला जा सके तो काफी है। सरला अथवा उसकी माके लिए जितनी इच्छा हो आँसू बहाओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं,—किन्तु, उसके बापके लिए बहाना मैं पसन्द नहीं करता।"

राजलक्ष्मी केवल एक 'हूँ' करके खिड़कीके बाहर झाँकने लगी।

सोचा था कि यह दिल्लगी निष्फल नहीं जायगी, अनेक रुंधे हुए झरनोंके द्वार खोल देगी। किन्तु, सो तो हुआ नहीं, हुआ यह कि अबतक वह इस ओर देख रही थी सो दिल्लगी सुनकर उस ओरको मुँह फेरकर बैठ गई।

किन्तु, बहुत देरसे मौन था,—बातचीत करनेके लिए भीतर ही भीतर एक आवेग उपस्थित हो गया था। इसीलिए, अधिक देर तक चुप न रह सका और बोला, "बर्दवानसे कुछ खानेको मोल ले लिया होता !"

राजलक्ष्मीने कोई जवाब नहीं दिया, वह उसी तरह चुप बनी रही।

मैं बोला, "दूसरेके दुःखमें रो-रोकर नद बहा दिया, और घरके दुःखपर कान ही नहीं देतीं ! तुमने यह विलायतसे लौटे हुओंकी विद्या कहाँ सीख ली ?"

राजलक्ष्मीने इस दफे धीरेसे कहा, "देखती हूँ कि विलायतसे लौटे हुओंपर तुम्हारी भारी भक्ति है !"

मैंने कहा, "हाँ, वे लोग भक्तिके पात्र जो हैं !"

"क्यों, उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

"अभी तक तो कुछ नहीं बिगाड़ा; किन्तु, बादमें न कहीं कुछ बिगाड़ दें, इस डरसे पहलेसे ही भक्ति करता हूँ।"

राजलक्ष्मीने क्षण-भर चुप रहकर कहा, "यह तुम लोगोंका अन्याय है। तुम लोगोंने उन्हें अपने दलसे, जातिसे, समाजसे,—सब ओरसे बहिष्कृत कर दिया है। फिर भी, यदि वे लोग तुम्हारे लिए थोड़ा-सा भी कुछ करते हैं, तो उतनेहीके लिए तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।"

मैंने कहा, "हम लोग बहुत ज्यादा कृतज्ञ होवें, यदि वे उस क्रोधके कारण पूरे पूरे मुसलमान या क्रिस्तान हो जाते ! उन लोगोंमें जो अपनेको ब्राह्म कहते हैं वे ब्राह्म-समाजको नष्ट करते हैं, जो हिन्दू कहते हैं वे हिन्दू समाजको

हैरान करते हैं। यदि वे पहले यह ठीक करके कि स्वयं कौन हैं दूसरोंके लिए रोने बैठते तो उससे उनका खुदका कल्याण होता और जिनके लिए रोते हैं उनका भी शायद कुछ उपकार हो जाता।"

राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु, मुझे तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

मैंने कहा, "नहीं जान पड़ता तो कोई विशेष हानि नहीं। किन्तु, जिसके लिए इस समय अटका हुआ हूँ वह अन्य बात है।—कहाँ, उसका तो कोई जवाब ही नहीं दिया?"

इस दफे राजलक्ष्मीने हँसकर कहा, "अजी, उसके लिए अटकना नहीं पड़ेगा। पहले तुम्हारी भूख तो पक जाय, उसके बाद विचार किया जायगा।"

मैंने कहा, "तब विचार क्या होगा, जिस-किसी स्टेशनसे जो कुछ मिलेगा वही निगलनेको दे दोगी!—किन्तु, सो नहीं होगा, मै कहे रखता हूँ।"

मेरा उत्तर सुनकर वह मेरे मुँहकी ओर कुछ देर चुपचाप देखती रही और फिर कुछ हँसकर बोली, "सो मैं कर सकती हूँ,—तुम्हें विश्वास होता है?"

मैंने कहा, "खूब! इतना-सा भी विश्वास तुमपर नहीं होगा?"

"तो ठीक है!" कहकर वह फिर अपनी खिड़कीसे बाहर झाँकती हुई चुपचाप बैठी रही।

अगले स्टेशनपर राजलक्ष्मीने रतनको बुलाकर खानेके लिए जगह-करा दी और उसे हुक्का लानेका हुक्म देकर थालीमें समस्त खाद्य-सामग्री सजाकर सामने रख दी। देखा, इस विषयमें कहीं बिन्दु-भर भी भूल-चूक नहीं हुई है,—मुझे जो कुछ अच्छा लगता है वह सब चुन चुन कर संग्रह करके लाया गया है।

बेञ्चपर रतनने बिस्तर कर दिये। इतमीनानके साथ भोजन समाप्त करके गुड़गुड़ीकी नली मुँहमें डालकर आरामसे आँखें मूँदनेकी तैयारी कर रहा था कि राजलक्ष्मी बोली, "खानेकी चीजें उठा ले जा रतन, इसमेंसे जो भावे सो खा लेना,—और तेरे डब्बेमेंसे और भी कोई खावे तो दे देना।"

किन्तु, रतनको अत्यन्त लज्जित और संकुचित लक्ष्य करके मैंने कुछ अचरजके साथ पूछा, "कहाँ, तुमने तो कुछ खाया नहीं?"

राजलक्ष्मी बोली, "नहीं, मुझे भूख नहीं है। जा न रतन, खड़ा क्यों है? गाड़ी चल देगी जो!"

रतन लज्जाके मारे मानो गड़ गया। "मुझसे बड़ी भूल हो गई बाबू, मुसल

मान कुलीसे खाना छू गया है। कितना ही कहता हूँ,—माँ, स्टेशनसे कुछ खरीद लाने दो, किन्तु किसी तरह मानती ही नहीं।" इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर अपनी कातर-दृष्टि डाली जैसे मेरी ही अनुमति चाह रहा हो।

किन्तु मैं कुछ कहूँ, इसके पहले ही राजलक्ष्मीने उसे धमकाकरकहा, "तू जायगा नहीं, खड़ा खड़ा तर्क करेगा ?"

रतन फिर कुछ न बोला और भोजनके बर्तन हाथमें लेकर बाहर चला गया। ट्रेनके चलते ही राजलक्ष्मी मेरे सिरहाने आ बैठी और सिरके बालोंमें धीरे धीरे अँगुलियाँ चलाते चलाते बोली, "अच्छा देखो—"

बीचमें ही टोककर बोला, "देखूँगा फिर कभी। किन्तु—"

उसने भी मुझे उसी घड़ी टोककर कहा, "तुम्हें 'किन्तु'से शुरू करके लेक्चर न देना होगा, मैं सब समझ गई। मैं मुसलमानसे घृणा नहीं करती; उसके छू लेनेसे भोजन नष्ट हो जाता है, सो भी नहीं मानती। यदि ऐसा होता तो तुम्हें अपने हाथोंसे भोजन न परोसती।"

"किन्तु, तुमने खुद क्यों नहीं खाया ?"

"स्त्रियोंको नहीं खाना चाहिए।"

"क्यों ?"

"क्यों और क्या ? स्त्रियोंको खानेकी मनाई है।"

"किन्तु, पुरुषोंके लिए मनाई नहीं है ?"

राजलक्ष्मीने मेरा सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मर्दोंके लिए ये बँधे हुए आईन-कानून किस लिए ? वे जो इच्छा हो खावें, जो इच्छा हो पहिनें, जैसे भी हो सुखसे रहें,—हम लोग आचारका पालन करती जावें, बस यही बहुत है। हम तो सैकड़ों कष्ट सह सकती हैं, किन्तु क्या तुम लोग सह सकते हो ? यही देखो न, शाम होते न होते ही भूखके मारे आँखोंके आगे अँधेरा देखने लगे थे !"

मैंने कहा, "हो सकता है, किन्तु, हम कष्ट नहीं सहन कर सकते, इसमें हम लोगोंके लिए भी तो कोई गौरवकी बात नहीं है।"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, इसमें तुम्हारा जरा भी अगौरव नहीं है। तुम लोग हम लोगोंकी तरह दासीकी जाति नहीं हो जो कष्ट सहन करने जाओ। लज्जाकी बात तो हमारे लिए है ! यदि हम कष्ट न सहन कर सकें।"

मैंने कहा, "यह न्याय-शास्त्र तुम्हें सिखाया किसने ? काशीके गुरुजीने ?"

राजलक्ष्मी मेरे मुँहके अत्यन्त निकट झुककर क्षण-भर स्थिर हो रही, फिर

मुस्कराकर बोली, "मुझे जो कुछ शिक्षा मिली है सब तुम्हारे ही समीप,—तुमसे बढ़कर गुरु मेरा और कोई नहीं।"

मैंने कहा, "तब तो फिर, गुरुसे तुमने ठीक उलटी बात सीख रक्खी है। मैंने किसी दिन नहीं कहा कि तुम लोग दासीकी जाति हो। बल्कि, मैं तो यही बात चिरकालसे मानता हूं कि तुम दासी नहीं हो। तुम किसी तरह भी हम लोगोंकी अपेक्षा तिल-भर छोटी नहीं हो।"

राजलक्ष्मीकी आँखें छलछला आईं, बोली, "सो मैं जानती हूं। और जानती हूं इसीलिए तो यह बात तुम्हारे समीप सीख पाई हूं। तुम्हारी तरह यदि सभी पुरुष यही बात सोच सकते, तो फिर पृथ्वी-भरकी समस्त स्त्रियोंके मुँहसे यही बात सुन पड़ती। कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह समस्या ही कभी न उठती।"

"अर्थात्, यह सत्य बिना किसी विचारके सभी मान लेते?"

राजलक्ष्मी बोली, "हाँ।"

तब मैंने हँसकर कहा, "सौभाग्यसे पृथ्वी-भरकी स्त्रियाँ तुम्हारे साथ एकमत नहीं हैं, यही खैरियत है। किन्तु, अपनी जातिको इतना हीन समझते तुम्हें लाज नहीं आती?"

मेरे उपहासपर राजलक्ष्मीने ध्यान दिया या नहीं, इसमें सन्देह है। वह बहुत ही सहज भावसे बोली, "किन्तु, इसमें तो हीनताकी कोई बात नहीं है।"

मैंने कहा, 'सो ठीक है, हम लोग मालिक हैं और तुम दासी, यह संस्कार इस देशकी स्त्रियोंके मनमें इस तरह बद्धमूल हो गया है कि इसकी हीनता भी तुम्हारी नजरमें नहीं आती। जान पड़ता है कि इसी पापसे पृथ्वीके सारे देशोंकी स्त्रियोंकी अपेक्षा तुम सचमुच ही आज छोटी हो गई हो।"

राजलक्ष्मी एकाएक सख्त होकर बैठ गई और दोनों नेत्रोंको प्रदीप्त करके बोली, "नहीं; इस कारण नहीं। तुम्हारे देशकी स्त्रियाँ अपने आपको छोटा समझनेके कारण छोटी नहीं हो गई हैं। सच यह है कि तुम्हीं लोगोंने उन्हें छोटा समझकर छोटा बना दिया है, और तुम खुद भी छोटे हो गये हो।"

यह बात मुझे अकस्मात् कुछ नई-सी मालूम हुई। इसमें जो कुछ गूढ़ अर्थ छिपा हुआ था वह धीरे धीरे सुस्पष्ट-सा होने लगा। सचमुच ही इसमें बहुत-सा सत्य छिपा हुआ है जो अब तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुआ था।

राजलक्ष्मी बोली, "तुमने तो उस भद्र पुरुषके सम्बन्धमें मजाक किया था;

किन्तु, उसकी बात सुनकर मेरी आँखें कितनी खुल गई हैं, सो तुम नहीं जानते।"

"नहीं जानता," यह स्वीकार करते ही वह कहने लगी, "नहीं जानते, इसके कारण हैं। किसी भी वस्तुको जाननेके लिए जब तक मनुष्यके हृदयके भीतर एक तरहकी व्याकुलता नहीं उठती तब तक सब कुछ उसकी नजरमें धुँधला ही बना रहता है। इतने दिन तुम्हारे मुँहसे सुनकर सोचा करती थी कि सचमुच ही यदि हमारे देशके लोगोंका दुःख इतना अधिक है, सचमुच ही यदि हमारा समाज इतना अधिक अन्धा है, तो उसमें मनुष्य जीता ही क्यों कर है, और उसको मानकर ही क्यों चलता है?"

मैं चुपचाप सुन रहा हूँ, यह देखकर वह आहिस्ते आहिस्ते कहने लगी, "और तुम भी क्या समझोगे? कभी इन लोगोंके बीच रहे नहीं, कभी इन लोगोंके सुख-दुःख भोगे नहीं; इसीलिए, बाहर ही बाहर बाहरके समाजके साथ तुलना करके समझते हो कि इन लोगोंके कष्टोंकी शायद कोई सीमा ही नहीं। धनी जमींदार पुलाव खाया करता है। वह अपनी किसी दरिद्र प्रजाको बासी भात खाते देखकर सोचता है कि 'इसके दुःखकी कोई सीमा नहीं है,'—जिस तरह वह भूलता है उसी तरह तुम भी भूलते हो।"

मैंने कहा, "तुम्हारा तर्क यद्यपि न्याय-शास्त्रके नियमानुसार नहीं चल रहा है, फिर भी पूछता हूँ कि तुमने कैसे जाना कि मुझे देशके सम्बन्धमें इससे अधिक ज्ञान नहीं है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "हो ही कैसे सकता है? दुनियामें तुम्हारे जैसा स्वार्थी कोई और भी है क्या? जो केवल अपने ही आरामके लिए भागता फिरता है, वह घरकी खबर जानेगा ही कहाँसे? तुम जैसे लोग ही तो समाजकी अधिक निन्दा करते फिरते हैं जो समाजसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते, बल्कि उसकी ओरसे सर्वथा उपेक्षित रहते हैं। तुम लोग न तो अच्छी तरह पराये समाजको जानते हो और न अच्छी तरह अपने ही समाजको।"

मैंने कहा, "इसके बाद?"

राजलक्ष्मी बोली, "इसके बाद बाहर रहकर बाहरी सामाजिक व्यवस्था देखकर तुम लोग सोचमें मरे जाते हो कि हमारी स्त्रियाँ मकानमें कैद रहकर दिन-रात काम किया करती हैं, इसलिए उनके समान दुःखी, उनके समान पीड़ित, उनके समान हीन, शायद और किसी देशकी स्त्रियाँ नहीं हैं। किन्तु,

कुछ दिन हमारी चिन्ता छोड़कर केवल अपनी ही चिन्ता कर देखो, अपनेको कुछ ऊँचा उठानेकी चेष्टा करो।—यदि कहीं कुछ सचमुचका दोष होगा तो वह केवल उसी समय नज़र आयेगा,—उससे पहले नहीं।"

"इसके बाद?"

राजलक्ष्मीने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम मुझसे मज़ाक कर रहे हो, यह मैं जानती हूँ। किन्तु, मैं मज़ाककी बात नहीं कर रही हूँ। घरकी मालकिन सब लोगोंसे खराब खाती-पीती है, कभी-कभी तो नौकरोंकी अपेक्षा भी। बहुधा उसे नौकरोंसे भी अधिक मेहनत करनी पड़ती है। किन्तु, तुम इस दुःखसे व्याकुल होकर रोते हुए मत फिरो; हम लोगोंको दासीके समान ही बनी रहने दो, दूसरे देशों जैसी रानी बना डालनेकी चेष्टा मत करो;—मैं यही बात तुमसे कहती हूँ।"

मैंने कहा, "यद्यपि तुम तर्क-शास्त्रके माथेपर पैर देकर उसे डुबा देनेकी तजवीज कर रही हो, किन्तु, फिर भी यह स्वीकार करता हूँ कि शास्त्रानुसार तर्क करनेका रास्ता मुझे भी नहीं मिल रहा है।"

उसने कहा, "इसमें तर्क करने-जैसा कुछ भी नहीं है।"

मैंने कहा, "हो भी, तो वह शक्ति मुझमें नहीं है,—बड़ी नींद आ रही है। किन्तु, तुम्हारी बात एक तरहसे समझ रहा हूँ।"

राजलक्ष्मी जरा चुप रहकर बोली, "हमारे देशमें चाहे जिस कारण हो, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सभी लोगोंमें रुपयोंका लोभ बहुत ही बढ़ गया है। कोई भी थोड़ेमें सन्तुष्ट होना नहीं जानता, चाहता भी नहीं। इससे कितना अनिष्ट हुआ है, इसका पता मैंने पा लिया है।"

"बात सच है, किन्तु तुमने पता किस तरह पाया?"

राजलक्ष्मी बोली, "रुपयोंके लोभसे ही तो मेरी यह दशा हुई है! किन्तु पूर्व-कालमें शायद इतना लोभ नहीं था।"

मैंने कहा, "इस इतिहासको मैं ठीक ठीक नहीं जानता।"

वह कहने लगी, "इतना कभी नहीं था। उस समय माता रुपयेके लोभसे अपनी बेटीको कभी इस रास्तेपर नहीं ढकेलती, उस समय धर्मका डर था। आज तो मेरे पास रुपयोंकी कमी नहीं है किन्तु मेरे समान दुखी भी क्या कोई है? रास्तेका भिखारी भी, मैं समझती हूँ, मुझसे बहुत अधिक सुखी है।"

उसका हाथ अपने हाथमें रखकर पूछा, "तुम्हें सचमुच ही इतना कष्ट है?"

राजलक्ष्मीने क्षण-भर मौन रहकर और एक बार आँचलसे आँखें-मुँह पोंछकर कहा, "मेरी बात मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं।"

इसके बाद दोनों ही गुम-सुम हो रहे। गाड़ीकी रफ्तार कम होकर वह एक छोटे स्टेशनपर आकर खड़ी हो गई। कुछ देर बाद उसने फिर चलना शुरू किया। मैंने कहा, "क्या करनेसे तुम्हारा शेष जीवन सुखसे कट सकता है, यह मुझे बतला सकती हो?"

राजलक्ष्मी बोली, "यह मैंने सोच रखा है। मेरा सारा धन यदि किसी तरह चला जाय, कुछ न बच रहे,—एक बारगी निराश्रय हो जाऊँ, तो—"

अब हम फिर बिल्कुल गुम-सुम हो रहे। उसकी बात इतनी स्पष्ट थी कि सभी समझ सकते हैं, मुझे भी समझनेमें देर न लगी। कुछ देर चुप रहकर पूछा, "यह खयाल कबसे आया तुम्हारे मनमें?"

राजलक्ष्मी बोली, "जिस दिन अभयाकी बात सुनी उसी दिनसे।"

मैंने कहा, "किन्तु, उन लोगोंकी जीवन-यात्रा तो बीचमें ही खत्म हुई नहीं जाती। भविष्यमें वे कितना दुःख पा सकते हैं, सो तो तुम जानती नहीं।"

वह सिर हिलाकर बोली, "नहीं, जानती नहीं, यह सत्य है; किन्तु वे चाहे कितना ही दुःख क्यों न पावें, मेरे समान दुःख किसी दिन न पावेंगे, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ।"

और भी कुछ देर चुप रहकर मैंने कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सकता हूँ; किन्तु इज्जतका त्याग कैसे करूँ?"

राजलक्ष्मी बोली, "मैं क्या तुमसे कुछ त्यागनेको कहती हूँ? इज्जत ही तो मनुष्यकी असली चीज है। उसका यदि त्याग नहीं कर सकते तो त्यागकी बात ही क्यों मुँहपर लाते हो? तुमसे तो मैंने कुछ भी त्याग करनेके लिए नहीं कहा।"

मैंने कहा, "कहा नहीं, सो ठीक है; किन्तु, कर सकता हूँ। इज्जत जानेके बाद पुरुषका जीता रहना एक बिडम्बना है। केवल उस इज्जतको छोड़कर तुम्हारे लिए मैं सभी कुछ विसर्जित कर सकता हूँ।"

राजलक्ष्मीने सहसा हाथ खींच लिया और कहा, "मेरे लिए तुम्हें कुछ भी विसर्जित न करना पड़ेगा। किन्तु तुम क्या यह समझते हो कि केवल तुम लोगोंके ही इज्जत है, हम लोगोंकी कोई इज्जत नहीं? हम लोगोंके लिए उसका

त्याग देना क्या इतना अधिक सहज है ? फिर भी, तुम लोगोंके लिए ही सैकड़ों-हजारों स्त्रियोंने इसे धूलकी तरह फेंक दिया है, यह अवश्य ही तुम नहीं जानते, पर मैं जानती हूँ।"

मेरे कुछ बोलनेकी चेष्टा करते ही उसने रोककर कहा, "रहने दो, अब और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। तुम्हें इतने दिन मैंने जो समझा था वह गलत है। तुम सो जाओ,—अब इस सम्बन्धमें मैं भी कभी कोई ऐसी बात न कहूँगी, तुम भी न कहना।" इतना कहकर वह उठी और अपनी बेञ्चपर जा बैठी।

दूसरे दिन ठीक समयपर काशी आ पहुँचा और प्यारीके मकानमें ही ठहरा। ऊपरके दो कमरोंको छोड़कर करीब माराका सारा मकान जुदी जुदी उम्रकी विधवा स्त्रियोंसे भरा हुआ था।

प्यारी बोली, "ये सब मेरी किरायेदार हैं।" इतना कहकर वह मुँह फिराकर कुछ हँस दी।

मैंने कहा, "हँसी क्यों ? शायद किराया अदा नहीं होता ?"

प्यारी बोली, "नहीं; बल्कि कुछ न कुछ और देना पड़ता है।"

"इसके मानी ?"

प्यारी इस दफे हँस पड़ी और बोली, "इसके मानी हैं, भविष्यकी आशा-पर मुझको ही इन्हें खाना-कपड़ा देकर जिलाये रखना है। जीती रहेंगी तभी तो बादमें देंगी, यह भी क्या नहीं समझ सकते ?"

मैंने भी हँसकर कहा, "समझता नहीं तो ! इस तरह भविष्यकी आशापर कितने लोगोंको तुम्हें गुपचुप अन्न-वस्त्र जुटाना पटाना पड़ता होगा,—मैं केवल वही सोच रहा हूँ !"

"इनके सिवाय मेरी दो-एक रिश्तेदार भी हैं।"

"सो भी हैं क्या ? किन्तु, मालूम कैसे हुआ तुम्हें कि रिश्तेदार हैं ?"

प्यारी जरा सूखी हँसी हँसकर बोली, "माँके साथ आनेपर इस काशीमें ही तो मेरी 'मौत' हुई थी, शायद तुम्हें यह याद नहीं रहा। तब असमयमें ही जिन्होंने मेरी 'सद्गति' की थी, उन लोगोंका वह उपकार क्या प्राण रहते कभी भूला जा सकता है ?"

मैं चुप हो रहा। प्यारी कहने लगी, "इन लोगोंका शरीर बड़ा ही दयापूर्ण है। इसीलिए, पास रखकर इनपर जरा कड़ी नजर रखती हूँ, जिससे इन्हें और अधिक उपकार करनेका सुयोग न मिले।"

उसके चेहरेकी ओर निहारते ही एकाएक मेरे मुँहसे बाहर निकल गया "तुम्हारे हृदयके भीतर क्या है,—बीच-बीचमें उसे ही चीर देखनेकी इच्छा होती है राजलक्ष्मी !"

"मरनेपर देखना। अच्छा, कमरेमें जाकर सो जाओ। रसोई बन जानेपर उठा दूँगी।" इतना कहकर और हाथके इशारेसे कमरा दिखाकर वह जीनेसे नीचे उतर गई।

मैं वहींपर कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। यह नहीं कि आज मैंने उसके हृदयका कोई नया परिचय प्राप्त किया हो, किन्तु, मेरे खुदके हृदयमें यह सामान्य कहानी एक नये चक्करकी सृष्टि कर गई।

रातको प्यारी बोली, "तुम्हें फिजूल कष्ट देकर इतनी दूर ले आई। गुरु-देव तीर्थाटन करने निकल गये हैं, उनसे तुम्हें नहीं मिला सकी।"

मैंने कहा, "इसके लिए मैं जरा भी दुःखित नहीं हूँ। अब तो कलकत्ते लौट चलना होगा न ?"

प्यारीने गर्दन हिलाकर बताया "हाँ।"

मैंने कहा, "क्या मेरा साथ चलना आवश्यक है ? न हो तो मैं जरा और पश्चिमकी ओर घूम आना चाहता हूँ।"

प्यारीने कहा, "बंकूके ब्याहमें तो अब भी कुछ देर है। चलो न, मैं भी प्रयाग चलकर स्नान कर आऊँ।"

मैं जरा मुश्किलमें पड़ गया। मेरे दूरके रिश्तेके एक चचा वहाँ नौकरी करते हैं। सोचा था कि वहीं जाकर ठहरूँगा। सिवाय इसके और भी कई परिचित मित्र दोस्त वहाँ रहते हैं।

प्यारीने निमेष-मात्रमें मेरे मनका भाव ताड़कर कहा, "मैं साथ रहूँगी तो शायद कोई देख लेगा, यही न ?"

अप्रतिभ होकर कहा, "वास्तवमें कलंक चीज ही ऐसी है कि लोग झूठे कलंकका भी भय किये बगैर नहीं रह सकते।"

प्यारीने जबर्दस्ती हँसते हुए कहा, "सो ठीक है। गत साल आरेमें तो तुम्हें एक तरहसे गोदमें लिये ही लिये मेरे दिन-रात कटे हैं। सौभाग्यसे उस दशामें किसीने तुम्हें नहीं देखा। उस जगह शायद तुम्हारी जान-पहिचानका कोई बन्धुबान्धव नहीं था!"

मैंने अतिशय लज्जित होकर कहा, "मुझे ताना मारना वृथा है। मनुष्य-

-ताके लिहाजसे मैं तुम्हारी अपेक्षा बहुत हीन हूँ, इस बातको तो मैं अस्वीकार करता नहीं।"

प्यारी तीक्ष्ण स्वरसे बोल उठी, "दादा! तुम्हें ताना मार सकूँगी, यही सोचकर शायद मैं वहाँ गई थी, क्यों? देखो, मनुष्यको पीड़ा पहुँचानेकी भी एक हद होती है,—उसे मत लाँघ जाना।"

कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, "ठीक, कलंक ही तो है! यदि मैं होती तो इस कलंकको सिरपर लेकर लोगोंको बुलाकर दिखाती फिरती, पर ऐसी बात मुँहसे बाहर न निकाल सकती।"

मैंने कहा, "तुमने मुझे प्राण-दान जरूर दिया है,—किन्तु, मैं अत्यन्त छोटा आदमी हूँ राजलक्ष्मी! तुम्हारे साथ मेरी तुलना ही नहीं हो सकती।" राजलक्ष्मी दर्पयुक्त स्वरमें बोली "प्राण-दान यदि दिया है तो अपनी ही गरजसे दिया है, तुम्हारी गरजसे नहीं। उसके लिए तुम्हें रत्ती-भर भी अह-सान माननेकी जरूरत नही। किन्तु मैं तुम्हें छोटा,—छोटी तबीयतका आदमी नहीं खयाल कर सकती। ऐसा होता तो आफत कटती, गलेमें फाँसी लगाकर सारी ज्वालाको जुड़ा सकती।" इतना कहकर वह मेरे जवाबकी राह देखे बगैर ही कमरेसे बाहर चली गई।

दूसरे दिन सुबह राजलक्ष्मी चाय देकर चुपचाप चली जा रही थी कि मैंने बुलाकर कहा, "बातचीत बन्द है क्या?"

वह पलटकर खड़ी हो गई, बोली, "नहीं तो, कुछ कहोगे?"

मैंने कहा; "चलो, एक दफे प्रयाग घूम आवें?"

"ठीक तो है, जाइए।"

"तुम भी चलो।"

"अनुग्रह करते हो क्या?"

"नहीं चाहतीं?"

"नहीं। जरूरत होगी तब माँग लूँगी, इस समय नहीं।" इतना कहकर वह अपने कामसे चली गई।

मेरे मुँहसे केवल एक लम्बी साँस बाहर निकल गई, किन्तु कोई बात नहीं निकली।

दोपहरको भोजनके समय मैंने हँसकर कहा, "अच्छा लक्ष्मी, मुझसे बोलना

बन्द करके क्या तुमसे रहा जायगा जो इस असाध्य-साधनकी कोशिश कर रही हो ?"

राजलक्ष्मीने शान्त-गम्भीर मुद्रासे कहा, "सामने होने पर किसीसे नहीं रहा जाता,—मुझसे भी नहीं रहा जायगा। इसके सिवाय, यह मेरी इच्छा भी नहीं है।"

"तब फिर इच्छा क्या है ?"

राजलक्ष्मी बोली, "मैं कलसे ही सोच रही हूँ कि इस खींच-तानको बन्द किये बगैर नहीं चल सकता। तुमने भी एक तरहसे साफ साफ जता दिया है और मैं भी एक तरहसे खूब जान गई हूँ। गलती मेरी ही हुई, यह मैं भी स्वीकार करती हूँ, किन्तु,—"

उसे सहसा रुकते देख मैंने पूछा, "किन्तु, क्या ?"

राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु, कुछ भी नहीं। यह जो एक निर्लज्ज वाचालकी तरह याचना करती तुम्हारे पीछे पीछे घूमती फिरती हूँ—" इतना कह-कर उसने एकाएक अपना मुँह मानों घृणासे सिकोड़ लिया और कहा, "लड़का ही क्या सोचता होगा, नौकर चाकर ही मन ही मन क्या कहते होंगे ! राम, राम, मानों मैंने इसे एक हँसीका व्यापार बना डाला है।"

कुछ देर ठहर कर फिर कहने लगी, "बुढ़ापेमें यह क्या मुझे सोहता है ? तुम अलाहाबाद जाना चाहते थे, जाओ। फिर भी यदि हो सके तो बर्मा रवाना होनेके पहले एक दफे भेंट कर जाना।" इतना कहकर वह चली गई।

साथ ही साथ मेरी भूख भी गायब हो गई। उसका मुँह देखकर आज मुझे पहले ही पहल ज्ञात हुआ कि यह सब मान-मनौवलका मामला नहीं है, सचमुच ही उसने कुछ न कुछ सोचकर स्थिर कर लिया है।

संध्याके समय आज एक हिन्दुस्तानी दासी जल-पान आदि सामग्री लेकर आई तो उससे कुछ अचरजके साथ प्यारीका हाल पूछा। जवाब सुनकर मैंने और भी अचरजके साथ जाना कि प्यारी मकानमें नहीं है, वह साज-सिंगार करके फिटनपर कहीं गई है। फिटन कहाँसे आई, उसे साज-सिंगार करके कहाँ जानेकी जरूरत पड़ गई,—सो कुछ भी न समझा। तब स्वयं उसीके मुँहकी वह बात याद आ गई कि वह काशीमें ही एक दिन 'भरी' थी।

यह सच है कि कुछ भी समझमें न आया, फिर भी, इस खबरसे सारा मन फीका हो गया।

शाम हुई, घर घरमें दीए जले, किन्तु राजलक्ष्मी नहीं लौटी।

चादर कंधेपर डालकर जरा घूम आनेके लिए बाहर निकल पड़ा। रास्ते रास्ते चक्कर काटता, बहुत कुछ देखता सुनता, रातके दस बजेके बाद मकानपर लौटा, तो सुना कि प्यारी तब भी लौटकर नहीं आई है। मामला क्या है? कुछ डर-सा मालूम होने लगा। सोच ही रहा था कि रतनको बुलाकर सारा संकोच दूरकरके इस सम्बन्धका पता लगाऊँ या नहीं कि एक भारी जोड़ीके घोड़ोंकी टापोंका शब्द सुनाई दिया। खिड़कीमेंसे झाँका तो देखता हूँ एक बड़ी भारी फिटन मकानके सामने आकर खड़ी है।

प्यारी उतरकर आई। ज्योत्स्नाके आलोकमें उसके सर्वांगके जेवर झलमला उठे। जो दो भले आदमी फिटनमें बैठे थे वे धीमे स्वरसे जान पड़ा, प्यारीको सम्बोधन कर कुछ कह रहे हैं जिसे मैं सुन न सका। वे बंगाली हैं या बिहारी, सो भी न जान सका। चाबुक खाकर घोड़े पलक मारते न मारते आँखोंके ओझल हो गये।

१५

राजलक्ष्मीने मेरी खबर लेनेके लिए उसी साज-सिंगारके साथ मेरे कमरेमें प्रवेश किया।

मैं उछलकर और उसकी ओर दाहिना हाथ पसारकर थियेटरी गलेसे बोला, "अरी पाखण्डिनी रोहिणी! तू गोविन्दलालको नहीं पहचानती? अहा! आज यदि मेरे पास एक पिस्तौल होती, या एक तलवार ही होती!"

राजलक्ष्मीने सूखे कण्ठ-स्वरसे कहा, "तो क्या करते?—खून?"

हँसकर बोला, 'नहीं प्यारी, मुझे इतना बड़ा नवाबी शौक नहीं है। इसके सिवाय इस बीसवीं शताब्दिमें ऐसा निष्ठुर राक्षसाधम कौन है जो संसारकी इतनी बड़ी आनन्दकी खानको पत्थरसे मूँद दे? बल्कि, आशीर्वाद देता हूँ कि हे बाईकुल-शिरोमणि! तुम दीर्घ-जीवनी होओ,—तुम्हारा सुन्दर रूप त्रिलोक-विजयी हो, तुम्हारा कण्ठ-स्वर वीणा-विनिन्दित हो, तुम्हारे इन दोनों चरण-कमलोंका नृत्य उर्वशी-तिलोत्तमाका गर्व खर्व कर दे,—और मैं दूरसे तुम्हारा जय-गान करके धन्य होऊँ!"

प्यारी बोली, "इन सब बातोंका अर्थ?"

१-२ बंकिमबाबूके 'विषवृक्ष' नामक उपन्यासके दो पात्र।

मैंने कहा, "अर्थमनर्थम्—! उसे जाने दो। मैं इसी एक बजेकी गाड़ीसे बिदा होता हूँ। अभी तो प्रयाग जाता हूँ, इसके बाद जाऊँगा बंगालियोंके परमतीर्थ चाकरिस्तान,—अर्थात् बर्माको। यदि समय और सुयोग होगा, तो मिलकर जाऊँगा।"

"मैं कहाँ गई थी, यह सुनना भी आवश्यक नहीं समझते?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"यह बहाना पाकर क्या तुम एकदम चले जा रहे हो?"

मैंने कहा, "इस पापी मुँहसे अब भी कुछ नहीं कह सकता। इस गोरख धन्धेसे यदि पार हो सकूँ तो—"

प्यारी कुछ देर चुप-चाप खड़ी रही और बोली, "तुम क्या मुझपर जो जी चाहे वही अत्याचार कर सकते हो?"

मैं बोला, "जो जी चाहे? बिल्कुल नहीं। बल्कि, जान-अनजानमें यदि बिन्दुमात्र अत्याचार किया हो, तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

"इसके माने, आज रातको ही तुम चले जाओगे?"

"हाँ।"

"मुझे बिना अपराध दण्ड देनेका तुम्हें अधिकार है?"

"नहीं, तिल-भर भी नहीं। किन्तु, यदि मेरे जानेको ही तुम 'दण्ड देना' समझती हो, तो वह अधिकार मुझे जरूर है।"

प्यारीने हठात् कोई जवाब नहीं दिया। मेरे मुँहकी ओर कुछ क्षण चुपचाप देखते रहकर कहा, "मैं कहाँ गई थी, क्यों गई थी,—नहीं सुनोगे?"

"नहीं, मेरी सम्मति लेकर तो तुम वहाँ गई नहीं थी, जो लौट आकर उसका हाल सुनाओगी। सिवाय इसके, उसके लिए मेरे पास न समय है और न इच्छा।"

प्यारी चोट खाई हुई सर्पिणीकी तरह एकाएक फुंकार उठी, "मेरी भी सुनानेकी इच्छा नहीं है। मैं किसीकी खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ जो कहाँ जाऊँ और कहाँ न जाऊँ, इसकी अनुमति लेती फिरूँ! जाते हो, जाओ!" यों कहकर रूप और अलङ्कारोंकी एक हिलोर-सी उठाकर वह तेजीके साथ कमरेसे बाहर हो गई।

आदमी गाड़ी बुलाने गया। कोई घण्टे-भर बाद सदर दरवाजेपर एक गाड़ीके खड़े होनेका शब्द सुनकर बैग हाथमें लेकर जा ही रहा था कि प्यारी आकर पीछे खड़ी हो गई। बोली, "इसे क्या तुम बच्चोंका खिलवाड़ समझते

हो ? मुझे अकेली छोड़कर चले जाओगे, तो नौकर-चाकर क्या सोचेंगे ? तुम क्या इन लोगोंके सामने भी मुझे मुँह दिखाने योग्य न रक्खोगे ? "

पलटकर खड़े होकर कहा, "अपने नौकरोंके साथ तुम निपटती रहना,—मेरा उससे कोई ताल्लुक नहीं । "

" वह न हो न सही, किन्तु लौटकर मैं बंकूको ही क्या जवाब दूँगी ?"

" यही जवाब दे देना कि वे पश्चिमको घूमने चले गये हैं । "

" इसपर क्या कोई विश्वास करेगा ?"

" जिसपर विश्वास किया जा सके, ऐसी ही कोई बात बनाकर कह देना।"

प्यारी क्षण-भर मौन रहकर बोली, " यदि कुछ अन्याय ही कर बैठी हूँ तो क्या वह माफ नहीं हो सकता ? तुम क्षमा न करोगे तो और कौन करेगा ?"

मैं बोला, " प्यारी, यह तो एक बाँदी-दासी सरीखी बात हुई । तुम्हारे मुँहसे तो नहीं सोहती । "

इस तानेका प्यारी सहसा कोई उत्तर न दे सकी । उसका मुँह लाल हो गया, वह चुपचाप खड़ी रही । यह साफ मालूम हो गया कि वह प्राण-प्रणसे अपने आपको सम्हालनेकी चेष्टा कर रही है। बाहरसे गाड़ीवानने चिल्लाकर देरका कारण पूछा । मेरे चुपचाप बैग हाथमें लेते ही प्यारी धपसे मेरे पैरोंके समीप बैठ गई और रुद्ध स्वरसे बोल उठी, " मैं सचमुचका अपराध कभी कर ही नहीं सकती, यह जानते हुए भी यदि तुम दण्ड देना चाहते हो तो अपने हाथसे दो, किन्तु, घर-भरके लोगोंके समीप मेरा सिर नीचा मत करो। यदि आज तुम इस तरह चले जाओगे तो मैं अब किसीके समीप कभी अपना मुँह ऊँचा करके खड़ी न हो सकूँगी ।"

हाथका बैग नीचे रखकर एक चौकीपर बैठ गया और बोला, " अच्छा आज तुम्हारे-हमारे बीच अन्तिम फैसला हो जाय । तुम्हारा आजका आचरण मैंने माफ कर दिया । किन्तु, मैंने बहुत विचार करके देखा है कि हम दोनोंका मिलना-जुलना अब नहीं हो सकेगा ।"

प्यारीने अपना अत्यन्त उत्कण्ठित मुँह मेरे मुँहकी ओर उठाकर डरते हुए पूछा, "क्यों ?"

मैं बोला, "अप्रिय सत्य सह सकोगी ?"

प्यारीने गर्दन हिलाकर अस्फुट स्वरमें कहा, "हाँ, सह सकूँगी ।"

किन्तु, किसी आदमीके व्यथा सहनेको तैयार हो जानेसे ही कुछ व्यथा

देनेका कार्य सहज नहीं हो जाता। मुझे बहुत देरतक चुपचाप बैठकर सोचना पड़ा। फिर भी मैंने स्थिर कर लिया कि आज किसी तरह भी अपना इरादा नहीं बदलूँगा और इसीलिए, अन्तमें मैंने धीरेसे कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारा आजका व्यवहार माफ करना कितना ही कठिन क्यों न हो, मैंने माफ़ किया। किन्तु, तुम स्वयं इस लोभको किसी तरह नहीं छोड़ सकोगी। तुम्हारे पास बहुत धन दौलत है,—बहुत-सा रूप-गुण है। बहुतोंपर तुम्हारा असीम प्रभुत्व भी है। संसारमें इससे बढ़कर लोभकी वस्तु और कोई नहीं है। तुम मुझे प्यार कर सकती हो, किन्तु इस मोहको किसी तरह भी नहीं काट सकोगी।"

राजलक्ष्मीने मृदु कण्ठसे कहा, "अर्थात्, इस तरहका काम मैं बीच-बीचमें करूँगी ही?"

जवाबमें मैं केवल मौन हो रहा। वह खुद भी कुछ देर चुप रहकर बोली, "उसके बाद?"

"उसके बाद एक दिन ताशके मकानकी तरह सब गिर पड़ेगा। उस दिनकी उस हीनतासे तो यही भला है कि आज मुझे हमेशाके लिए रिहाई दे दो,—तुम्हारे समीप मेरी यही प्रार्थना है!"

प्यारी बहुत देर तक मुँह नीचा किये चुपचाप बैठी रही। इसके बाद जब उसने मुँह उठाया तब देखा, उसकी आँखोंसे पानी गिर रहा है। उसे आँचलसे पोंछकर पूछा, "क्या मैंने कभी तुम्हें कोई छोटा कार्य करनेके लिए प्रवृत्त किया है?"

इस गिरती हुई अश्रु-धाराने मेरे संयमकी भीतपर चोट पहुँचाई; किन्तु, बाहरसे मैंने उसे किसी तरह प्रकट नहीं होने दिया। शान्त दृढ़ताके साथ कहा "नहीं, किसी दिन नहीं। तुम स्वयं छोटी नहीं हो। छोटा काम तुम स्वयं कभी कर नहीं सकतीं और दूसरोंको भी नहीं करने दे सकतीं।"

फिर कुछ ठहरकर कहा, "किन्तु, दुनिया तो मनसा पण्डितकी पाठशालाकी उस राजलक्ष्मीको पहिचानेगी नहीं। वह तो पहिचानेगी सिर्फ पटनाकी प्रसिद्ध प्यारीबाईको। तब दुनियाकी नज़रोंमें मैं कितना छोटा हो जाऊँगा, सो तुम क्या नहीं देख सकतीं? बतलाओ, तुम उसे किस तरह रोकोगी?'

राजलक्ष्मीने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा, "किन्तु उसे तो सचमुचमें छोटा होना नहीं कहते?"

मैंने कहा, "भगवान्की नजरमें न हो, किन्तु, संसारकी आँखें भी तो उपेक्षा करनेकी चीज नहीं हैं लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "किन्तु, उन्हींकी नजरको ही तो सबसे पहले मानना उचित है।"

मैंने कहा, "एक तरहसे यह बात सच है। किन्तु, उनकी नजर तो हमेशा दीख नहीं पड़ती और फिर जो दृष्टि संसारमें दस आदमियोंके भीतरसे प्रकाश पाती है, वह भी तो भगवान्की ही दृष्टि है राजलक्ष्मी, इसे भी तो अस्वीकार करना अन्याय है!"

"इसी डरसे तुम मुझे जन्म-भरके लिए छोड़कर चले जाओगे?"

मैं बोला, "फिर मिलूँगा। तुम कहीं भी क्यों न होओ, बर्मा जानेके पहले मैं एक दफे और भी तुमसे मिल जाऊँगा।"

राजलक्ष्मी तेजीके साथ सिर हिलाकर रुआसे स्वरसे कह उठी, "जाते हो तो जाओ। किन्तु, तुम मुझे चाहे जैसा क्यों न समझो, मुझसे बढ़कर अपना तुम्हारा और कोई नहीं। पर उसी मुझको त्याग कर जाना दस आदमियोंकी निगाहमें धर्म है, यह बात मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगी!" इतना कहकर वह तेजीसे कमरा छोड़कर चली गई।

घड़ी निकालकर देखा, अब भी समय है, अब भी शायद एक बजेकी गाड़ी मिल जाय। चुपचाप बैग उठाकर धीरेसे उतरकर मैं गाड़ीमें जा बैठा।

इनामके लोभसे गाड़ीने प्राणपणसे दौड़कर स्टेशन पहुँचा दिया। किन्तु उसी क्षण पश्चिमकी ट्रेनने प्लेटफार्म छोड़ दिया। पूछनेसे मालूम हुआ कि आध घण्टे बाद ही एक ट्रेन कलकत्तेकी ओर जायगी। सोचा, चलो, यही अच्छा है: गाँवका मुँह बहुत दिनसे नहीं देखा,—उस जंगलमें ही जाकर बाकीके कुछ दिन काट दूँ।

इसलिए, पश्चिमके बदले पूर्वका टिकट खरीदकर आध घण्टेके बाद एक विपरीत-गामिनी भाफकी गाड़ीमें बैठकर काशीसे चल दिया।

१६

बहुत दिनों बाद फिर एक दिन शामको गाँवमें आकर प्रवेश किया। मेरा मकान उस समय सगे-सम्बन्धी रिश्तेदारों तथा उनके भी रिश्तेदारोंसे भरा हुआ था। बड़े मजेसे सारे घरको घेरकर उन्होंने अपनी घर-गिरिस्ती फैला रक्खी थी, कहीं सुई रखनेके लिए भी जगह नहीं थी।

मेरे एकाएक आ पहुँचने और वहाँ रहनेके इरादेको सुनकर आनन्दके मारे उनका चेहरा स्याह हो गया। वे कहने लगे, "आह! यह तो बड़े आनन्दकी बात है! इस बार ब्याह करके संसारी बन जाओ श्रीकान्त, हम लोग देखकर अपनी आँखें ठंडी करें।"

मैंने कहा, "इसीलिए तो आया हूँ। इस समय कमसे कम मेरी माँका कमरा खाली कर दो, मैं अपने हाथ-पाँव फैलाकर जरा लेट रहूँ।"

मेरे पिताकी ममेरी बहिन अपने पति-पुत्रके साथ कुछ दिनसे रह रही थीं, वे आकर बोलीं, "ठीक तो कहते हो!"

मैंने कहा "अच्छा, अच्छा, न हो तो मैं बाहरके कमरेमें पड़ रहूँगा।"

जाकर देखा, एक कोनेमें सुर्खी, और एक कोनेमें चूनेका ढेर लगा हुआ है। उसके भी 'मालिक' बोले, "ठीक तो है। देखता हूँ कि वे सब चीजें तो जरा देख-सुनकर हटानी पड़ेंगी। पर कमरा तो छोटा नहीं है, तब तक न हो तो इस किनारे एक तख्त-पोश बिछाकर,—क्या कहते हो श्रीकान्त?"

मैंने कहा, "अच्छा रात-भरके लिए न हो तो यही सही।"

वास्तवमें मैं इतना थक गया था कि मालूम होता था जहाँ भी हो जरा-सी सोनेकी जगह-भर मिल जाय तो जानमें जान आ जाए। बर्माकी उस बीमारी-के बादसे अब तक शरीर पूरी तौरसे स्वस्थ और सबल न हो पाया था। भीतर ही भीतर एक तरहका अवसाद प्रायः ही अनुभव होता था। इसीसे शामके बाद जब माथा दुखने लगा तब विशेष अचरज नहीं हुआ।

नई बनी हुई बहिनने आकर कहा, "अरे, यह तो जरा गर्मी-सी चढ़ गई है। भात खाकर सोनेसे ही चली जायगी।"

तथास्तु। यही हुआ। गुरुजनकी आज्ञा शिरोधार्य करके गर्मी दूर करनेके लिए भात खाकर शय्या ग्रहण कर ली। पर सुबह नींद टूटी खूब अच्छी तरह बुखार लिये हुए।

दीदीने शरीरपर हाथ रखकर कहा, "कुछ नहीं, यह तो मलेरिया है, इसमें भोजन किया जाता है।"

किन्तु अब हाँमें हाँ न मिला सका। बोला "नहीं जीजी, मैं अब तक तुम्हारे मलेरिया-राजाकी प्रजा नहीं बना हूँ। उनकी दुहाई देकर अत्याचार किया जाना शायद मैं सहन नहीं कर सकूँ। आज मेरी लंघन है।"

सारी रात गुजरी, दूसरा दिन गुजरा, उसके बादका दिन भी कट गया

किन्तु बुखारने पीछा नहीं छोड़ा। बल्कि, उसे अधिकाधिक चढ़ते देख मन ही मन व्याकुल हो उठा। गोविन्द डॉक्टर इस बेला उस बेला देखने आने लगे। नाड़ी पकड़कर, जीभ देखकर, पेट ठोककर 'सुस्वाद' ओषधियोंकी योजना कर केवल 'लागतके दाम' भर लेने लगे, किन्तु, एक एक दिन करके सारा सप्ताह इसी तरह गुजर गया। मेरे पिताके मामा,—मेरे बाबा आकर बोले, "इसीलिए तो भइया, मैं कहता हूँ कि वहाँ खबर पठा दो, तुम्हारी फुआको आ जाने दो। बुखार तो जैसे—"

बात पूरी न होने पर भी मैं समझ गया कि बाबा कुछ मुश्किलमें पड़ गये हैं। इस तरह और भी चार-पाँच दिन बीत गये, किन्तु, बुखारमें कोई फर्क नहीं हुआ। उस दिन सुबह गोविंद डाक्टरने आकर यथारीत दवाई देकर तीन दिनके बाकी 'लागतके दाम' माँगे। शय्यामें पड़े पड़े किसी तरह हाथ बढ़ाकर अपना बैग खोला,—देखा तो मनीबैग गायब है! अतिशय शंकित होकर मैं उठ बैठा। बैगको औंधा करके हरएक चीज अलग अलग करके खोज की; किन्तु जो नहीं था सो नहीं मिला।

गोविन्द डाक्टर मामला समझकर चिन्तित होकर बार-बार सवाल करने लगे, "कुछ चला गया है क्या?"

मैंने कहा, "नहीं, कुछ भी नहीं गया।"

किन्तु उनकी दवाका मूल्य जब मैं न दे सका तब वे समझ गये। स्तम्भितकी तरह कुछ देर खड़े रहकर उन्होंने पूछा, "थे कितने?"

"कुछ थोड़े-से।"

"चाबीको जरा सावधानीसे रखना चाहिए भइया। खैर, तुम पराये नहीं हो, रुपयोंकी चिन्ता मत करना। अच्छे हो जाओ, उसके बाद जब सुभीता हो भेज देना। इलाजमें कोई कसर न होगी।" इतना कहकर डाक्टर साहब गैर होकर भी परम आत्मीयसे भी अधिक सान्त्वना देकर चले गये। उनसे कह दिया कि, "यह बात कोई सुन न पावे।"

डाक्टर साहब बोले, "अच्छा, अच्छा, देखा जायगा।"

देहातमें विश्वासपर रुपये उधार देनेकी चाल नहीं है। रुपया ही क्यों, एक चवन्नी भी खाली हाथ उधार माँगनेपर लोग समझते हैं कि यह आदमी खालिस दिल्लगी कर रहा है। क्योंकि, इस बातकी देहातके लोग कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि संसारमें इतना नासमझ भी कोई है जो खाली हाथ उधार चाहता

है, अतएव, मैंने यह कोशिश भी नहीं की। पहलेसे ही स्थिर कर लिया था कि इसकी सूचना राजलक्ष्मीको नहीं दूँगा। जरा स्वस्थ हो जाऊँ तब जो हो सकेगा करूँगा। मनमें सभवतः यह संकल्प था कि अभयाको पत्र लिखकर रुपये मँगाऊँगा। किन्तु, इसके लिए समय नहीं मिला। सहसा सेवा-शुश्रूषाका सुर भी 'नारा' से 'उदारा' में उतर पड़ते ही समझ गया कि मेरी विपत्तिकी बात मकानके भीतर छिपी नहीं रही है।

परिस्थितिको संक्षेपमें जताकर राजलक्ष्मीको एक चिट्ठी लिखी अवश्य, किन्तु उसमें मै अपने आपको इतना हीन, इतना अपमानित, महसूस करने लगा कि किसी तरह भी उसे न भेज सका,—फाड़कर फेंक दिया। दूसरा दिन इसी तरह कट गया। किन्तु, इसके बादके दिनने किसी तरह भी कटना न चाहा। उस दिन किसी ओरसे कोई भी रास्ता न देख पाकर अन्तमें एक तरहसे जानपर खेलकर ही कुछ रुपयोंके लिए राजलक्ष्मीको पत्र लिखकर पटना और कलकत्तेके ठिकानेपर भेज दिये।

वह रुपये भेजेगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं था, फिर भी, उस दिन सुबहसे ही मानो एक प्रकारके उत्कण्ठित संशयसे पोस्ट-मेनकी आशामें सामनेकी खुली खिड़कीमेंसे रास्तेके ऊपर अपनी दृष्टि बिछाये हुए उन्मुख पड़ा रहा।

समय निकल गया। आज अब उसकी आशा नहीं है ऐसा सोचकर करवट बदलनेकी तैयारी कर रहा था कि उसी समय दूरपर एक गाड़ीके शब्दसे चकित होकर तकियेपर भार देकर उठ बैठा। गाड़ी आकर ठीक सामने ही खड़ी हो गई। देखता हूँ, कोचवानके बगलमें रतन बैठा है। उसके नीचे उतरकर गाड़ीका दरवाजा खोलते ही जो दिखाई दिया, उसपर सत्य मानकर विश्वास करना कठिन हो गया।

प्रकट रूपसे दिनके समय इस गाँवके रास्तेपर राजलक्ष्मी आकर खड़ी हो सकती है, यह मेरी कल्पनाके भी परेकी बात थी।

रतन बोला, "ये हैं बाबूजी।"

राजलक्ष्मीने केवल एक बार मेरे मुँहकी ओर देखा। गाड़ीवान बोला, "मां, देर लगेगी? घोड़ा खोल दूँ?"

"जरा ठहरो।" कहकर उसने अविचलित धीर पद रखते हुए मेरे कमरेमें प्रवेश किया। प्रणाम करके, पैरोंकी धूलि मस्तकपर लगाकर और हाथसे मस्तक और छातीका उत्ताप देखकर कहा, "इस समय तो अब बुखार नहीं है। उस जून सात बजेकी गाड़ीसे जाना हो सकेगा? घोड़े छोड़ देनेको कह दूँ?"

मैं अभिभूतकी तरह उसके मुँहकी ओर निहार रहा था। बोला, " दो दिनसे बुखार आना तो बन्द है, किन्तु, क्या मुझे आज ले ही चलना चाहती हो?"

राजलक्ष्मी बोली, " न हो तो आज रहने दो। रातमें चलनेकी जरूरत नहीं, सरदी लग सकती है, कल सुबह ही चलेंगे ।"

इतनी देरमें जैसे मैं होशमें आ गया। बोला, "इस गाँवमें इस मोहल्लेके बीच तुम आई किस साहससे? तुम क्या सोचती हो कि यहाँ तुम्हें कोई भी न पहिचान सकेगा?"

राजलक्ष्मीने सहजमें ही कहा, " भले ही पहिचान लें। यहीं तो मैं पैदा हुई और बड़ी हुई और यहींपर लोग मुझे पहिचान न सकेंगे? जो देखेगा वही पहिचान लेगा।"

" तब?"

" क्या करूँ बताओ? मेरा भाग्य! नहीं तो तुम यहाँ आकर बीमार ही क्यों पड़ते?"

"आई क्यों? रुपये मँगाये थे, रुपये भेज देनेसे ही तो चल जाता!"

"सो क्या कभी हो सकता है? ऐसी बीमारीकी खबर सुनकर क्या केवल रुपये भेजकर ही स्थिर रह सकती हूँ?"

मैंने कहा, "तुम तो शायद स्थिर हो गई, किन्तु मुझे तो बहुत ही अस्थिर कर दिया। अभी ही यहाँ जब सब आ पड़ेंगे तब तुम अपना मुँह किस तरह दिखाओगी, और मैं ही क्या जवाब दूँगा?'

राजलक्ष्मीने जवाबमें केवल एक बार और अपने ललाटको छूकर कहा, जवाब और क्या दोगे,—मेरा भाग्य!"

उसकी बेपर्वाही और उदासीनतासे अत्यन्त असहिष्णु होकर बोला, "भाग्य तो ठीक है! किन्तु लाज-शर्मको एकबारगी ही चाट बैठी हो? यहाँ मुँह दिखाते भी तुम्हें हिचकिचाहट नहीं हुई?"

राजलक्ष्मीने वैसे ही उदास कण्ठसे जवाब दिया, "मेरी लाज शरम जो कुछ है सो इस समय बस तुम ही हो।"

इसके बाद अब मैं और कहूँ ही क्या! सुनूँ भी क्या! आँखें मूँदकर चुपचाप लेट रहा।

कुछ देर बाद पूछा, "बंकूका विवाह निर्विघ्न हो गया?"

राजलक्ष्मी बोली, "हाँ।"

"अभी कहाँसे आ रही हो?--कलकत्तेसे?"

"नहीं पटनेसे। वहींपर तुम्हारी चिट्ठी मिली थी।"

"मुझे कहाँ ले जाओगी?---पटने?"

राजलक्ष्मीने कुछ सोचकर कहा, "एक बार तो वहाँ तुम्हें जाना ही पड़ेगा। पहले कलकत्ते चले चलें, वहाँपर तुम्हें दिखा लूँ, उसके बाद तन्दुरुस्त होनेपर—"

मैंने सवाल किया, "किन्तु, इसके बाद भी मुझे पटना क्यों जाना पड़ेगा?"

राजलक्ष्मी बोली, "दान-पत्रकी तो वहीं रजिस्टरी करानी पड़ेगी। लिखापढ़ी एक तरहसे सब कर आई हूँ; किन्तु तुम्हारे हुक्मके तो बिना कुछ हो न सकेगा!"

अत्यन्त अचरजके साथ पूछा, "किस बातका दान-पत्र? किसके नाम?"

राजलक्ष्मी बोली, "मकान तो दोनों बंकूको दिये हैं। केवल काशीका मकान गुरुदेवको देना विचारा है। और कम्पनीके कागज, गहने वगैरहका हिस्सा-बाँट भी अपनी समझ-बूझके अनुसार एक तरहसे कर आई हूँ। अब तुम्हारे कहने-भरकी—"

मेरे अचरजकी सीमा नहीं रही। बोला, "ऐसी अवस्थामें अब तुम्हारा खुदका और क्या रह गया? बंकू यदि तुम्हारा भार न ले तो? अब उसकी खुदकी गिरिस्ती हो गई, अन्तमें यदि वह भी तुम्हें खानेको न दे तो?"

"क्या मैं यह चाहती हूँ? निजका सब कुछ दान करके क्या उसीके हाथका दिया खाऊँगी? तुम भी खूब हो!"

धीरजको और न सम्हाल सकनेके कारण मैं उठकर क्रुद्ध कण्ठसे बोला, "हरिश्चन्द्रके समान यह दुर्बुद्धि तुम्हें दी किसने? खाओगी क्या? बुढ़ापेमें किसकी गल-ग्रह बनने जाओगी?"

राजलक्ष्मी बोली, "तुम्हें गुस्सा करनेकी जरूरत नहीं है, तुम लेट जाओ, जिसने मुझे यह बुद्धि दी है वही मुझे खानेको देगा। मैं हजार बूढ़ी हो जाऊँगी, वह मुझे कभी गल-ग्रह नहीं समझेगा। तुम फिजूल सिर गर्म मत करो,—शान्तिसे लेट रहो।"

मैं शान्त होकर लेट रहा। सामनेकी खुली खिड़कीसे डूबते हुए सूर्यकी किरणोंसे रँगा हुआ विचित्र आकाश दीख पड़ा। स्वप्नाविष्टकी तरह निर्निमेष दृष्टिसे उसी ओर निहारते निहारते जान पड़ने लगा,—मानो एक अद्भुत शोभा और सौन्दर्यमें सारा विश्व-ब्रह्माण्ड बहा जा रहा है। तीनों लोकोंके बीच रोग-शोक, अभाव-अभियोग, हिंसा-द्वेष, अब कहीं भी कुछ नहीं है।

इस निर्वाक् निस्तब्धतामें मग्न रहकर दोनोंने कितना समय बिता दिया, समझता हूँ, इसका किसीने हिसाब ही नहीं किया। सहसा दरवाजेके बाहर मनुष्यके गलेकी आवाज सुनकर हम दोनों ही चौंक पड़े और राजलक्ष्मीके शय्या छोड़नेके पहले ही डाक्टर साहबने प्रसन्न बाबाको साथमें लिये अन्दर प्रवेश किया। किन्तु, उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही रुककर खड़े हो गये। बाबा जब दिवा-निद्रा ले रहे थे तब यह खबर उनके कानोंमें अवश्य पड़ गई थी कि कोई बन्धु कलकत्तेसे गाड़ी लेकर मेरे पास आया है, किन्तु वह कोई स्त्री हो सकती है यह शायद किसीकी कल्पनामें भी नहीं था। इसीलिए, शायद अब तक घरकी स्त्रियाँ भी बाहर नहीं आई थीं।

बाबाजी अत्यन्त विलक्षण आदमी थे। उन्होंने कुछ देर राजलक्ष्मीके नीचे झुके हुए मुखकी ओर देखकर कहा, "यह लड़की कौन है श्रीकान्त? कुछ पहिचानी हुई-सी मालूम होती है।"

डाक्टर साहब भी प्रायः साथ ही साथ कह उठे, "छोटे काका, मुझे भी ऐसा लगता है जैसे इन्हें कहीं देखा है।"

मैंने तिरछी नजरसे देखा, राजलक्ष्मीका सारा मुख-मण्डल जैसे मुर्देकी तरह फक हो गया है। उसी क्षण जैसे कोई मेरे हृदयके भीतरसे बोल उठा, "श्रीकान्त, इस सर्वस्व-त्यागिनी स्त्रीने केवल तुम्हारे लिए ही स्वेच्छासे यह दुःख अपने सिरपर उठा लिया है।"

एकबारगी सारी देह रोमाञ्चित हो उठी, मन ही मन बोला, मुझे सत्यसे मतलब नहीं, आज मैं मिथ्याको ही सिरपर धारण करूँगा और दूसरे ही क्षण उसके हाथको जरा दबाकर कह बैठा, "तुम अपने पतिकी सेवा करने आई हो, तुम्हें लाज किस बातकी है राजलक्ष्मी? ये बाबा और डाक्टर साहब हैं, इनको प्रणाम करो।"

पल-भरके लिए दोनोंकी चार आँखें हो गईं; इसके बाद उसने उठकर जमीनपर सिर टेककर दोनोंको प्रणाम किया।

[समाप्त]